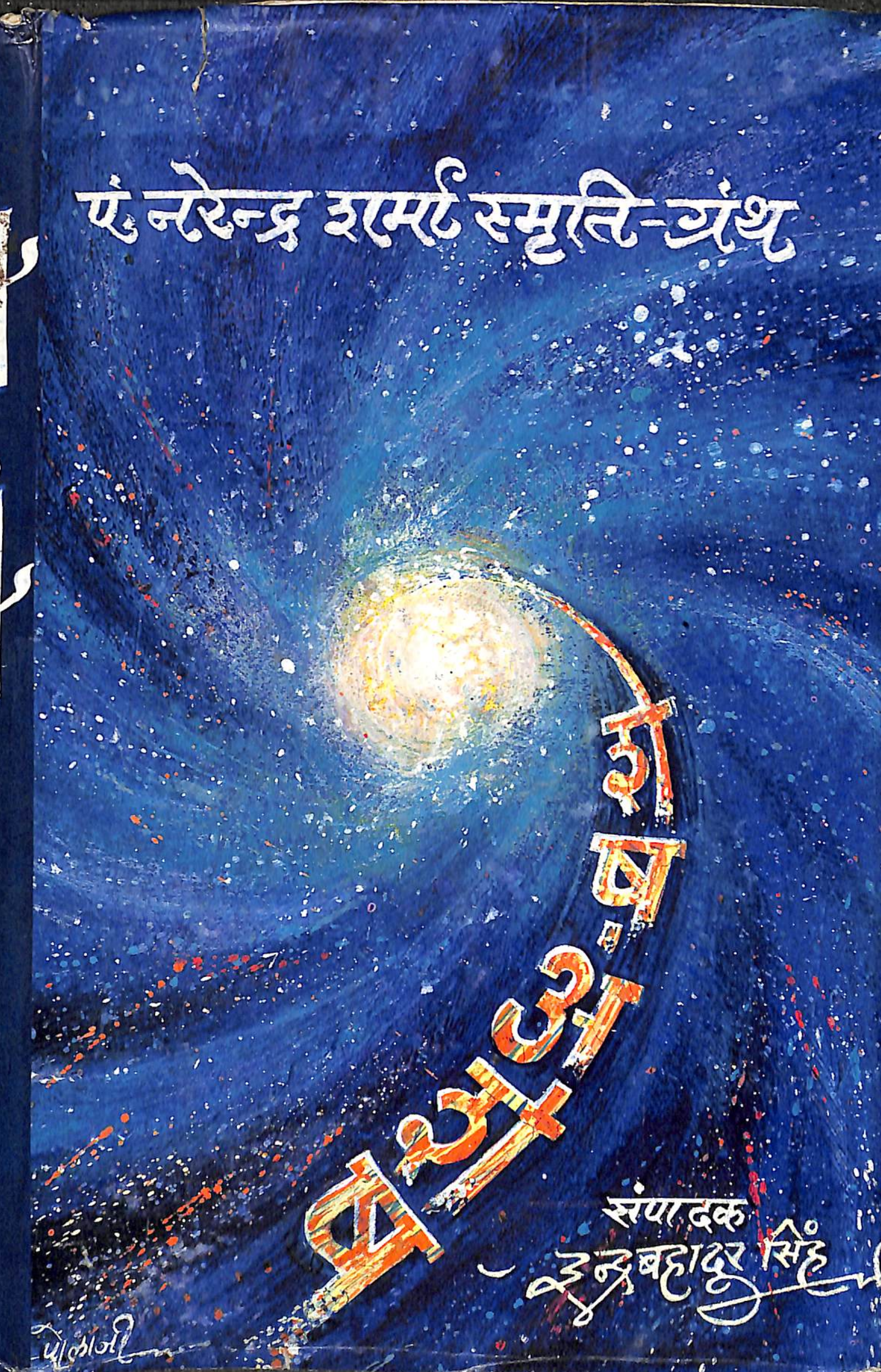

पं. नरेन्द्र शर्मा स्मृति-ग्रंथ
संपादक
इन्द्रबहादुर सिंह

मौक्तिक प्रकाशन
बंबई- ४०००१२

शेष-अशेष

(पं. नरेन्द्र शर्मा स्मृति-ग्रंथ)

सम्पादक

इन्द्रबहादुर सिंह

प्रथम संस्करण	:	१९९५
मूल्य	:	एक सौ पचास रूपये
प्रकाशक	:	मौलिक प्रकाशन पर्ण कुटीर, बी–२ कपोल सोसाइटी, वी.एम. रोड, जुहू स्कीम, बंबई – ४०० ०४९.
मुद्रक	:	प्रिंटोग्राफी २०० बझारगेट स्ट्रिट, फोर्ट, बंबई – ४०० ००१. फोन : २६१०९३६, २६२६९६१

SHESH - ASESH
Editor : Indrabahadur Singh

Price : Rs. 150.00

संपादकीय

सन् १९७४ में "भारत-भारती परिषद्" ने पंडित नरेन्द्र शर्मा की षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर "ज्योति-कलश" नामक अभिनंदन-ग्रंथ प्रकाशित किया था। स्व. पं. श्रीनाथ दुविवेदी इस ग्रंथ के प्रणेता थे और ग्रंथ हेतु लेख- निबंध आदि मँगवाने से लेकर उसके नियोजन और संपादन आदि का कार्य-भार उन्होंने स्नेहवश मुझे सौंपा था, जिसका सफल निर्वाह मैं अपने वरिष्ठों के मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद के फलस्वरूप ही कर पाया था। तब बड़ा उल्लास था मन में। एक ऋषि-कल्प सरस्वती के वरद् पुत्र का षष्ठि-पूर्ति-समारोह हमारे लिए किसी यज्ञ-अनुष्ठान या महोत्सव से कम नहीं था। वह एक कवि, एक मनीषी, एक चिंतक, एक ऋषि की महायात्रा के कुंभ का महापर्व था, जो किसी तीर्थ की तरह पावन एवं गांगेय था। पंडित नरेन्द्र शर्मा वस्तुतः "ज्योति-कलश" ही तो थे; अत:कोटि-कोटि ज्योतिर्विन्दुओं में प्रस्फुटित- विकीर्ण रवि-रश्मियां एक दैवी आभा-मंडल का बोध दे गयी थीं। बड़ा प्रीतिकर था वह अनुभव।

पंद्रह वर्ष बाद, ११ फरवरी १९८९ को "ज्योति-कलश" "शेष-अशेष" का रूप धारण कर लेगा --तब कौन जानता था? वैकुंठ इस "ज्योति-कलश" को इतने शीघ्र इस धरा से उठा लेगा और "शेष-अशेष" की नियति हम पर थोप देगा-- इसकी कल्पना न थी। ज्योति अशेष हो गयी। ज्योति की यह प्रकृति है। "शेष-अशेष" उसी "ज्योति-कलश" का उत्तर विकास है। वह अमरज्योति जो रह गई है, "शेष" है और वही ज्योति जो पूर्णता को प्राप्त हो गई है, "अशेष" है। "शेष-अशेष" इसी भाव-भूमि पर भास्वर है। पंडित नरेन्द्र शर्मा-"ज्योति-कलश"। पंडित नरेन्द्र शर्मा-"शेष-अशेष"। आप सभी के आशिषों का संबल लेकर "शेष-अशेष" के संपादन का भी गुरुतर भार वहन कर सकूँ- यही कामना है।

इस ग्रंथ को मूर्तरूप देने का श्रेय प्रिय वासवी को है। यह उसका विश्वास और स्नेह है, जो उसने निरापदभाव से संपादन-प्रकाशन का पूरा दायित्व मुझे सौप दिया। पूर्व जन्म में मैं नरेन्द्र के परिवार का रहा होऊँ या नहीं, किन्तु इस जन्म में तो मैं उनमें से एक

होने- जैसा ही अनुभव करता हूँ। शायद इसीलिए आदरणीय पंत जी मुझे पंडित जी का "केअर ऑफ" करके पत्र लिखा करते थे। कवि त्रिकालदर्शी होता है। जो भी हो, मैं वासवी और घर के अन्य सदस्यों का ह्रदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इतने गहरे सुनेह और अपनत्व से कृतार्थ किया है।

पुस्तक के प्रकाशन में अपरिहार्य कारणों से अप्रत्याशित विलंब हुआ है। भरपूर प्रयास एवं श्रम के बावजूद ग्रंथ को प्रकाश में आने में लगभग दो वर्ष का समय लग गया है। इस अवधि में कई अपूरणीय क्षतियाँ हुई हैं।श्रीमती सुशीला शर्मा, श्री अमृतलाल नागर, श्री शमशेरबहादुर सिंह, पंडित श्रीनाथ द्विवेदी, डॉ राही मासूम रजा --जैसे पंडित जी के आत्मीय और परिवार के सदस्य इस पुस्तक को नहीं देख पायेंगे- इसकी टीस हमारे हृदय में सदा बनी रहेगी। इस पुस्तक में इनके स्मृति-लेख हमें बरबंस रुलायेंगे- दोनों छोर से; पंडित नरेंन्द्र शर्मा के संबंध में अपनी बात कहकर और अब स्वयं मौन होकर। विधाता का यह विधान भी "शेष-अशेष" की एक अभिन्न कड़ी ही होगी।

पंडित जी अजातशत्रु थे। क्रोध और बैर की मुद्रा में कभी भी नहीं देखे गए। आजीवन होठों पर स्मित हास,चेहरे पर सहज स्नेह, करुणा और मैत्री के भाव, बाहों में अपनत्व का आलिंगन, हृदय में साधु-भाव का तारल्य बरबस अपनी ओर खींच लेने के चुंबकीय आकर्षण के हेतु थे।प्रीति के इस घर में बैर का एक भी द्वार न था। "सबके पंडित नरेन्द्र शर्मा" का निधन सभी को अंतस तक रुला गया। जो जहाँ, जैसा था, निधन का समाचार पाकर काठ हो गया। एक साथ सभी की अश्रुधारा फूट पड़ी। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ से अपनी श्रद्धा अर्पित करने वालों का तांता न लगा हो। निधन की इतनी गहन व्यथा को आँसुओं ने आकंठ सिंचित किया और जब चेतना जागी, तो इन अश्रु-कणों को उस "ज्योति-कलश" पर अर्पित कर दिया-- "शेष-अशेष" उसी का अवदान है।

घर-परिवार, मित्र-परिजन, साहित्य, समाज, धर्म-अध्यात्म-ज्योतिष, फिल्म, टीवी, रेडियो, प्रेस, गीत-संगीत, देश-विदेश आदि क्षेत्रों से हिन्दी, अंग्रेजी में हमें इतनें अधिक पत्र,लेख, संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ आदि प्राप्त हुईं कि उनमें से हम व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण

सभी भावोद्गारों को इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं कर पा रहे हैं। जिन स्नेहियों के लेखादि इसमें संकलित नहीं किये जा सके हैं, उनसे हम क्षमा-प्रार्थी हैं। तथापि, उनकी भावनाएँ इन स्मृतियों में समाहित एवं संचरित हैं।

पुस्तक को खंडों (पुष्पों) में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड में समान प्रवृत्तिमूलक सामग्री को संयोजित करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि यह पुस्तक पं.नरेन्द्र शर्मा के प्रति श्रद्धांजलि एवं स्मृति-ग्रंथ के रूप में प्रकाशित की जा रही है,तथापि इन सभी उद्गारों में पंडित नरेन्द्र शर्मा के जीवन, कार्य, उन पर पड़नेवाले प्रभाव, उनके चिन्तन, दर्शन, काव्य, उनके बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न व्यक्तित्व, गुण-दोष, उनके प्रदेय आदि से संबंधित विषयों पर प्रचुर साहित्य-सामग्री भी सहज सुलभ है। कई ऐसे विशिष्ट तथ्य हैं, जो इससे पहले उजागर नहीं हुए थे। नरेन्द्र को साहित्य, समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में जानने-समझने की दृष्टि से भी इस पुस्तक की प्रासंगिकता एवं उपादेयता है। यह ग्रंथ केवल अश्रु-कोष लेकर नहीं, उससे बहुत अधिक ज्ञान-कोष लेकर आपके समक्ष प्रस्तुत है। यह एक तपः पूत ऋषि-कल्प कविर्मनीषी के अभिषेक जल-विंदुओं का कोष है। अतः इस पुस्तक का नरेन्द्र-साहित्य के संदर्भ में एक अन्योन्याश्रित स्थायी महत्व है। नरेन्द्र से संबंधित विविध आयामों, प्रवृत्तियों, समय-समय पर घटित होने वाले प्रभाव-परिवर्तनों और अथ से इति तक उनकी जीवन-यात्रा में आने वाले मोड़ों-पड़ावों का पूरा कथा-विस्तार है। इसमें केवल "कद्र मर्दुम बाद मुर्दम" का पिष्ट-पेषण अथवा पितृ-तर्पण परंपरा-निर्वाह नहीं है।

पंडित जी के निधन के पश्चात् उनकी धर्म पत्नी श्रीमती सुशीला शर्मा शून्य हो चली थीं । जिस सहचर को "बाँध रेशमी डोरियों में, मैं तुम्हें सब दिन रखूँगी पास, निशिदिन पास, अपने पास" का संकल्प किया था, रेशमी डोरियों के बंधन चटकाकर वह--

"आज तक तुम फूल, तितली, गीति थी-
वह छोड़ता हूँ
प्रीति कविकृत प्रेयसी की प्रीति --
वह छोड़ता हूँ"

गाता हुआ चलता बना और असहाय एकाकी बच गयी प्रेयसी के अधर मंद स्वरों में फड़फड़ाते रह गए –

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे............
आज के बिछुड़े न जान कब मिलेंगे................?

और अंततः वह प्रेयसी १२ जून, १९९१ को विछोह की सभी सीमाएं पार कर स्वयं प्रिय के पास चली गयी, जहां वह फिर गा रही होगी– "बाँध रेशमी डोरियों में तुम्हें सब दिन रखूँगी पास, निशिदिन पास, अपने पास ।"

प्रिय की स्मृति में प्रकाशित यह "शेष–अशेष" उसी प्रेयसी सुशीला को समर्पित है ।

हम सभी स्नेहियों के आभारी हैं । आप सभी के भावों का आकार है यह स्मृति–ग्रंथ । आपकी श्रद्धा और प्रियता का स्मारक है यह ग्रंथ । आपके प्रत्येक उद्गार इस ग्रंथ के सर्ग है । जिस अपनेपन की तरलता में सिक्त–सिंचित करके आपने अपने शब्द लिखे हैं, उनके अक्षर–अक्षर मोती के समान मूल्यवान एवं आभायुक्त हैं । "शेष–अशेष" स्मृति–ग्रंथ–परिवार की एक अविछिन्न कड़ी हैं आप । इस ग्रंथ का पन्ना–पन्ना आपका कृतज्ञ है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर के चित्रकार श्री साबाजी पोलाजी ने मुख–पृष्ठ पर "शेष–अशेष" के प्रतीक–भाव को उकेरकर हमारे संश्लिष्ट अव्यक्त को भाषा प्रदान की है । उनके प्रति आभार व्यक्त करना स्वयं के प्रति आभारी हो जाना होगा, अस्तु । 'मौलिक प्रकाशन' के साथ ही हम मुद्रक प्रिंटोग्राफी और विशेषरूप से उसके मालिक श्री गिरीश शहा के हृदय से आभारी हैं, जिनके अप्रत्याशित सहज सहयोग के फलस्वरूप ही यह ग्रंथ और अधिक विलंब से प्रकाश में आने के कुयोग से बच सका ।

अंततः "तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा ।"

प्राचार्य,
बी.एल.रुइया (बहु–उद्देश्यीय) हाई स्कूल,
महंत रोड, विले–पार्ले (पूर्व),
बम्बई – ४०० ०५७.

इन्द्रबहादुर सिंह

गुरुवार, १३ अप्रेल, १९९५

अनुक्रमणिका

प्रथम पुष्प

द्वितीय पुष्प

तृतीय पुष्प

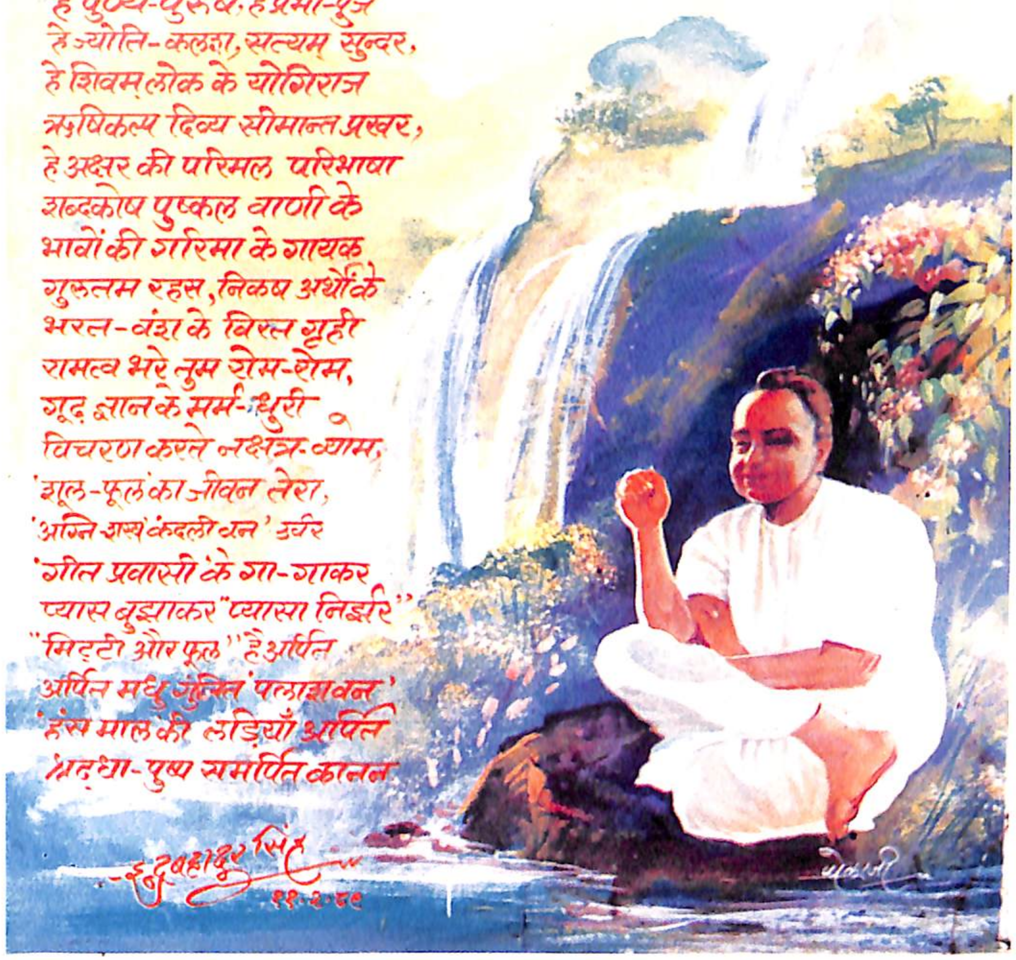
चतुर्थ पुष्प

☆ ☆ ☆

पंचम पुष्प

पं. नरेन्द्र शर्मा को—

- श्रद्धाँजलि -



हे पुण्य-पुरुष, हे प्रभा-पुंज
हे ज्योति-कलश, सत्यम् सुन्दर,
हे शिवम् लोक के योगिराज
ऋषिकल्प दिव्य सीमान्त प्रखर,
हे अक्षर की परिमल परिभाषा
शब्दकोष पुष्कल वाणी के
भावों की गरिमा के गायक
गुरुतम रहस, निकष अर्थों के
भरत-वंश के विरल गृही
रामत्व भरे तुम रोम-रोम,
गूढ़ ज्ञान के मर्म-धुरी
विचरण करते नक्षत्र-व्योम,
'शूल-फूल' का जीवन तेरा,
'अग्निशस्य' 'कदली वन' उर्वर
'गीत प्रवासी' के गा-गाकर
प्यास बुझाकर "प्यासा निर्झर"
"मिट्टी और फूल" है अर्पित
अर्पित मधु गुंजित 'पलाशवन'
'हंसमाल' की लड़ियाँ अर्पित
श्रद्धा-पुष्प समर्पित कानन

- इन्दुबहादुर सिंह
११.२.८९



प्रथम पुष्प

समर्पणः पापा की स्मृति में उन्हीं के शब्दों में

राम नाम :

"राम हैं सबमें, न सब हैं राम;
किंतु है अधिकार सबको, राम का लें
नाम !
राम का वैशिष्ट्य, उनके नाम में व्यापक
स्वयं राम प्रणम्य, उनका नाम परम प्रणाम !!"

राम की माया :

"राम से होकर विमुख मैं यह समझ पाया,
विमुख के सम्मुख रही है राम की माया !
जीव को माया भ्रमाती, घुमाती, लाती-
राम के सम्मुख विमुख यों मुहुर्मुहु आया !!"

प्रिय पाठक,

आज पापा हमारे बीच नहीं रहे। उनकी याद में बटोरकर रखी गयीं ये स्मृतियाँ श्रद्‌धा-सुमन हैं। इस कार्य में मुझे जिस-जिस ने सहायता की है, मैं सच्चे हृदय से उनकी आभारी हूं।

मैं तो समझती थी कि सदैव पापा हमारे पास ही रहेंगे। मगर यह कहीं होता है? उनके चले जाने से मन बहुत ही अशांत रहता था। मेरे मन की शांति खो गई थी, रातों की नींद उड़ गयी थी। मैं इस संसार की भीड़ में अपने-आपको एकदम अकेली महसूस कर रही थी। ऐसी विवश, जिसका सब कुछ लुट गया हो। रोज हिम्मत बटोरकर अम्मा के पास जाती, उसे और घर के सभी भाई-बहनों को धीरज बंधाती। जो -जो परिचित या मित्र मिलने आते, उन सबकी बातें सुनती।

बचपन से ही पापा ने मुझे बहुत प्यार दिया था, मैं उनकी लाड़ली जो थी ! खोई-खोई यह देखती कि जो भी घर में आता, पापा की ही बातें करता और सिर्फ उन्हीं को याद करता। सबका ध्यान उन्हीं में केंद्रित था। तब मुझे विचार आया कि क्या पापा मेरे अकेले के या मेरे परिवारवालों के ही थे? नहीं, वे तो सबके थे। उन्होंने तो सभी को प्यार दिया था। इसी विचार से प्रेरित हो इस ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसमें राशि-राशि श्रद्धा–सुमन समर्पित हैं। उस ऋृषिकल्प महापुरुष की चिर-स्मृति और

अखण्ड श्रद्धा में इसका एक-एक दल उस आत्मा की विराटता को रंग से, रूप और गंध से भर दे, यही कामना है।

सादर नमन

वासवी बकुल मोदी

हमारे दांपत्य जीवन की बेल-मधुमालती

● सुशीला शर्मा

श्री गणेशाय नमः श्री गणेशाय नमः
॥ ॐ श्री राम ॥

अपनी जीवनी कहां से शुरू करूं, ये समझ में नहीं आता। हमारे दांपत्य जीवन ने बयालीस साल पूरे किये। मैं तो उन्हें उसके भी पांच वर्ष पूर्व से जानती थी और इसी के आधार पर कुछ लिखना चाहती हूं।

"मैं निर्गुणी गुणी गुण एक नाहीं, प्यार से स्वीकारना..."

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे..."
नरेन्द्र जी तो लिख गये, पर मुझे बताकर नहीं गये कि मैं अपने इन सारे प्रश्नों के उत्तर किससे पूछूं? इन पंक्तियों को याद कर अश्रु बहने लगते हैं। अपनों को खोकर भला कौन नहीं रोता? हमारे दांपत्य जीवन की बेल मधुमालती की बेल जैसी सुंदर और मधुर थी। मधुमालती के फूलों के खिलने का समय जनवरी से मई तक का होता है। यह भी कैसा संयोग कि मेरा जन्म ७ जनवरी, उनका २८ फरवरी और हमारी शादी की तारीख १२ मई! मधु-मालती के फूल हम दोनों को बहुत ही प्रिय थे। वे कितने प्यारे होते हैं- कुछ सफेद, कुछ गुलाबी और कुछ पंखुड़ियां लाल भी। सौम्य, सुंदर रंगों और कोमलता का ऐसा सम्मिश्रण कि देखते जी कभी नहीं भरा। हमेशा उन्हें देखकर विचारों में मैं खो जाती! कैसी है यह प्रभु की सृष्टि इतनी सुंदरता, इतना माधुर्य धारण किये हुए भी मधुमालती सर्वथा गर्व-रहित जान पड़ती। न बोलते हुए भी कितना कुछ कह जाती!

मधु-मालती जैसा ही था हम दोनों का दांप्त्यजीवन-सहज, सौम्य और शांत। नवम्बर १९४६ में नरेन्द्र जी द्वारा रची यह कविता मुझे सहसा याद आती है, जिसका शीर्षक है- "सुशीला"

"मेरे हृदय-कन-तन पर गिराती
शारदीया चांदनी (चदरा)-सी,
कौन है, कर धन्य जो, मधुभार मुझ पर
डालती?
मेरे हृदय-निकुंज की मधु-मालती!

आ रही मेरे हृदय में,
ज्योति-सी, सूने निलय में।
कौन है, धर चरण स्मिति–दीप उर में बालती ?
यह मुझे उर से लगाती
सुप्त पुलकों को जगाती,
कौन है सुख मूर्छना जो, सहज सहज संभालती ?
मेरे हृदय निकुंज की मधुमालती !
प्रतिपदा की शशिकला वह,
आ गई निस्सीम में वह
कौन है, भव शून्य में जो,
नियति प्रकृति में ढालती ?
मेरे हृदय–निकुंज की मधु मालती।''

नरेन्द्र जी और मेरी शादी हुई १२ मई १९४७ को। श्री जोरावर सिंह जी (आर्य समाजी कवि और प्रचारक) इन्हें प्रथम बार हमारे घर लाये थे। जब मेरी मां ने जाना कि कोई बॉम्बे टॉकीज़ की फिल्मों के गीतकार और कवि हमारे घर आ रहे हैं, तब मां और पिताजी में ठन–सी गई थी। मुझे याद आता है कि मां ने पिताजी से कहा था, ''हमारे घर में दो सुंदर अविवाहित बेटियां हैं, क्या किसी फिल्म वाले को घर में बुलाना उचित है ?'' और सच ! पिताजी से नाराज होकर शाम को मंदिर चली गई थीं और साथ में गंगा मैया (जो हमारे घर खाना बनाती थी) उसे भी लेती गई थीं जब वे प्रथम बार घर आये तब मेरे दूसरे भाई–बहन कॉलेज से आये नहीं थे। सिर्फ मैं और मेरे पिताजी घर पर थे। स्वागत पिताजी ने किया और जलपान मैंने कराया। मुझसे भी कुछ बातें हुई। उन दिनों मैं हल्दनकर आर्ट इन्स्टीट्यूट में चित्रकारी सीखती थी। श्री अविनाश व्यास, गुजराती गीतों के जानेमाने संगीतकार थे और मधुरिका मजूमदार की पार्टी के साथ रेडियो पर गाना भी गाती थी।

पिताजी के आग्रह पर नरेन्द्र जी ने अपनी कविता 'चौमुख दिवला बार...' सुनायी। उनके सुनाने के बाद नरेन्द्र जी के अनुरोध पर मैंने मीरा का एक भजन... ''ए री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय...'' सुनाया। यही थी हमारी प्रथम भेंट।

जैसे ही इन्होंने बिदा लेनी चाही, मेरे पिताजी ने कहा, "इसे आप अपना ही घर समझिएगा। जब कभी भी चाहें, आते रहिएगा और दूसरी बार आप जब कभी भी पधारें मेरे लिए अपनी कविता[illegible] का एक संग्रह ले आइएगा।" फिर अपना पूरा परिचय [illegible] पिताजी बोले, "मैं सेंट्रल रेल्वे में चीफ़ कैरेज [illegible] हूं। सो मुझे अक्सर दिल्ली तक टूर [illegible] बच्चों और मेरी पत्नी से मिलने [illegible] नरेन्द्रजी पिता जी को [illegible]

इसी [illegible] बार [illegible]

घर पधारे एक नेत्रहीन संन्यासी के वचन ने यह धारणा कायम कीऔर मेरे आत्मविश्वास को जगाया। मां के घर वे हर सोमवार को सीधा ग्रहण करने आया करते थे। नेत्रहीन होते हुए भी मेरी ओर संकेत कर मां से एक दिन उन्होंने कहा कि, "मां, तुम्हारी यह बेटी ऊंची जाति में ब्याहेगी। इसका पति बहुत ही विद्वान होगा। इसका घर समुद्र के पास होगा। परंतु इसे वाहन सुख नहीं है।" तब मैं बहुत ही छोटी थी। आज तक भी उनकी मुखमुद्रा मेरे स्मृति-पटल पर अंकित है। नेत्रहीन होते हुए भी वे भविष्य के दृश्यों को स्पष्ट रूप से देख रहे थे। अल्प आयुवशात् मेरा मन कभी नहीं माना कि कोई व्यक्ति देख भी नहीं सकता। इसीलिए कौतूहल और जिज्ञासावश मैं उनसे आखिरकार पूछ बैठी- "बाबा, यह बताइए कि ये कितनी उंगलियां हैं ?" तब वे मुस्कराकर बोले, "दो।" मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मैंने उनसे पूछा- "आप देख तो नहीं सकते, फिर आपनें सही उत्तर कैसे दिया ?" वे हंसकर बोले, "बच्चे हमेशा दो ही उंगलियां बताते हैं।" उस वक्त हम बड़ौदा शहर में रहते थे। वहां कहां था समुद्र ! नेत्रहीन साधु बाबा की वाणी सही निकली। आज नरेन्द्रजी का यानी हमारा घर मछुआरों की बस्ती के पार, बंबई के उपनगर खार में है।

कुछ वर्षों के बाद मेरा परिवार बड़ौदा से बंबई के एक उपनगर "सांताक्रुझ" में रहने आ गया। यह घर यूरोपियन रेलवे क्वाटर्स में से एक था। इस घर में हम बरसों तक रहे। यहीं मेरी नरेन्द्रजी से मुलाकात हुई और शादी भी।

हमारे घर नरेन्द्रजी का आना-जाना बराबर चलता रहा। मेरे परिवार के सारे सदस्य इनके भक्त से बन गये थे। मैं घर में सबसे कम बोलती थी। मैं गांधीजी और मीराबाई से सदैव प्रभावित रही हूं। गांधी जी मौन-व्रत को बहुत महत्त्व देते थे। इसीलिए मैंने भी प्रतिदिन एक घंटे का मौन-व्रत पूरे सात साल तक लिया था। अक्सर ऐसा ही होता कि जब नरेन्द्रजी हमारे घर आते, मैं उन्हें मौन व्रत लिये ही मिलती। एक दिन जब मेरा मौन छूटा, तो मुझसे पूछने लगे- "आप कुछ बोलती नहीं हैं" ? मैंने कह दिया, "यदि सभी बोलने लगे तो सुनने वाला कौन रहेगा ?" उन दिनों मैं चित्रकारी सीखा करती थी। मौन-व्रत के पालन पर प्रकाश डालते कहने लगी, 'चित्रकारी भी तो एक मौन विषय है। इसी

कारण मुझे यह प्रिय है। इसमें वाणी की आवश्यकता नहीं पड़ती। सिर्फ सफेद कागज और रंग होते हैं और मन की भावनाएं।" वे मेरी इस प्रकार की हर बात को ध्यान से सुनते और मेरा उत्साह बढ़ाकर कहते, "आप तो स्त्री की गरिमा को बढ़ाने वाली शक्ति का अभ्यास कर रही हैं। आप बहुत अच्छा कर रही हैं।"

नरेंद्रजी के नियम से हमारे घर पर आने में एक विशेष अनियमितता यह थी कि जिस रोज वे कह जाते, "कल आऊंगा," उस रोज वे कभी न आते। इसी तरह धीरे-धीरे वे मेरे परिवार का हिस्सा-सा बन गये थे। मेरी मां (जिसे हम "बा" कहते थे) जब कभी वे हमारे घर आते बिना भोजन करवाए कभी भी जाने न देती। हमारे घर प्राय: गुजराती व्यंजन बनते थे, जैसे कि ऊंधिया ? पाटौडी, ढोकला, दाल, इत्यादि। बा सूरत की थी। गुजरात में एक कहावत है, 'सूरतनुं जमण अने काशीनुं मरण' (खाना सूरत का होना चाहिये और मृत्यु काशी में आनी चाहिये) सूरती व्यंजनों में मूंगफली के तेल का प्रयोग होता है और कई व्यंजनों में तो खाने के साथ कच्चा तेल भी परोसा जाता है। हम नरेंद्रजी को भी घर में इसी तरह का खाना खिलाते।

शादी के बाद जब एक बार ऐसा ही एक गुजराती व्यंजन पकाकर मैंने उन्हें परोसा और ऊपर से तेल डालने लगी, तब नरेंद्रजी जोर से चीख पड़े और बोले, "अरे... अरे ये क्या कर रही हो?" मैं सहमी-सी बोली "क्यों मेरी बा के यहां तो इसी तरह आप बिना विरोध किये कच्चा तेल स्वीकारते थे"। वे बोले, "वह तो मेरी ससुराल थीं, यह तो मेरा अपना घर है।" हां एक बात वे सबसे कहते थे कि, "भाई गुजराती दाल और गुजराती लड़की बहुत अच्छी होती है।" कविराज का यह विश्लेषण और विशेषण सदा मुझे अटपटा लगा।

एक बार की बात है जब नरेंद्र जी हमारे घर आये, तब उन्होंने मेरे हाथ, पांव पर पट्टियाँ बंधी देखी और पूछ बैठे... "अरे यह सब कैसे हुआ?" मैंने बताया "न जाने क्यूं, पिछले तीन दिनों से मैं लगातार गिरती रही हूं।" तब मेरी बा ने इनसे कहा, "पता नहीं कैसी चलती है तीन दिनों से ऐसे बराबर गिरता है कोई भला?"

नरेंद्र जी का ध्यान मेरी उंगली पर गया और वे पूछ बैठे, "यह नई अंगूठी कब पहनी?" मैंने उत्तर दिया, अभी तीन रोज पहले ही मैंने ग्रांटरोड स्टेशन के पास से खरीदी है।" वे बोले, "जरा मुझे निकाल कर बताइये" अपनी सोलिटेयर हीरे की अंगूठी देते हुए कहा, 'देखिये यह कैसी है?" मैं उनकी दी हीरे की अंगूठी को उलट-पुलट कर देख रही थी कि अचानक बा से बिदा ले कर यह कहकर चले गये कि "मैं कल आऊंगा आज जरा जल्दी में हूं।" मैंने बा से बड़े उदास स्वर में कहा, "अरे ये तो मेरी अंगूठी ले कर चले गये।" मां ने समझाया, "वे क्या करेंगे तेरी ये दो रूपये की अंगूठी का ? अपनी हीरे की अंगूठी भी तो यहीं छोड़ गये हैं।" मैंने उनकी अंगूठी पहन ली। वह कुछ ज्यादह ही चमक रही थी। ये वही अंगूठी थी, जो उन्होंने बादमें मुझे सगाई के दिन पहनाई थी। आज तक वो अंगूठी मेरी उंगली पर सुशोभित है।

उन दिनों नरेन्द्रजी और पंतजी गांधी भवन माटुंगा में साथ–साथ रहते थे। नरेन्द्रजी को हमारे घर में आते चार वर्ष बीत चुके थे। पंतजी ने भी मुझे एक बार देखा था। उन्होंने ही नरेन्द्र जी को मुझे उनके मन की बात करने के लिए प्रोत्साहित किया था। जब कभी हमारे घर से नरेन्द्रजी गांधीभवन लौटते तब हर बार पंतजी पूछते, 'क्या तुमने आज सुशीला जी से पूछा ?' और 'न' सुनकर कहते, "तुम्हें यदि संकोच होता हो तो मुझे साथ ले चलो। बड़े भाई के नाते में ही पूछ लूंगा उनसे।"

एक दिन शाम को वे घर आये। मैं अकेली बैठी हुई थी। आते ही मुझसे पूछा, "क्या आपका मौन खुल चुका है ?" मैं हंसने लगी। मैंने बड़ी ही सहजता से पूछा, 'क्या ?' वे बोले, "आप मेरे घर चलेंगी ?" मैं इनके प्रश्न की गंभीरता को समझे बिना ही पूछ बैठी, "हां कब आऊं ?" कविराज भांप गये कि मैं उनके प्रश्न को समझ नहीं पाई हूं, सो मुझे समझाया, "ऐसे नहीं, सदा के लिए !" मैंने उन्हें बताया, "मां-पिताजी घर पर ही हैं। आपको उन्हें पूछना चाहिए ना।" "लीजिए अभी पूछ लेता हूं।" यह कहकर भीतर जाने के पूर्व फिर से मुझसे बोले, "पर सुशीला जी, आप वादा करती हैं आप इस विषय में सोचेंगी ?" मैंने हामी भर दी। मेरा उत्तर पाते ही वे सीधे अंदर बा के पास

गये। मेरे माता–पिता संकुचित विचार वाले नहीं थे। उन दिनों अंतरजातीय विवाह सामान्य तौर पर नहीं होते थे और न ही कोई माता–पिता अपनी पुत्री के विचारों को इस विषय में महत्व देते थे। परन्तु देशकाल से विपरीत, देशकाल से परे उन्होंने नरेन्द्र जी से कहा, "हमारे यहां बेटे या बेटी की इच्छा ही सर्वोपरि है। हम दोनों को तो आंप पसंद हैं।" नरेन्द्र जी ने बा से कहा, "बा मैं ठीक आठ दिन बाद आकर पूछ जाऊंगा।"

इन आठ दिनों में (मुझे छोड़कर) मेरे सारे परिवार ने नरेन जी के पक्ष में अपनी इच्छा व्यक्त की। आठवें दिन मुझे मां ने पकड़कर अपने पास बिठाया और मुझसे बोलीं, "क्या तेरे मुंह में मूंग भरे हैं? तू क्यों कोई जवाब नहीं देती? आज शाम नरेन्द्र जी अवश्य आएँगे। उन्हें क्या कहूं बता दे। मैं वही उनसे कह दूंगी।" मैं चुप ही रही। मां ने कहा, "अब चुप रहने से काम नहीं चलेगा।" मैंने कहा, "बा उन्हें, उन्हें "ना" कर देना।" बा एकटक मुझे देखती रहीं, फिर बोलीं, "हां ठीक है, जिंदगी तुझे जीनी है। "ना" कर दूंगी।" तब मैंने बा से कहा, "एक प्रार्थना करती हूं।" बा हैरान थी। पूछा "क्या बात है?" मैंने कहा, "बा ना कहो तो जरा धीरे से कहना। वे कवि हैं कहीं उन्हें दुःख न हो और कहीं बुखार न आ जाये।" इतना सुनते ही बा जोर से हंस पड़ी और कहने लगी, "बुखार आये, या कुछ भी हमें इससे क्या लेना–देना? कई सारे विवाह के प्रस्ताव तो तू पहले भी ठुकरा चुकी है, तब क्या उन सबको बुखार नहीं आया होगा?" तब मैंने बा से कहा, "बा कवि–हृदय बहुत भावुक होता है, मुझे उनके दुख से उतनी ही पीड़ा होगी, जितनी कि उन्हें मेरी 'ना' सुनने में।" बा ने मुझे छाती से लगा लिया और कहने लगी, "बेटी तुझे भी वह पसंद है, अन्यथा तुझे यह ध्यान ही नहीं आता। हमारी सबकी भी राय है कि वे तेरे लिए ही बने हैं और तू उनके लिए। मैं तो शाम को "हां" कर दूंगी।"

उस रोज उनके आते ही उनका ऐसा स्वागत हुआ कि मानों कन्या के घर बारात आयी हो। बा तुरंत श्रीफल और कुंकुंम की डिबिया लायीं। उन्होंने मुझे टीका किया और मैंने उनका। बा ने उनके हाथ में सवा रूपया और श्रीफल दिया और हमारी सगाई हो गई। फिर तो पंतजी, अमृतलाल नागरजी, मदनलाल नागरजी,

प्रतिभा जी, भगवती बाबू, डॉ. मोतीचंद्र, अनिल विस्वास, दिलीप कुमार ऐसी कितनी ही हस्तियां, जो नरेन्द्र जी के लिए अपने परिवार के सदस्यों-सी थीं, मुझे पलकों पर बिठाया और इतना प्यार दिया कि मैं उसका बयान नहीं कर सकती।

मेरी शादी की निमंत्रण-पत्रिका लोगों ने बरसों तक संजोकर रखी थी। क्योंकि हमारे मिलन के प्रतीक स्वरूप वह भी अनूठी थी। एक चित्रकार का "प्लेट" बना था; जिसमें ब्रश था और कवि की कलम थी। कलम, ब्रश को चारों ओर से घेरे हुए था। हमारा ब्याह १२ मई १९४७ को संपन्न हुआ। कैसी अद्‌भुत शादी थी हमारी !

बंबई में नरेन जी के परिवार तो थे ही नहीं, इसलिए मेरे परिवारवालों का अनुमान था कि थोड़े से ही लोग ब्याह में आयेंगे। मेरे पिताजी ने मेरे भाई को गांधी भवन (उनके रहने का स्थान) सारी गतिविधि देखने भेजा। भाई तुरंत ही भागा-भागा लौट आया और पिता जी से कहने लगा, "पिताजी, गाड़ियों से रास्ता भर गया है और इतने लोग हैं कि घर में प्रवेश करना भी कठिन जान पड़ता है। हर क्षेत्र के महानुभाव वहां एकत्रित हो चुके थे। भारत कोकिला सुब्बुलक्ष्मी जी, दिलीप कुमार, अमृतलाल नागरजी, भगवती चरण वर्मा, कवि प्रदीप, डॉ. मोतीचंद्र, डॉ. सफदर 'आह', अनिल बिश्वास, पन्नालाल घोष, नीलकंठ तिवारी, सुमित्रानंदन पंत, पारुल घोष, जयराज जी, अशोक कुमार वगैरह वहां थे।

पिता के घर से बिदा हो मेरी ड़ोली श्री सुब्बुलक्ष्मी जी और उनके पति श्री सदाशिवमजी की नई नीली शैवरलेट गाड़ी में गांधी भवन पहुंची। उस विशाल गाड़ी को फूलों से सजाया था और लगता था कि पूरे आकाश को तारों से मढ़ दिया हो। गृहप्रवेश सुब्बुलक्ष्मी जी और अमृतलाल नागरजी की पत्नी प्रतिभाजी ने करवाया। कुंकुंम से भरे थाल में पांव भिंगोकर सीढ़ियों पर चढ़ते हुए अपमे पैरौ कीछाप छोड़ते हुए लक्ष्मी जी की तरह गृह प्रवेश करवाया था। प्रतिभा जी शादी में थोड़ी देर तक ही सम्मिलिति हुई थीं। गांधी भवन में बैठ कर उन्होंने पूरे कमरे को फूलों से सजाया था। इतना ही नहीं, उन्होंने चमेली के फूलों से बनी एक

चोली भी बनायी थी, जिसमें नन्हें–नन्हें गुलाब के फूल बटन के स्थान पर लगवाये थे। फूलों के गहने बनवाये थे– माथे का बौर, बाजूबंद, चूड़ी, कमरबंद, बालों के लिए लंबे हार और लाल कलियों से बना चाबी का गुच्छा भी था।

गृह–प्रवेश करते ही मैंने पंत जी को प्रणाम किया और उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया। फिर मेरा साज–शृंगार शुरू हुआ। पंत जी ने कहा, "जब सारा शृंगार हो जाए तब सुशीला जी के दर्शन मुझे अवश्य करवाना।" मैं सबके प्यार के बोझ से जैसे दबी जा रही थी। मुझे याद आता है जब पंत जी ने मुझे फूलों से सजा देखा तो वे तुरन्त बोल उठे, 'वनकन्या शकुंतला भी तभी ऐसी ही सुंदर लगी होगी!"

हमारा घर था एक छोटा–सा। एक कमरा, साथ जुड़ा रसोई–घर। घर के एक ही कमरे को पार्टीशन लगाकर दो कमरों में बांटा गया था। एक में पूज्य पंतजी रहते थे और दूसरे में हम। एक रेल्वे अधिकारी की बेटी होने के नाते मुझे यह पहले दर्जे का कपार्टमेंट-सा ही प्रतीत होता था। इस घर को सुविधाजनक बनाने की तैयारियां शुरू हो गयीं। इस घर में सबसे बड़ी कठिनाई थी पानी की। इसी के फलस्वरूप रात को नौ बजे से बारह बजे तक जाग कर पानी भर कर रखना पड़ता था और यही कारण था कि कुंवारे मालिक के नौकर असुविधा का अनुभव कर रहे थे। नये नियम और नयी मालकिन का आना नौकरों को खटका। बहुत ही जल्दी घर में काफी परिवर्तन आ गये।

नरेन्द्र जी जब बॉम्बे टॉकीज में काम करते थे, उनके जाने या आने का कोई समय नहीं होता था। मैं और पंत जी घर में रहते थे और पार्टीशन से बनी दीवारों के भीतर अपना काम करते रहते थे। जब पूज्य पंत जी अपनी कल्पना से छुट्टी पाते तो मुझे फौरन आवाज देते, "सुशीला जी, मेरे घर में आ जाइये।" और मैं दस इंच की दूरी को पार करके वहां पहुंच जाती। कभी कुछ, तो कभी कुछ, हम बातें करते रहते। एक बार मुझसे कहने लगे, "चलो तुम्हारा भविष्य देखें।" फिर कहा, "इस किताब में से एक अध्याय मुझे अपने अक्षरों में लिख दीजिए।" मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। फिर कुछ विश्लेषण करने के

पश्चात मुझसे अचानक कहा, "सुशीला बहन, अपने को दो ही बच्चे बस। क्यों ठीक है ना ?" यह बात उन्होंने मुझसे तब कही थी, जब मुझे एक भी संतान नहीं हुई थी। उन्होंने सिर्फ मेरे अक्षरों को पढ़कर यह चेतावनी दी थी। जब मुझे उनके कहने का कारण समझ में आया, तब बोली, "ना, ना, कम से कम चार बच्चे तो होने ही चाहिए।" और वे जोर से हंस पड़े। उनकी बात का आशय मुझे तब समझ में आया जब मैंने पहली दो कन्याओं के पश्चात तीसरी कन्या को जन्म दिया। यह जन्म मेरा पेट काटकर सीझेरियन शल्यक्रिया द्वारा हुआ। यहां इतना ही कहना काफी होगा कि तीसरी कन्या के साथ मेरा भी पुनर्जन्म हुआ। सच, कवि की जिह्वा पर सरस्वती देवी का वास होता है।

पूज्य पंत जी मुझसे पूछा करते, "तुम सुखी हो न ? तुम्हें किसी बात की तकलीफ तो नहीं है ? न-नरेन भला लड़का है। तुम्हें दुखी नहीं करेगा।" और यदि कभी इस बीच वे आ जायें तो फौरन बात बदलकर कहते, 'अगर तंग करे तो फौरन मुझको बता देना।"

अपनी शादी के कुछ ही दिनों बाद मैंने मां के यहां जाने को कहा, तो नरेन जी उलझन में पंतजी से कहने लगे, "देखिये ना पंतजी, सुशीला इतने ही दिनों में बा के यहां जाने को कह रही है।" मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब पंतजी ने कहा, "ठीक ही है, यहां पानी नहीं, जगह नहीं और दो-चार रोज की ही तो बात है।" कैसे उन्हें पता चला कि मैं चार रोज के ही लिए जाना चाहती थी- जैसे हर स्त्री के लिए हर महीने कुछ दिन आराम लेना आवश्यक है !

घर में एक भोला नाम का नौकर था। जब हम खाना खाने बैठते तो वह उनको घी से भरी रोटी देता और मुझे लगभग सूखी। मैं तो कुछ न बोलती, किन्तु उस बात पर इनका ध्यान गया। उन्होंने अपनी रोटी मुझे दे दी और मेरी रोटी अपनी थाली में ले ली। भोला को डांटकर उन्होंने कहा, "ऐसा नही करते।" भोला तपाक से बोला, "हजूर, औरतन का घी खाना ठीक नहीं है।" हमें हंसी आ गयी। हमें हंसता देख भोला बोला, "हाँ बीबीजी आप साहब का नाम लेती हैं ये बात भी हमें पसंद नहीं "

कुछ दिनों बाद पुराने दोनों नौकर चले गये। अब रात को पानी हमें खुद ही भरना पड़ता था। एक रात पानी बहुत ही कम आ रहा था। इससे ड्रम में पाइप रखकर हम तीनों बातें करने लगे। मैं बीच-बीच में उठकर पानी भरा या नहीं, देख लेती थी। नरेन जी ने कहा, "अभी तो ठीक से पानी ही नहीं आया। क्यों भागती फिरती हो ? भर जायेगा तब बंद कर देंगे।" रात को अढ़ाई बजे के करीब मेरी आंखें खुलीं। जमीन पर पांव रखते ही मुंह से चीख निकल गई। ड्रम तो भर गया था, घर भी भर गया था पानी से। नरेन जी घबराकर उठ बैठे। "अरे यह ! अरे वह !! और हम संभालकर सभी चीजें ऊपर रखने लगे। दूसरे हिस्से में स्थिति को भांपते हुएं, हल्की-सी मुस्कान के साथ पंत जी ने कहा, "क्यों नरेन, नैया लेकर आ जाऊं क्या ?" पूज्य पंतजी ने भी सहायता करनी चाही और ज्यों ही पांव नीचे रखने लगे, चिल्ला उठे, "अरे नरेन पानी तो यहां भी आ गया है।" नरेन जी ने हंसकर कहा, "तो क्या नैया लेकर अब मुझे ही आना है ?" पानी निकालते-निकालते सुबह हो गई।

कुछ दिनों बाद पंत जी ने मुझसे यह कह कर प्रयाग के लिए प्रस्थान किया कि "जल्दी ही शुभ समाचार भेजियेगा। मुझे लोरी भी लिखकर भेजनी होगी'। जब मैंने उन्हें समाचार भेजा, तब पूज्य पंत ने दो कविताएं लिख भेजीं। इनके अलावा लिफाफे पर भी एक कविता थी। ये अप्रकाशित कविताएं इस प्रकार हैं- लिफाफे पर लिखा था-

सुश्री सुशीला जी को-

"एक विनतमुख कली बनाकर
भाव सुशीला का उसमें भर
आप पूर्ति कर लें इस स्तुति की,
चित्र गीत की सुंदर युति की।

पूज्य पंतजी के खत की शुरुआत बड़ी सुंदर थी-

"प्रिय सुशीला बेन,

आपके पत्र की प्रतीक्षा करते गर्मियों के लंबे-लंबे दिन निराश

होकर जैसे जाड़ों के छोटे दिनों में सिकुड़ गये हैं। एक लंबी–सी लोरी भेज रहा हूं। तब तक जरूर याद हो जायेगी। दोनों गाइएगा।

लोरी

आओ प्यारे मुन्ना आओ,
नभ के चंदा से मुस्काओ
नन्हे आओ।
तुम स्वप्नों के पथ से आओ,
तुम जीवन के रथ से आओ,
मुन्ना हो तो आंख जुड़ाओ
मुन्नी हो तो हृदय चुराओ
नन्हे आओ
झिलमिल करते जुगनू बन में
चपला दिखती छिपती घन में,
जगते तुम स्वप्नों के मन में
अब स्वरूप धर मुझे रिझाओ
नन्हे आओ।
खेल रहीं चल लहरें जल पर
लौट रही मृदु–रज भूतल पर
स्वप्नों की छाया आंचल पर
कहतीं मुझको सत्य बताओ
नन्हें आओ।
झूल हृदय की मृदु धड़कन में
फिर–फिर जग मन के लोचन में
तुम रहस्य के गोपन क्षण में
लिपट मधुर प्राणों से गाओ
मुन्ने आओ।
स्रोत फूट पड़ता कलरव कर
वंशी बज उठती मधुरव भर
तुम नीरव स्मिति से मन को हर
निज क्रंदन किलकार सुनाओ।
नन्हें आओ।

आओ खिलता कमल ताल पर
आंख खोलती कली डाल पर,
आई मंजरी मधु रसाल पर,
फूल सदृश मुखड़ा दिखलाओ,
मुन्ने आओ ।

रेख दूज की उगी गगन पर,
हंसी ओस की बूंद कमल पर,
जगा प्रात तारा भी सुंदर,
मेरे बाल अरुण मुस्काओ,
नन्हें आओ ।
बादल से स्वाति बन जाओ,
चातक उर की प्यास बुझाओ,
कोयल कहती तुम संग गाओ,
मैना कहती नाम बताओ

मुन्ने आओ ।
सरसी में ज्यों तारक उज्ज्वल,
सीपी के उर में मुक्ताहल,
सुरंग फूल के अंचल में ज्यों फल
मां की गोदी बीच सुहाओ,
नन्हें आओ ।
सुंदर तन से सुंदर तन पर,
दीपक लौ से दीपक लौ बर,
लहरी से उठ मृदुल नव लहर,
तुम जीवन का क्रम दुहराओ,
मुन्ने आओ ।
मां का-सा पा रूप निरूपमित,
आनन लोचन अधर सहज स्मित,
तुम शशि के दर्पण में बिम्बित,
शशि मुख की उपमा बन जाओ ।
नन्हें आओ ।
मातृ मूर्ति शिशु, तन में सीमित,
दृग की पुतली में वो अंकित,
हिम कण में रवि भी प्रतिबिंबित,

पूनो-से प्रतिपल बन जाओ,
मुन्ने आओ।
तुम अदम्य यौवन की आशा,
नारी जीवन की अभिलाषा,
प्राणों की ममता, परिभाषा,
मूर्तिमान नव तन धर आओ,
नन्हें आओ।
बापू को पाओगे बंदर,
मां को इन्द्रपरी-सी सुंदर
तुम आओ विकसित नर बन कर
कुल दीपक, कुल रत्न कहाओ
मुन्ने आओ।
गांधी भवन मुबारकबादी,
कल की-सी घटना है शादी !
खुश होंगी पर सुनकर दादी
तुम पोते को गोद खिलाओ।
मुन्ने आओ।
तुम स्वतंत्र भारत में आओ,
मुक्त तिरंगे को लहराओ,
फिर-फिर गांधी की जय गाओ
लाल ध्वजा मत लाल उठाओ
नन्हें आओ।
नानी के उर को हुलसाओ,
मौसी के मन को ललचाओ,
नाना, मामाओं को भाओ,
तुम पापा को नाच नचाओ,
मुन्ने आओ
आओ तुम्हे बुलाती दादी,
तुम्हें बुलाती ताई- नानी
तुम्हें बुलाते मौसी- मामा
आओ राजा, आओ रानी,
तुम सच हो, तुम नहीं कहानी।
सुनो पंत जी की यह बानी
मुन्ने आओ।

इस लोरी के साथ पूज्य पंतजी का ४१ वर्ष पुराने पत्र का भी उल्लेख कर देती तो शायद आज जो मुझे देख रहे हैं, उनकी बातों को अतिशयोक्ति ही समझ बैठते। न रहा वह रूप–लावण्य, न रहे वो घने–लंबे केश ! विशेषणों और उपमाओं से भरी पूज्य पंतजी की वह चिट्ठी विश्वास दिला गई कि नरेन्द्र जी, जिनका बंबई में कोई भी नहीं था, उन्हे सब कितना स्नेह, भ्रातृभाव और प्यार देते थे। उनकी पत्नी होने के नाते सभी ने मुझे भी पलकों पर बिठा लिया था। पूज्य पंतजी तो इलाहाबाद चले ही गये थे। हम दोनों ने उनके सानिध्य का अभाव खूब–खूब महसूस किया।

पूज्य पंतजी की लिखी लोरी तो हमने पा ली। दिन बीतते–बीतते छः मास पूरे हुए। नरेन्द्र जी मेरा बहुत ध्यान रखते थे। गर्भवती स्त्री का चलना अति आवश्यक मानकर मुझे नित्य शिवाजी पार्क पैदल ले जाते। गुजरात में गोद भरी जाती है। जब मैंने उन्हें यह बताया तब वे चुप हो गये। दूसरे दिन मुझे प्रातः जल्दी ही स्नान करने को कहा और यह भी बताया कि हम दोनों को कहीं बाहर जाना है। जब मैं तैयार हो रही थी, तब ये भी तैयार हो गये और कुछ सामग्री से भरा झोला हाथ में उठा लिया। वे मुझे महालक्ष्मी जी के मंदिर में ले गये। वहां उन्होंने ही देवी को आहवान् कर मेरे आंचल को अक्षत, सुपारी, पान, फूल और श्रीफल से भरा। तत्पश्चात वे बोले, "इसे महालक्ष्मी के चरणों में रख दो"। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। फिर वे बोले, "सुशीला अब तो तुम प्रसन्न हो न ? सुब्बुलक्ष्मी जी ने तुम्हारा गृह–प्रवेश करवाया और महालक्ष्मी जी ने तुम्हारी गोद भर दी।" ऐसे थे नरेन जी– हर बात का समाधान था उनके पास नित नूतन !

पास-पड़ोसवालों को जब पता चला कि मेरी गोद भरी गई है तब उनमें से एक मराठी भाषी महिला ने अपने यहां मुझे भोजन करने का न्योता दिया। तत्पश्चात् मुझे कुंकुम से टीका किया और चोली का कपड़ा दिया, जिसे महाराष्ट्र में "खंड" कहते हैं। मैंने उनके चरण–स्पर्श किये तो आशीर्वाद पाया कि 'सदेवा तुला धनाची पेटी, गुणाची पेटी, आणि रुपाची पेटी दे।" (ईश्वर तुम्हे लक्ष्मी की तरह कन्या, गुणवती कन्या और स्वरूपमान कन्या दे) यह सुनते ही मैं प्रसन्न हो कर चली आयी। पुत्र और पुत्रियों के सांसारिक भेदभाव से मैं अछूती थी। इस महिला का आशीर्वचन मुझे पुनः

स्मरण हुआ जब मुझे एक के बाद एक तीन कन्याएं हुई। पुत्र-प्राप्ति हमें चौथी और अंतिम संतान से हुई।

मेरी सबसे बड़ी पुत्री वासवी का जन्म डॉ. करुणाकरण के माटुंगा स्थित अस्पताल में हुआ। जन्म की तारीख थी तीसरी अप्रैल १९४८। उसके जन्म के समय मैं पीड़ावश इतनी चीखी-चिल्लाई थी कि बाहर खड़े नरेन्द्रजी खिड़की पर चढ़कर डॉक्टर से पूछने लगे कि क्या हो रहा है ? मुझे याद आता है कि डॉ. उनसे बहुत नाराज हो कर बोली कि वे अस्पताल के कंपाउंड से बाहर कहीं चले जायें। अभी तो बच्चे के जन्म में काफी समय है।

वासवी बहुत गोरी थी और नरेन्द्र के परिवार के सदस्यों की तरह उसके बाल भी एकदम सुनहरे थे। नरेन्द्रजी उससे बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होंने तो मुझे पहले ही कह दिया था कि अगर मैंने उन्हें बेटी दी तो वे मुझे माणिक का सेट देंगे। स्वभाव से वासवी शांत थी। मैंने उसका नाम "तेजल" रख दिया। नरेन जी उस नाम से प्रसन्न नहीं थे। मुझसे कहने लगे "त" "नाम पर साढ़ेसाती चल रही है। हमें बच्चे का ऐसा नाम क्यों रखना चाहिए ?"

उन्हीं दिनों हमारा परिचय पूना स्थित प्रभात फिल्म निर्माण कंपनी के गुरुतुल्य श्री न्याय-रत्न विनोद जी से हुआ। इस संत पुरुष ने भी इनकी ही तरह "त" शब्द से प्रारंभ "तेजल" नाम को ठीक नहीं माना और मेरी बेटी का नाम "वासवी" रख दिया गया। वासव यानि इंद्र और वासवी इंद्र की शक्ति को कहते हैं। उन्होंने उसके नाम का एक श्लोक भी लिख कर दिया और कहा कि बच्ची को इसे कंठस्थ करवा लेना। जो इस प्रकार है

"त्वम साक्षात् वासवी शक्ति:
भानु शक्तया विनिर्मिता,
विभविष्णुता नरेन्द्रेण,
यज्ञ ज्वाला प्रकल्पिता।"

उसी दिन से हमारी बड़ी बेटी तेजल से वासवी बन गई।

पूना आने के पश्चात नया शहर औरअनुभव न होने के कारण बेटी वासवी को लेकर अक्सर हमें डॉक्टर के यहां भागना पड़ता था। एक बार इसी तरह हम उसे लेकर डॉक्टर के दवाखाने गये तो वहां काफी भीड़ थी। वासवी ने कुछ समय बाद रोना शुरू कर दिया। हमारा नंबर आखीर में था। तब एक सज्जन ने कुछ व्यंग्य के साथ कहा, "कविश्री बच्ची को एकाध कविता ही सुना दीजिए। शायद चुप हो जाये।" इन्होंने कहा, "अच्छा"। जो लोरी वे वासवी को घर पर सुलाने के समय गाया करते थे, उसे धीमी आवाज में वासवी के कानों में गाने लगे। वासवी चुप होकर सो गई। कहने वाले सज्जन की हालत तो आप समझ ही सकते हैं क्या हुई। वासवी बचपन से ही मेधावी थी। और पढ़ाई में कई बार प्रवीणता के लिए सर्टिफिकेट भी लिये थे।

पूना में हमारे पड़ोस में एक दक्षिण भारतीय परिवार रहता था, वो मुझे सुशीला अम्मा कहकर पुकारते थे। उनको सुन कर वासवी ने "सुशीलाअम्मा" न कह पाने पर "लालाअम्मा" कहकर पुकारना शुरू किया। "लाला" तो कब छूट गया ध्यान नहीं आता, पर तबसे सभी बच्चों के लिए मैं "अम्मा"बन गई!

पूना से फिर उसी छोटी-सी कुटिया में आ गये, जहां हमारा दांपत्य जीवन पारिवारिक जीवन में परिवर्तित होता गया था। पूना हम करीब डेढ़ वर्ष रहे। पूज्य अम्मा जी श्रीमती गंगादेवी के दर्शन सर्वप्रथम मैंने वहीं किये थे। जब बंबई में बहुत भारी चक्रवात आया था, तब अम्माजी हमारे घर आयी थीं और जहांगीरपुर से पूना पहुंचने में उन्हें करीब पांच दिन लगे थे। श्री गणपतभाई साहब भी उनके साथ आये थे। मेरे लिए चांदी के गहने, इमरती की आठ किलो की चूड़ियां, गले का सोने का चोकर, अंगूठे पर पहनने वाली सोने की अंगूठी और ७० चांदी के सिक्के लायीं थीं। कुछ दिनों साथ रहने पर मैंने जाना कि अम्मा जी इनके सौतेले भाई के न रहने से उनके बच्चों के लिए बहुत चिंतित थीं। (नगेन्द्र, गायत्री, चोखा)। मैंने शगुन के सिक्कों के सिवा सारी चीजें उन्हें वापस लौटा दीं, जिससे जेठजी के बच्चों के काम आयें। अम्मा जी ने मुझे समझाया कि गायत्री की मां का हिस्सा भी वैसा ही है, मगर मैंने एक न मानी और साथ में प्रथम बार अम्मा जी के पांव छूने पर उन्हें मैंने सोने की चार चूड़ियां और कंठी भी दी।

जब हम पूना से बंबई आ रहे थे, तब अम्मा जी ने इनके हाथ में पहनी अंगूठी की प्रशंसा की। जिसे कैट्रस आई या लहसुनिया कहते हैं। इन्होंने उसे फौरन उतार कर अम्माजी को दे दी। पता नहीं क्यों मुझे ये बात अच्छी नहीं लगी, पर मैं चुप रही। कैट्रसआई की अंगूठी तो अपना रंग दिखा कर ही रही। रास्ते में गांव जाते समय अम्मा जी के पैसे चोरी हो गये और जाते ही वहां डाका पड़ा। उसी अंगूठी से बाद में पता चला कि परिवार के ही किसी व्यक्ति की मदद से ये डाका पड़ा था। मेरा और गायत्री की मां का सभी कुछ चला गया था। अम्मा जी ने इन्हें लिखा कि तुम आकर कुछ कार्यवाही करो। इन्होंने जवाब दिया, "परिवार के व्यक्ति को क्या हम जेल भेजेंगे"? अम्मा जी को लिखा " जो हुआ उसे भूल जाओ।" अम्मा जी इसी बात से कई दिनों इनसे नाराज भी रहीं।

इनके बचपन की सारी बातें मैंने अम्मा जी और पूज्य गणपतभाई साहब से सुनी थीं। उसी के आधार पर इनके बचपन के बारे में लिख रही हूं।

नरेन्द्र जी का जन्म २८-२-१९१३ में जहांगीरपुर, परगना जेवर, तहसील खुर्जा, जिला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। गांव में एक हवेली थी, जो बहुत सम्पन्न और सुखी थी। दूध- दही और मक्खन से गगरी सदा छलकती रहती थी। घर के व्यक्ति और नौकर-चाकर को मिलाकर रोज करीब सौ आदमी का भोजन बनता था। भाइयों में और परिवार में एक- दूसरे के लिए आदर और स्नेह था। बड़ों के बोल को सदा महत्व दिया जाता, जैसे दशरथ के बोल पर राम के वनवास का आदर्श !

घर में तीन भाई। बड़े भाई के यहां एक बेटा, दूसरे को तीन बेटियां और तीसरे के यहां दो बेटे। एक ओंकार जी और दूसरे नरेन्द्र जी। इनके पूज्य पिताजी श्री पूर्णलालजी की पत्नी बेटे ओंकार जी के जन्म के बाद चल बसी थीं। बच्चे के पालन-पोषण के लिए उन्होंने श्रीमती गंगादेवी से ब्याह किया। इन्हें हम सब "अम्माजी" कहते थे। अम्मा जी ने अपने सौतेले बेटे को बहुत प्यार दिया और जब वे बारह वर्ष के हुए तभी नरेन्द्र जी को जन्म दिया।

गांव में जनाना और मर्दाना बैठक अलग-अलग थीं। बालक नरेन्द्र ने जनाना बैठक की दहलीज सिर्फ नौ महीने के होते ही छोड़ दी थी और अपने ताऊजी की गोद में पलना शुरू कर दिया था। एक दिन बातों ही बातों में ताऊजी ने अपने छोटे भाई श्री पूर्णलाल जी से मजाक में कहा कि "हमें बेटा थोड़े ही है ? हमारे यहां तो तीन कन्या-रत्न हैं ?" बस फिर क्या था ? पूज्य पूर्णलालजी स्फूर्ति से उठे और जनाना में से अम्मा जी को बुलाया और नरेनजी को उनकी गोद में दे दिया। तब वे बोले, "आज से लल्ला भाईसाहब के पास ही रहेगा, तुम भूल जाना कि तुम्हें कोई बेटा भी हुआ था।" कोई क्या जाने अम्मा जी भीतर से कितनी सिहर उठी होंगी और उनके दिल पर क्या गुजरी होगी ? स्त्री के लंबे घूंघट में मोती से बड़े-बड़े अश्रु और मुंह पर मन भर का ताला जो लगा रहता है। इसीलिए नरेन्द्र जी बचपन से ही नौ महीने की उम्र में ही औरतों से दूर और पुरुष वर्ग से बहुत करीब हो गये थे। वे अपने ताऊजी से ऐसे घुलमिल गये कि अपनी मां को भुला-सा दिया था। यहां तक कि अम्मा जी जब भी पीहर जातीं वे अपनी ननसाल भी कभी नहीं गये। इनके पिता भी अपनी बात के धनी थे। उस दिन के बाद अपने वचन से कभी नहीं मुड़े और बालक नरेन्द्र को उन्होंने ताऊजी का ही बेटा समझा।

बचपन से ही पिता, गुरू, मार्गदर्शक जो भी थे, सिर्फ ताऊजी ही थे। ताऊजी की छत्रछाया में पलते बालक नरेन्द्र चार वर्ष के हो गये। बचपन और स्वभाव से ही वे बड़े चंचल और तीव्र बुद्धि के थे। सारा दिन "बाबा" की परछाईं की तरह उनके इर्द-गिर्द खेलते रहते और बाबा भी उन्हें अपनी आंखों से ओझल न होने देते। एक दिन जब बाबा हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और बालक नरेन्द्र बाबा को अपनी बाल-सुलभ क्रीड़ा से लुभा रहे थे, अचानक उनकी नजर आंगन में पड़े पीतल के बड़े कलश पर पड़ी। पीतल का कलश और ऊपर से उसमें सूर्य की किरणों का प्रकाश ! उसी से वशीभूत होकर अपना प्रतिबिंब देख एकदम भाव-विभोर हो गये और बोलने लगे... ता... ता, जैसे उसके साथ लुका-छुपी खेल रहे हों। जैसे ही उसे पकड़ने की चेष्टा की, सर कलश में फंस गया। क्षण भर में हो-हल्ला मच गया। महिलाओं के जमघट को हटाकर बाबा एकदम चिल्लाए, "तुम तो उसे मार ही डालोगी।" और दो पांव को एक़दम उठाकर, सीधे रखकर उन्होंने बालक को कलश के बाहर निकाल लिया और अपने सीने से लगा कर प्रभु

का उपकार माना। जब बालक को पूछा, "तू वहां क्या करने गया था ?" बड़ी ही सहजता से बालक ने उत्तर दिया कि "मैं तो सूर्य को पकड़ने गया था।" और सूर्य न मिलने से रूठकर रोने लग गया था। बाबा ने उन्हे आश्वासन देकर चुप तो कराया, पर तब किसने जाना था कि जहांगीरपूर में एक कवि का जन्म हो गया है, जिसे आगे चलकर लोग कवि नरेन्द्र शर्मा के नाम से जानेंगे। किसी ने सच हीं कहा है- "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

बाबा ने बालक नरेन्द्र को अक्षरज्ञान देना शुरू कर दिया। न पाटी, न कलम। नन्हें-नन्हें चौरस लकड़ी के गुट्टक पर बाराक्षरी के एक-एक अक्षर वे उन्हें ऐसी सहजता से बोलते मानो जन्म से ही सीखकर आये हों। फिर आयी बारी जुड़वाक्षरों की। बाबा एक शब्द जोड़कर बताते तो वे दो-तीन शब्दों को जोड़कर अपनी प्रतिभा का एहसास करवाते। ऐसे ही खेल-खेल में बिना पाटी-कलम के वाक्यों को बनाना भी सीख गये। बाबा थक जाते, पर बालक एक-एक शब्दों को जोड़ वाक्य बनाते थकता ही नहीं था। बालक पाठशाला में जाने योग्य हो गया था, मगर बाबा का मन उसे अपने से दूर रखना नहीं चाहता था। मन ही मन सोचते कहीं अध्यापक बालक के कान न मरोड़ दे और उनके दाखिले की बात इसी तरह टलती रही। बालक नरेन्द्र ने ये गुत्थी भी अपने-आप ही सुलझा ली।

एक दिन बालक नरेन्द्र खेल-खेल में पाठशाला पहुंच गये। वहां कोई इंस्पेक्टर बच्चों की परीक्षा ले रहे थे। यह चौथी कक्षा का वर्ग था। उन्होंने पूछा, "फलां नदी कहां से निकलती है ?" सारे बच्चे सर नीचे लटकाये बैठे थे। किसी को उत्तर जो न मालूम था। मगर उन्हें खिड़की के बाहर खड़े बालक से सही उत्तर मिला। तब पूछताछ शुरू हुई कि यह मेधावी बालक कौन है ? इंस्पेक्टर ने उन्हें अंदर बुलाया और पूछा, "बेटा कहां पढ़ते हो ?" जवाब मिला," घर पर, बाबा के पास।" यह सुनते ही वे घर पर बाबा को मिलने आ गये। बाबा से मिले और उन्होंने बाबा को आश्वासन दिया और मनवा लिया कि बालक नरेन्द्र को जल्द ही स्कूल में भर्ती करवा दें। वो जल्दी ही सब कुछ सीख जायेगा। इस तरह सीधे पांचवीं कक्षा में इन्हें दाखला मिल गया। सिर्फ सात वर्ष की छोटी आयु में 'सत्यार्थप्रकाश' बालक नरेन्द्र

को कंठस्थ हो गया था। बोलते वक्त किताब के पन्ने उलट–पुलट करते जाते और अचानक बाबा से पूछ बैठते कि वे कौन–से पन्ने पर आये हैं। बाबा कह उठते, "वाह न जाने कौन से पन्नों पे आयो है? तोते की तरह बोले जा रहो है। ताको कोई जरूरत नहीं पन्ने-वन्ने की।" दिन दूनी रात चौगुनी बालक की प्रगति हो रही थी कि उनके पिता का देहान्त हो गया। इतने बड़े दुख को भी उन्होंने झेल लिया, क्योंकि इनके लिए तो माता–पिता सभी बाबा ही थे। बचपन में जो उनके पिता ने कहा और किया था ईश्वर ने उन्हीं से करवाया था। इसे इनकी दूर दृष्टि समझें या क्या? भला नहीं तो ऐसा अनमोल रत्न किसी को दे देता है?

बालक नरेन्द्र की एक छोटी बहन भी थी। उम्र में उनसे दो–तीन वर्ष छोटी, जो उन्हें बहुत ही प्यारी थी। उनका नाम था परमेश्वरी। स्वभाव से शांत, बहुत ही गोरी और सुनहले बालोंवाली। सात साल के बाद वे भी उन्हें छोड़कर परलोक सिधार गई। उस दिन वे बहुत ही फूट–फूट कर रोये थे। लेकिन उनके जीवन का आठवां वर्ष बहुत ही दुःखद रहा। उस एक ही वर्ष में उन्हें परिवार के तीन स्वजनों का बिछोह सहना पड़ा– दादाजी मोहनलाल, दादी जी और बहन परमेश्वरी। बाबा के न रहने से उनके बाह्य जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। उनका समुद्र-सा स्नेह, ममता, उत्साह पहले से भी ज्यादा प्रोत्साहित कर, उनकी जीवन बेला को सींच कर सहारा देता रहा और प्रगति की राह चलाया।

जब वे सातवीं कक्षा में पढ़ते थे, तब बच्चों को अमृतसर देखने पाठशाला से ले गये। वापसी का समय हुआ तब स्टेशन पर बालक नरेन्द्र ने कहा कि जलियांवाला बाग और म्युजियम रह गये हैं, उन्हें भी देखकर ही वापस जाया जाये। पर उनकी बात कौन सुनता? सबकी आखें बचाकर वे वहां से खिसक गये। ट्रेन के छूटने का समय हो गया था और बालक नरेन्द्र गायब। शिक्षक को ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। पर उन्हें उनकी मनमानी पर क्रोध तो जरूर ही आया होगा। एक शिक्षक को स्टेशन पर छोड़कर बाकी सारे खुर्जा वापिस आ गये। दूसरे दिन नरेन्द्रजी जब वापस आये, तब उन्हें प्रिंसिपल के सामने खड़ा कर दिया गया। वे बचपन से ही निर्भीक तो थे ही। हेडमास्टर जी का नाम था श्री लक्ष्मीनारायण माथुर (श्री जगदीशचंद्र माथुर के पिताजी)।

पहला प्रश्न था, "क्या तुम बिना पूछे लाहौर गये थे ?"

जवाब था, "जी हां।"

दूसरा प्रश्न था, "तुम्हें बिना पूछे जाना चाहिये था ?" जवाब मिला "मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी किसी ने मेरी सुनी नहीं।" तीसरा प्रश्न- "आखिर तुम क्यों जाना चाहते थे लाहौर ?" हाथ में रखी अपनी नोटबुक खोलकर बड़ी ही सहजता से वे बोले, "देखिए, मैंने समय बरबाद नहीं किया। जो-जो देखा, सब लिखकर लाया हूं। हां, म्युजियम देख कर मुझे एक बात की खुशी हुई कि वहां हमारे खुर्जा के बने हुए कांच के बर्तन भी रखे हुए थे। नीचे लिखा था, "मेड इन खुर्जा।" इतने आत्मविश्वास से ये सब कहा कि दंडित होने के बजाय उन्हें शाबाशी ही मिली।

श्री लक्ष्मीनारायण जी के सुपुत्र उनसे पिछली कक्षा में थे और जब कभी सालाना जलसा होता तो ये राम बनते और जगदीशचंद्र जी लक्ष्मण। ये बचपन से ही बहुत उत्साही थे और कुछ नया सीखने की इनकी प्रकृति थी। यहां तक कि खेल-कूद में भी बड़े उत्साह से भाग लेते। आज शायद सब पढ़कर आश्चर्य करें पर फुटबॉल भी वे बहुत अच्छा खेलते थे और एक दिन अखाड़े में कहा गया कि "जाओ फलां से भिड़ जाओ।" अपने कद और काठी का इन्हें कभी ध्यान नहीं था। आत्मबल इतना था कि अपने से दुगने-चौड़े लंबे को देखकर भी ये भयभीत नहीं होते। "जो होगा सो देखा जायेगा" का साहस रखते थे। गुरु भी उनके साहस का लोहा मान गये और पीठ थपथपाते बोल उठे, "जोन यू आर ए ब्रेव ब्वॉय।" वे उन्हें प्यार से "जोन" कहकर पुकारते थे। हर किताब को शुरू से अखीर तक पढ़ जाने की आदत के कारण उनके मन के किसी कोने में देशभक्ति की नींव पड़ चुकी थी। देश-प्रेमी वीरों की गाथा और उन दिनों का वातावरण, कुछ कर गुजरने की साध ने उन्हें घेर लिया था। बम कैसे बनाया जाये, इसी उलझन में एक रोज बम भी बनाया था। हालांकि प्रयोग निष्फल रहा और प्रयोग में लाने के पहले ही फट गया। ईश्वर ने भी उनकी रक्षा की। मुंह को झटके से घुमा दिया और हथेली को सामने न कर दिया होता तो आंखे न बच पातीं। इसी के प्रसादस्वरूप कई वर्षों बाद भी कभी-कभार इनकी हथेली में से कांच के टुकड़े

निकलते रहे। आखिरी टुकड़ा १९७७ के अक्टूबर में निकला था। कभी किसी डॉक्टर को बताना नहीं पड़ा, क्योंकि मांस में लिपटे टुकड़ों ने उन्हें कभी कष्ट नहीं दिया। इन सभी बातों में लगा मन सदा भविष्य की ओर उतावला रहता था।

तभी एक रोज किसी पास के गांव से शादी का प्रस्ताव आया। उस समय के रिवाज के अनुसार प्रस्ताव अच्छा आया, घराना बड़ा था और दहेज–दक्षिणा तो थी ही। सबसे बड़ी बात थी कि बेटीवाले आगे की डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए लड़के को अमेरिका भेजना चाहते थे। उम्र कोई खास तो थी नहीं, इसलिए उनसे पूछने का प्रश्न ही नहीं था। बड़ों के बीच सारी बात तय हो गई और शगुन से भरे थाल घर में आ गये। जब सब चले गये तो वे बाबा से पूछने लगे कि ये सब क्या है ? जब जाना कि ये सारे शगुन उन्हीं के लिए हैं तो कहने लगे, "मैं तो शादी नहीं करूंगा। बाबा ने पूछा, "क्यों?" कहने लगे, "मैं तो बहुत पढूंगा।" बाबा ने कहा, "मैं क्या ना जानूं कि तू पढ़ना चाहे है ? वही तो मैं भी कर रहा हूं।" तुरंत उत्तर दिया। "इनके पैसों से अमेरिका नहीं जाऊंगा और ना ही पढूंगा। बाबा मुझसे यदि जोर–जबरन की तो मैं साधू बन जाऊंगा"। बाबा तब जरा चौंके... उनके स्वभाव से तो परिचित थे ही, प्यार भी असीम था, सो चुप होकर उनका माथा सहलाते बोले, "जा, जा, ना करेंगे तेरी शादी। तू अपना खेल।" उन्होंने तो यही जाना होगा कि बाद में मना लेंगे और दोपहर की थकान मिटाने सो गये। पूरा घर भी तभी सुस्ता रहा था। बाबा के आश्वासन से बालक नरेन्द्र सोचने लगे, बाबा को तो मना ही लिया है अब ये सारे थालों की यहां क्या जरूरत ? सारे थालों को माथे पर रख अपने स्वसुर घर की ओर चल पड़े। वहां जब सबने उन्हें देखा तो बड़े प्यार से बिठा कर पूछा, "ये सब यहां क्यों वापस ले आये हो ? ऐसा तो अशुभ होता है।" उन्होंने वहां भी वही सारी बातें दोहरा दीं।वे भी कहने लगे, "बहुत पढ़ो वह तो हम भी चाहते हैं। अच्छा शादी भी तभी होगी, जब तुम चाहोगे।" पर वह तो अपनी 'ना' ही दोहराते रहे।

बाबा जब जागे तो घर में शोरगुल मचा हुआ था। तभी लौटाये सामान के साथ बालक नरेन्द्र और उनके भावी स्वसुर खड़े दिखाई दिये। सारी बातें सुनकर बाबा को इनकी साधू बन जाने की बात

याद आ गई । वे आगे बढ़े और हाथ जोड़कर बार-बार क्षमा मांगकर कहने लगे 'मैं सब कुछ कर सकता हूं पर इस बच्चे को दुःखी नहीं कर सकता । मुझे 'क्षमा' कर दो । हमारे घर से वापस चला गया सगुन अब दोबारा घर में स्वीकारा नहीं जायेगा ।" कैसे होंगे बाबा कि नन्हें बालक की बात का भी इतना लिहाज ! न तो ऐसा बड़प्पन देखने मिलता है और न ही ऐसा बचपन । धन्य हैं वे दोनों ।

साधु बन जाने की धमकी कहीं गीदड़ धमकी नहीं तो थी । कहीं दोबारा बाबा शादी की बात न दोहरा दें, यह मानकर इन्होंने पहले ही साधू बन जाना उचित समझा । बुद्धि में भले ही बड़े हों पर थे तो बालक ! मन ही मन सोच लिया, "भोजन नहीं करूंगा, एक जगह बैठा-बैठा प्रभु का नाम लूंगा, कहीं भी नहीं जाऊंगा । फिर सोचा, पेशाब आयी तो क्या करूंगा ? उसे भी धागे से बांध देता हूं- पेशाब होगी ही कैसे ? दिन तो जैसे-तैसे कट गया, पर बढ़ती रात के साथ उनकी छटपटाहट भी बढ़ने लगी । "तोको क्या होवे है ?" प्रश्नों की झड़ी बरसने लगी । बालक नरेन्द्र भला क्या उत्तर देते ? वैद्य को बुलाया गया और लोग इकट्ठा हो गये । वैद्यराज ने टट्टी के बारे में पूछा तो "ना" कहा, पेशाब के बारे में पूछा तो भी "ना" कहा । वैद्यराज ने कहा "देखो प्रयत्न करो शायद हो जाए ।" बालक ने सहजता से जवाब दिया, "होगा कैसे, मैंने जो धागा बांध दिया है ।" नंगा कर देखा तो सब अचरज में पड़ गये । सूजन थी और सारे दुःख की जड़ भी मिल गई । सुनार को बुलाकर हलके हाथ से धागा कटवाया गया । अम्माजी हंसकर बताती थीं कि "तब तो ऐसो पेशाब छूट्यो मानो किसी ने फव्वारो छोड़ दियो हो । अपने सामने खड़े बाबा को तो स्नान ही करवा दिया था उसने ।" बाबा के पूछने पर उन्होंने रहस्य की बात बता दी कि यदि पहले ही साधु बन गया तो ब्याह करने को कोई नहीं कहेगा । बाबा ने उन्हें तुरंत अपनी छाती से लगा लिया और फिर कभी शादी की बात न उठाने की सौगंध ली ।" परंतु स्त्री-वर्ग को तो चिढ़ाने का अच्छा मौका मिल गया था । बार-बार चिढ़ाती "साधु महाराज शादी ना बनाओगे क्या ?" जब ज्यादह चिढ़ जाते तो कहते, "ना क्यों बनाऊंगा ? जरूर बनाऊंगा । मेरी मरजी । "अच्छा बताओ किससे शादी बनाओगे ?" पूछा जाता । तो वे कहते, "सुशीला से ।" ऐसी अनहोनी बात कोई समझता नहीं था, पर सब जिसे सिर्फ बालक समझते थे,

उन्हें क्या पता था कि वह तो आगे चलकर कवि नरेन्द्र बनेगा, जो तभी से अपने विचारों की उड़ान भर रहा था। यह तो माता सरस्वती का ही आशीष था, जो उनकीजिह्वा पर मेरा नाम आ गया था। पाठकगण ! क्या उस जमाने में यू.पी. और गुजरात का ऐसा मिलन संभव था ? पर सरस्वती के प्रिय पुत्र की बात तो सच होनी ही थी । आज उनकी बरसों से सजायी प्रतिमा "सुशीला" यह सब लिख रही है, उसे मैं सिर्फ संयोग कैसे मानूं? मैं तो जनम-जनम का मिलन ही मानती हूं।

इनका प्रारंभिक शिक्षण ग्राम्य पाठशाला जहांगीरपुर में १९२३ में पूर्ण हुआ और हाईस्कूल का शिक्षण जे. एस. हाईस्कूल, खुर्जा में। १९२९ में । आगे का इंटर तक एन. आई. ई. सी. इंटर कॉलेज में। यह बात १९३१ की है । जब तक जहांगीरपुर और खुर्जा में पढ़ते रहे घर करीब रहा । बाबा को उनमें अटूट विश्वास था और उन्हें अपने से एकदम निकटतम मानते थे। उनकी याददाश्त का तो लोहा मान ही चुके थे । इसलिए जब भी गहने, पैसे कहीं भी छुपाते, इन्हें चुपचाप अपने पास बुलाते और कहते कि ये सब कहां-कहां छिपा कर रखा है । उनका वक्त निकट आ गया है, इसीलिए सारी बातें इन्हें बताते थे कि भविष्य में काम आये । पर इन्हें पैसों का मोह कभी नहीं था, न ही परवाह थी । न ही इस विषय में इन्होंने किसी से कुछ कहा, या पाने की लालसा की । घर में ब्याज से पैसे भी दिये जाते थे और जब कभी पैसे वसूले जाते तब एक बड़े लोहे के टुकड़े पर उन्हें ठोक-ठोक कर परखा जाता था कि वह सच्चा है या नहीं? पर बालक नरेन्द्र को उस लोहे के टुकड़े से सख्त नफ़रत थी । जब भी मौका मिलता , उसे कहीं न कहीं छिपा देते । बाबा उन्हें खूब जानते थे , बुलाकर पूछ ही लेते कि "कहां रख दिया है वो लोहे का गुट्टक?" बाबा को सहजता से उत्तर मिलता "बाबा मुझे उसकी आवाज से कँपकंपी हो जाती है । इसीलिए मैंने उस छिपा दिया है ।" बाबा कहते, "हर बात में तू तो अपनी मनमानी ही करता है, पर यह तो मेरी लक्ष्मीमैया है ।" सरस्वती - पुत्र का इन सभी चीजों से क्या वास्ता? न जाने क्यों वो दु:खी-दु:खी हो जाता। क्या करते, बाबा जो उनके बड़े भी थे और बहुत प्यारे भी । चुप रहने के सिवा उनके पास और कोई चारा भी नहीं था ।

जब बचपन की कहानी मैं दुहराती तो वे मन ही मन मुस्कराते और बात खत्म ! बी. ए. और एम. ए. इन्होंने इलाहबाद विश्वविद्यालय से किया था । यह बात १९३१ से १९३६ की है । कुछ बातें तो मैंने इन्हीं के मुख से भी सुनी थीं । पक्के तथ्य के अभाव से मैं और ज्यादा कुछ लिखना नहीं चाहती । बाकी ये तो सारी बातें अम्मा जी से सुनी थीं, इसलिए लिख रही हूं । हमारी गृहस्थी की गाड़ी मजे में चल रही थी ।

पूना से वापिस बंबई आने पर पता चला कि हमारे यहां दूसरा बच्चा आने वाला है । बार-बार यही सोचती जो भी बच्चा हो उसका रंग थोड़ा श्याम हो तो अच्छा । हमारे पड़ोसी के यहां पांच बेटियां थीं और सभी की सभी श्याम और बड़ी-बड़ी आंखों-वाली । सच लावण्या भी जब पैदा हुई, ठीक वैसे ही श्याम और उसकी आंखें भी बहुत ही सुंदर थीं । जो भी देखता कहता, क्या "नमक" है मुख पर । ये जवाब देते, "ये हमारी लावण्या बिटिया है ।" तब से उसका नाम हो गया "लावण्या" । उसने बोलना शुरू किया तब वो और बच्चों से अलग-सा बोलती थी । जैसे सांझ ढलने पर मुझे कहती "अम्मा अंदर आ जाओ । रात आ गयी है ।" मैं पूछती ऐसा क्यों कहती हो? तो जवाब मिलता, "क्या तुम्हें हरी पत्तियां, काली नहीं दिखाई देतीं?" कोई बच्चा गोरा देखे तो कहती, "ये कितना गोरा है अम्मा बिलकुल "ट्यूब लाइट" जैसा ।" एक बार हमारे पड़ोसी की बेटी ने उसे भिंगो दिया । कहने लगी, "पापा मुझे लता ने ऐसे भिंगो दिया है, जैसे पानी में मछली ।" उसका हर बात कहने का अंदाज निराला ही था । ये सारी बातें सुन ये खुश होकर कहते, हमारी बेटी तो कविता में बातें करती है ।

लावण्या के जन्म के समय गायत्री हमारे यहां रहने आयी थी । तब वह दस वर्ष की थी । अम्माजी ने उसे जब मुझे सौंपा, तब एक ही वचन लिया था कि मैं उसे अंग्रेजी में पढ़ाई नहीं कराऊंगी । कभी बाद में गांव में यदि शादी हो गई तो उसे दिक्कत होगी । मैंने उसे कटिंग का कोर्स करवाया और हिंदी से "कोविद" । गायत्री तेज दिमाग की तो थी ही । पूरी बंबई में कटिंग में प्रथम आयी और अब तो वो एम. ए. है ।

लावण्या के बाद मोंघी (बांधवी) का जन्म हुआ । पंत जी की

भविष्य वाणी सही निकली । उसका जन्म "सीझेरियन" ऑपरेशन से हुआ और मुझे सात सेर खून भी चढ़ाना पड़ा था । तब वह ऑपरेशन इतना आसान नहीं माना जाता था। उस समय मैं अपनी मां के घर रहने गयी थी और नाम डॉ. अर्जेकिया की खार मधुपार्क केअस्पताल -में लिखवाया था, इसलिए वहां से उन लोगों ने "ओपेरा हाऊस" वाले अस्पताल में मुझे मोर्फिया का इंजेक्शन देकर ले जाने को कहा । जैसे-तैसे वहां पहुंच गये, पर जाकर पता चला कि लिफ्ट ही खराब है । मेरे सबसे बड़े भाई साहब श्री बालकृष्ण भाई ने ऐसी हालत में मुझे उठा लिया और अपनी गोदी में ऊपर ले गये । उस समय वे फायरब्रिगेड में काम करते थे । तब तक ये भी आ गये थे । मेरी तकलीफ और आर्थिक स्थिति के कारण बहुत ही परेशान थे । हालांकि मेरी मां और इनके कुछ मित्रगण पैसों के साथ वहां पहुंच ही गये थे । ऐसे ऑपरेशन में कई स्त्रियों की मृत्यु भी हुई थी । (उसी दौरान श्री भारतभूषण की पत्नी भी चल बसी थीं) । मेरे साथ वाले कमरे में जो स्त्री थी, उसकी भी चौथे बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु हो गयी थी । उसकी मां खड़ी-खड़ी रो रही थी कि उसे ढँकने को भी कुछ नहीं था। हम साथ जो कपड़े ले गये थे, उसमें से मैंने उसे दो साड़ियां दे दीं । उस बेचारी की आत्मा के आशीष से ही शायद मैं और मेरी बच्ची जी गये । पर इतनी चिंता के वातावरण में भी एक आश्चर्य की घटना घट गयी । उसी समय इनको खोजते-खोजते एक प्रोड्यूसर वहां आ गये और इनके हाथ में दस हजार रुपये रखकर कहने लगे कि चार गाने तुरंत लिखकर दे दें । ऐसी मन:स्थिति में भी इन्होंने गीत लिखकर दिये ।

मोंघी दस पाउंड की पैदा हुई थी । इतनी गोरी मानों सफेद मक्खन । सर पर एक भी बाल नहीं । उसे देखते ही डॉक्टर ने कहा "शी इज रेडीमेड चाइल्ड" दूध भी उसे बड़ी बोतल में दिया जाता था । मां ने उसे देख कहा, "तीसरी कन्या भले हुई पर भाग्यवान है । बाप को किसी के सामने हाथ फैलाने नहीं दिया । सच यह वाकई 'मोंघी' मँहगी का गुजराती शब्द बहन है। तब से घर में सब उसे मोंघी कहकर पुकारने लगे । इन्होंने उसका नाम "बांधवी" रखा, क्योंकि उसने आते समय सारे बंधु-बांधवों को एकत्रित कर लिया था । उसके जन्म के बाद हम डॉ. मोतीचंद जी के यहां तीन महीने तक रहे थे । मुझे सीढ़ियां चढ़नी मना थीं ।

बचपन से ही मोंघी खुशमिजाज थी, आज भी है । कोई सब्जी, कोई मिठाई, कोई फ़ल, दूध, दही ऐसी कोई भी चीज नहीं थी, जो उसे नहीं भाती । खास कर उसे चावल बहुत ही पसंद थे । उसकी एक अनोखी आदत थी । प्रथम निवाला ग्रहण करने के पूर्व मुझे रोज ही पूछती, "अम्मा भाई ने खाना खाया?" छोटा भाई परितोष उसे प्राणों से प्यारा था । उसका गुस्सा भी बहुत तेज था। जब कभी भी उसे डांट पड़ती तो कहती, "अगर गुस्सा किया तो सारा खाना ही खा जाऊंगी।"

पापा उस पर सिर रखकर जब सो जाते और कहते, "वाह क्या मजा आ रहा है।" तो वो फौरन बोल पड़ती, "पापा" मैं तो आपकी मोंघी रानी हूं, सिल्क का तकिया नहीं।" उसे जब पापा अक्सर पूछते कि "स्कूल में तुम्हें कौन-सा पीरियड पसंद है?" तो वह फौरन कह उठती "चौथा" उसमें खाना जो मिलता है !

मोंघी बचपन से ही मस्तराम थी । पढ़ने में न कभी फर्स्ट क्लास आयी और न हीं थर्ड क्लास । उसे जब भी कहते, "थोड़ी सी मेहनत और कर ले," तो कहती, "मुझे और नहीं पढ़ना, मैं तेरा साल तो नहीं बिगाड़ती न?"

कभी-कभार मैं बाहर जाती तो परितोष को उसे ही सौंप कर जाती । बस परछाईं की तरह उसके पीछे लगी रहती । आने पर कभी शिकायत भी न करती। मोंघी के बाद परितोष का जन्म हुआ था । वासवी, लावण्या और परितोष का जन्म नॉर्मल डीलिवरी से ही हुआ था । वह भी साढ़े आठ पाउंड का था । जब अस्पताल जाने लगी तो मोंघी को गोद में बिठाकर पूछा, "मोंघी तू मोंघी रहने वाली है या सस्ती?" (चौथी कन्या होती तो) उसने उत्तर दिया, "मैं तो 'मोंघी' ही रहने वाली हूं।" बेटे के जन्म से सबकी खुशी का ठिकाना न रहा। पर इनको तो बेटियों के पैदा होते न कभी दुःख हुआ न बेटे के होने पर कोई उनमें परिवर्तन आया। पर उन्होंने मेरी मां से कहा, " अब सबको संतोष हो गया । बा, हम इसे 'परितोष' कहकर ही पुकारेंगे।"

परितोष जब पांच महीने का हुआ तब हम गांधीभवन के मालिक को चाबी सौंप कर अपने खार, उन्नीसवें रास्ते के घर में रहने

आ गये । इस घर को बनने में करीब-करीब आठ-नौ साल लग गये थे । पैसों की कमी ने इतना समय लगा दिया था । इस दौरान कई लोगों ने यह मकान खरीदना भी चाहा, पर अपने धीरज के परिणामस्वरूप ही हम यहां आ सके ।

परितोष चार बहनों के बीच बड़ा होने लगा । (तब तक गायत्री, मेरे जेठजी की बेटी भी हमारे ही साथ रहने लगी थी ।) शैतान भी बहुत था । ये सारी लड़कियां तो सिलाई, बुनाई, पेंटिंग, पढ़ाई कुछ न कुछ करती रहती थीं । इसे अकेले में कुछ सूझता नहीं था । इसलिए हमने उसे बड़ा होते ही एक सायकिल दिलवा दी और थोड़ा बड़ा होने पर खार जिमखाना में मेंबर बना दिया । वह क्रिकेट बहुत अच्छी खेलता था । उसे स्कूल और कॉलेज की टीम में भी बॉलर के तौर पर लिया जाता था । इसके लिए उसे कॉलेज में स्कॉलरशिप भी मिली थी ।

बनिये के खून की मात्रा शायद उसमें ज्यादह आयी है । बचपन से ही बिजनेस के प्रति उसका झुकाव ज्यादह था, जो इनके स्वभाव के एकदम विपरीत था । एक बार हम सब कानपूर गये थे । मैं, नरेन्द्रजी और परितोष । इनका सम्मान होने वाला था । आदरणीय बच्चनजी और नागरजी भी आये थे । वहां सबको पान खाते देखकर कहने लगा, "अम्मा यहां यदि पान की दुकान खोल दी जाये तो क्या?" मैंने कहा, "बेचेगा कौन?" कहने लगा, "अम्मा तुम अंदर से बैठे-बैठे पान बनाकर मुझे देती जाना और मैं बेचूंगा ।" मैंने उसकी बात इसके पापा, नागरजी सबको दोहरा दी । नागरजी ने झट से कहा, "बेटा हमें तुम्हारा यह सुझाव बहुत पसंद आया । हम भी तुम्हारे साझीदार बन जायेंगे ।" यह चुप हो गया और धीरे से मेरे कान में कहने लगा, "अम्मा ये तो सारी गड़बड़ी की बात हो गयी । आधे से ज्यादह पान तो चाचाजी ही खा जायेंगे ।" सब उसकी बात पर बहुत हंसे थे । ये बाद में पंतजी से मिलने इलाहबाद गये तब तक यह बात जारी रही । छोटे परितोष को समझने में पूज्य पंतजी सफ़ल रहे कि तुम्हारी बात में वाकई कुछ "दम" है और कहने लगे, "तुम मुझे ही अपना साझीदार बना लो, मैं तो पान खाता नहीं ।" एक छोटे से बच्चे को भी सब कितना प्यार देते थे, ये उसकी मिसाल है । बाद में पूज्य पंतजी ने परितोष के नाम १०० रुपये भेजकर लिखा था, "बेटा मुझे अपनी पान की दुकान का साझीदार बनाना न भूलना ।" ये

खत अब भी मेरे पास है । घर में परितोष सबसे छोटा रहा और सभी ने उसे बहुत प्यार दिया । घर की कमियों का उसे भास होता गया और कहने लगा, "बड़ा होकर मैं कवि कभी नहीं बनूंगा और न ही नाटा रहूंगा ।" इतने महान पापा को क्यों दुनिया ने नहीं पहचाना? इस बात का एहसास उसे सदा बना रहा । कई बार पापा से कहता, "पापा आप, इस तरह क्यों अपने-आप को "अंडर एॅस्टीमेट" होने देते है?" पापा उसके खौलते खून पर ठंडा पानी छिड़क कर कहते, "बेटा तुम इस दुनिया को नहीं समझते। समझ जाओगे.... मैं तुम्हारी भावना को समझ सकता हूं । हो सके तो उसे अपने लिए भी याद रखना । मनुष्य- मनुष्य को कुछ नहीं दे पाता फिर क्यों मांगे कोई किसी से? सीधा प्रभु से ही क्यों न मांगे? जो मेरे भाग्य में है, मेरा है, वो तो मिलकर ही रहेगा ।" पापा से कोई क्या तर्क करे? उनकी बातें तो सहीं थीं, पर उससे जीवन के अभाव क्या खत्म हो जाते हैं?

पॉलिटिक्स, हिस्ट्री, देश-विदेश की बातें पापा और परितोष घंटों तक किया करते पर जहां बिजनेस की बात आती, पापा वहां से उठकर खड़े हो जाते । उन्हें कभी रास नहीं आयीं ये सारी बातें । पर ईश्वर की कृपा से चाहे वह पापा से सहमत हो या ना हो, उसने सदा चुप्पी साध ली ।

अपना बच्चा किसे प्रिय नहीं होता? परितोष स्वभाव से सीधा है । जब मैं उन्हें कहती, "आप को इसकी चिंता नहीं होती"? वे कहते "नहीं । उसमें संयम है, न सिगरेट पीता है, न दारू । कोई बे-मतलब के मौज-मजे के शौक नहीं । चिंता फिर किसी बात की करनी? शनैः शनैः.... वह प्रगति करेगा, ऐसा मेरा मानना है । तुम भी विश्वास रखना । कुपात्र न होना ही सबसे बड़ा शुभ लक्षण है ।" परितोष ने अर्थशास्त्र से बी. ए. किया है ।

जब हमने खार के घर में गृह-प्रवेश किया था, तब नरेन्द्रजी "विविध भारती" में काम करते थे । कुछ ही समय बाद उनका दिल्ली तबादला हो गया । मैं बंबई में बच्चों के साथ अकेली रहती थी और वे दिल्ली में । इतने वर्षो बाद बड़ी जगह में चैन से रहने की बारी आयी तो वे वहां नहीं थे। मैं दिल्ली चली जाती। मगर सोचा, अगर नये घर को किराये पर दे दिया तो कभी भी वहां रहने को नहीं मिलेगा । बच्चों की पढ़ाई का भी प्रश्न, इसीलिए मैंने अकेले ही रहना स्वीकार किया । घर में हम

सारी स्त्रियां और एक मर्द परितोष । आस-पास के लोग मुझे "झांसी की रानी" कहकर चिढ़ाते । पूछते कि अकेले डर नहीं लगता? मैं झट जवाब देती, "हम तो सभी एक ही कमरे में गद्दे डालकर सो जाते हैं ।"

बचपन से ही यदि कोई भी बच्चा कभी बीमार हुआ, जैसे बुखार, खांसी या कुछ भी, बच्चे सीधे पापा को ही आवाज लगाते । मगर कभी किसी बच्चे को ज्यादा चोट आ जाये या इंजेक्शन लगना हो तो किसी भी बहाने से वे वहां से खिसक जाते । वे दर्द में कभी भी किसी को नहीं देख सकते थे ।

उपवास करना, फलाहार करना या रातों को देर तक जागना नरेन्द्रजी को बहुत ही रुचिकर लगता था । दूसरे दिन वैसे ही फुर्तीले दिखाई पड़ते थे । लेकिन घर में कई बच्चा उपवास करे, या मैं भूखी रहूं वो इन्हें कतई पसंद नहीं था ।

एक बार वे अपने जेल जीवन की बात बता रहे थे । वे सभी 'ए' क्लास के कैदी थे । वहां कई पढ़े-लिखे विद्वान साथी भी थे । जेल में उनकी मालिश भी होती थी और काफ़ी चैन था । पर पढ़ने को कोई पुस्तक या पेपर्स नहीं दिये जाते । ऐसी ऊबन को दूर करने के लिए उन्होंने ज्योतिषशास्त्र सीखना शुरू किया । वो भी सलाई लेकर जमीन पर । कोई भी चीज लिखकर तो नहीं रख सकते थे । सोचा होगा यदि दिमाग में रह गयी तो कागज-कलम की क्या आवश्यकता? इसीलिए ये ज्योतिष विद्या इनके भीतर ऐसी रच-पच गयी कि उन्हें यदि किसी की कुंडली दिखायें, तो वह उसे कभी भूलते नहीं थे । चाहे कोई बीस वर्ष बाद ही क्यों न पूछे ! उन्हें उसकी कुंडली याद होती थी । इनके चले जाने के बाद भी इनके कमरे से लोगों की इतनी कुंडलियां मिली कि बस ।

कितने प्रश्नों की झड़ी मेरे मन में आती है । मेरे साथ भला ऐसा क्यों हुआ? अपना दुर्भाग्य समझकर भला इस विष को पीकर कैसे मैं यथार्थ को स्वीकार करूं? मन तो रोता रहता है । आश्वासन से भरी सबकी सहानुभूति भी तीर की तरह चुभ-सी जाती है । मौन हो जाने के सिवा मेरे पास और भी क्या उपाय है? सच, इनसे मैं सदा इतना प्रभावित रही कि कभी तर्क-वितर्क की नौबत

ही नहीं आयी । बिना प्रयोजन न कभी कुछ कहते थे, न खाते ही थे । "हारे का हरि नाम" ध्यान में आता है । हरि मुझे क्षमा कर देना, मैं सावित्री न बन पाई । मैं प्रभु तुम्हारे ही सहारे और विश्वास के ही बाकी दिन काट पाऊंगी यदि तुम मुझे वर दो कि 'शिवजी जैसे नरेन्द्रजी' तुम मुझे अगले जन्म में भी लौटा दोगे । मैं बार-बार स्त्री का जन्म लेकर इन्हीं के श्री-चरणों में रहूं । यही तो मेरी अभिलाषा है या काल्पनिक उड़ान है, वास्तविकता तो मेरे शेष रह गये सूने और अकेलेपन की है ।

चिर-निद्रा में सोने से कुछ ही दिनों पहले उन्होंने मुझसे कहा था, "सुशीला बुढ़ापे में पुरुष पत्नी के बिना नहीं रह सकता ।" मैंने उत्तर दिया, "मैं तो ऐसा नहीं समझती । पत्नी भी पति के बिना नहीं रह सकती ।" उन्होंने तब कहा था,"ना ! पत्नी, बेटे, बेटियां घेवते, घेवतियों में, घर के काम में मन लगा सकती है । पर, पुरुष एकदम अकेला पड़ जाता है और मैं तो तुम्हारे बिना एक दिन भी नहीं निकाल सकता । तुम बहुत ही अच्छी हो । तीन सौ लाया तो तुमने घर चलाया तीन हजार लाया तो भी घर चलाया और सबसे बड़ी बात यह है कि परितोष को तुम्हारी आवश्यकता अधिक है ।" मैं उन्हें ताकने लगी और बात को हल्का-फुल्का रूप देते बोली, "मैं कौन-सी आज मरी जा रही हूं? आज आप इस तरह की क्यों बात कर रहे हैं? आपने मुझे नहीं कहा था कि मैं सुहागन ही जाऊंगी?" उन्होंने बातों का रुख बदलते हुए कहा, "तुमसे तो कोई जनरल बात भी नहीं कर सकता ।" मैं खड़ी होकर रूठी-सी आवाज में बोली, "मुझे नहीं सुननी आपकी ऐसी जनरल बातें ।" मुझे तो अपने सौभाग्यवती जाने का इतना विश्वास था कि उनकी दी हुई यह आखिरी हिण्ट भी समझ न पाई । बीमार होते तो भी मैं ऐसा न समझती । मुझे ऐसी तो कभी कल्पना भी न थी । वे तो एकदम स्वस्थ थे। चार बजे नुक्कड़ से खुद जाकर पाने ले आये । फिर महाभारत के संगीतकार श्री राजकमलजी को दोहों की ट्यून सॅट करवाई (जो बाद में सरस्वतीजी के पास रखे मिले) । उनका लिखा आखिरी दोहा था-

"शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत,
अंत यही ले जायेगा, कुरु-क्षेत्र पर्यंत ।"

ज्योतिष जानने वाले नरेन्द्रजी तो सदा मुझसे कहते थे "तुम

तो सुहागन ही जाओगी ।" वे झूठ तो बोलते नहीं थे, फिर क्यों हो गया मुझ पर ऐसा वज्रपात? कई बार मुझसे कहते थे, "सुशीला तुम तो लाल टीका लगा लेती हो तो तुम्हारा शृंगार हो जाता है ।" फिर क्यों छीन लिया मेरा शृंगार मुझसे? आज इन्हें गये तीन महीने हो गये हैं और लिखते संकोच भी होता है, पर जब भी अपना मुंह धोती हूं तो पहले यही सोचती हूं कि कहीं टीका न बिखर जाये । मुंह पर छिटके पानी के साथ आंखों में आंसू भी बहने लगते हैं । अपने भीतर की यह भावना कहूं भी तो किससे कहूं? कहां इन्हें मिलूं? किससे पूछूं? इतना इन्होंने मुझे स्नेह और प्यार दिया है कि समुद्र और आकाश भी छोटे लगने लगते हैं ।

उस दिन दोपहर की बात भी सुन लीजिये । मेरी भाभी, उनकी बहू और उसकी मां हमसे मिलने आये थे । साथ में था उनका बेटा 'प्रियम' । कुछ देर बातें होती रहीं । अचानक ये बोले, "शीलाभाभी क्या मैं कुछ देर आराम करने जा सकता हूं? आप सारी महिला मंडली मेरे बिना ज्यादा प्रसन्न रहेंगी ।" और वे अंदर पूजा के कमरे में चले गये । कुछ देर बाद वे लोग भी चले गये । हमारी काम वाली बाई ने तब मुझसे आकर कहा, "साब कालिख मदे काई लिखतो ।" (साहब अंधेरे कमरे में कुछ लिखते हैं) । पर इनके जाने के करीब पंद्रह दिनों बाद खिड़की के कोने में पेपरवेट के नीचे दबी हुई दो कविताएं मिलीं । मोती के दाने जैसे अक्षरों में लिखने वाले, इनकी कविताएँ ऐसी भास होती थीं, मानो अँधेरे में ही लिखी हों । एक कविता तो मुझे लगती है मुझ पर लिखी है और दूसरी परितोष पर –

"रात भर तुमने जगाया, मिलन में या विरह में प्रिये,
दिवस भर सब जग भुलाया, मिलन में या विरह में प्रिये,
अब न तुम झुझ्ती हो या रुठती हो, शेष रहने दो न माया,
मिलन में या विरह में प्रिये ।
जब न हम तन में रहेंगे, रहेंगे मन में तुम्हारे ।
भूल कर हर भूल, हमको भूलना मत प्राण प्यारे ।
बहुत कुछ ऐसा समय के साथ जाता, न आता है
किंतु कुछ है न कुछ जैसा जो न बिसरेगा बिसारे ।"

यह बात भी आखिरी दिन की है । गये भी ऐसे कि जाते समय भी "प्रभु" के सिवा कुछ नहीं बोले । जब हम इन्हें "होलीफैमली"

अस्पताल में ले जा रहे थे, तब वे गाड़ी में आगे बैठे थे और मैं ठीक उनके पीछे । उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथों में लिया और अपने सीने से लगाया । प्यार से मेरे हाथों को थपकी देते-देते "प्रभु", प्रभु" पुकारते रहे । क्यों लेते किसी का नाम? उन्हें तो ईश्वर के साथ अपनी लौ जो लगानी थी । और भी क्या - लिखूं? लिखने को तो इतना है कि खत्म ही नहीं होता ।

अंत में इतना ही कहना चाहती हूं कि "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे," ये पंक्तियों जीवन में कितनी बार इनके मुख से कवि-सम्मेलनों में और अलग-अलग श्रोताओं के बीच सुनी थीं । इन पंक्तियों ने खूब तालियों की गड़गड़ाहट के बीच प्रशंसा भी पाई है । आज मुझे इन पंक्तियों का ध्यान आता है और मन में प्रश्न उठता है - "कब मिलेंगे?" काश कोई मुझे उसका उत्तर दे देता ! हो सके तो ... "हां" तो कृपया मुझे आकर बता दीजिये । कवि धन्य हो तुम-जब तक धरती पर रहे, कल्पना के पंखों पर उड़ते रहे.... और जब अब बिछुड़ गये .... तो एक क्षण यह भी नहीं सोचा कि जो धरती पर रह गया है, जिसे न कल्पना की समझ है और न उड़ने का अभ्यास , उसका क्या होगा? "कब मिलेंगे? कब मिलेंगे?" के प्रश्नों के उत्तर के भंवर में उलझ गयी हूं मैं "हारे का हरि नाम" बार-बार ले रही हूं, इस बची बोझिल जिंदगी के शेष दिनों में...

:श्री रामः

"पायो परम विश्राम"

● लावण्या डी. शाह

पूज्य पापाजी ने अपने जीवन के लगभग ५० वर्ष काव्य-साधना में व्यतीत किये हैं। १४ वर्ष की आयु से वह खुर्जा जिले में आगे की पढ़ाई करने आ गये थे। उनका जन्मस्थान था जहांगीरपुर। इंटर पास किया खुर्जा-बुलन्दशहर से। पितृहीन बालक, मां की, गांव की परिचित व ममतामयी गोद छोड़कर अपना आपा ढूंढ़ने, खुद-ब-खुद निकल पड़ा था। जब वे लगभग १९ वर्ष के रहे होंगे, उनकी एक कविता "सरस्वती" पत्रिका में पहली बार छपी। भावुक हृदय को, मां 'सरस्वती' ने वाणी प्रदान की। इसी तरह लोक-समाज के माध्यम से उनके कवि-जीवन का श्री गणेश हुआ। कवि के जीवन को कई मील के पत्थरों से नापा जाता है। यही था उनकी काव्य-साधना का प्रथम सोपान।

पू. पापाजी की माताजी का नाम था गंगादेवी। गंगाजी के ही सदृश सरल व पुण्यशालिनी थीं वे। पिता का देहांत बचपन में हुआ। स्मृति में बसी पिता की धुंधली- सी छवि को कवि-मानस ने "मुट्ठीबंद-रहस्य" शीर्षक की कवितांजलि से सुशोभित किया जिसमें मुट्ठी बंद शिशु की अपने शैशवकाल में बिछुड़े पिता को छूने की ललक साफ है।

"मुट्ठी बंद रहस्य"

५९४, उन्नीसवां रास्ता

नरेंद्र शर्मा .

"दिवंगत पूज्य पिताजी की स्मृति में सादर उन्हें समर्पित"-

"बीते दिन याद करता हूं तो याद के परले छोर पर खड़े एक बालक की ओर ध्यान जाता है। बालक की उम्र चार साल के लगभग होगी। वह काठ की एक कुरसी के पास खड़ा है। उसके पास तांबे का एक पैसा है। कभी कुरसी की बैठक में जड़े दो तख्तों के बीच खुली हुई दरार के सहारे पैसे को नीचे गिराता है, उठाता है और फिर गिराता है। रोगशैय्या पर पड़े हुए उसके पिता बालक को बरजते हैं। बीमारी के कारण पिता की आवाज में कड़क नहीं, खीझ है। बालक के निरर्थक खेल को देखने का

धैर्य उनके मन में नहीं रह गया है ।

बालक अपने पिता की ओर देखता है । ऊंची कुर्सी वाले मर्दाने बैठकखाने के बंद दालान में पच्छिम को सिरहाना किये वह चारपाई पर लेटे हैं । उनके पैताने के पास वाला दरवाजा बंद है । दालान में वैसे ही दो और दरवाजे हैं, जिनमें केवल एक बीच का दरवाजा खुला है । बालक की अबोध दृष्टि पिता के चेहरे पर जाती है । पिता की आंखें और मूछ देखकर, वह अपनी दृष्टि नीची कर लेता है । पिता की रोग-निद्रा में बाधा न पड़े, इसलिए बालक को कोई प्यार से गोदी में उठा लेता है और अन्यत्र ले जाता है ।

पिता कब महानिद्रा में लीन हुए, इसका न ज्ञान है, न स्मरण ही । पितृव्यों के द्वारा बालक का लालन-पालन इतने लाड़-प्यार से होता है कि उसे पिता के अभाव का भान ही नहीं हो पाता । उसने स्वयं को पितृहीन बालक कभी समझा नहीं । पितृव्यों तथा संयुक्त परिवार के अन्य अनेक सदस्यों के लाड़-प्यार में पले बालक का, अपने इतिहास का यह तथ्य कि वह पितृहीन है, प्रभावित नहीं करता । लेकिन व्यक्ति के इतिहास का तथ्य भी एक ऐतिहासिक तथ्य ही माना जायेगा । इसलिए याद के इस छोर पर खड़ा हुआ मैं अपने दिवंगत पिता की याद में उन्हें श्रद्धासहित अपना यह कविता-संग्रह समर्पित करता हूं ।

बीते दिन याद करता हूं तो शारीरिक और मानसिक रूप में मेरा पालन-पोषण करने वाले अपने अनेक गुरुजनों का भी ध्यान आता है । मैं उन्हें पितृतुल्य मानकर श्रद्धासहित सिर झुकाता हूँ । उन्होंने मुझे इस योग्य बनाया कि मैं पिता का पुण्य स्मरण और उनके चरणों में अपना कविता-संग्रह समर्पित करूं ।

पिता की अभिव्यक्त कृपा ही गुरुजनों की कृपा के रूप में अभिव्यक्त होती है और गुरुजनो की कृपा के प्रति कृतज्ञता से ही पिता की कृपा का पुण्यस्मरण होता है ।

मन पूर्णतः निःशंक नहीं है कि भाव, विचार और शब्द के खिलवाड़ को मेरे पिता निरर्थक नहीं समझेंगे । लेकिन मुझे विश्वास है कि रोगजन्य निद्रा और दुर्बलता से उत्तीर्ण हो कर, दिवंगत पिता

अपने पुत्र के खिलवाड़ के प्रति निरंतर सहनशील और धैर्यशील रहे हैं । ऐसी आशा बंधती है कि वह श्रद्धा सहित मेरे इस समर्पण को भी सहर्ष सह लेंगे ।''

पूज्य पापाजी के हाथ से लिखे अनगिनत पन्नों में दबा हुआ यह ''रत्न'' मुझे जब अनायास मिला तब मैंने उचित समझा कि इसे भी ''मुट्ठीबंद रहस्य'' के संदर्भ में स्थान मिले । यह प्रस्तावना उन्होंने उस वक्त छपवाई नहीं थी । शायद अपने अत्यंत अंतरंग विचारों को वे प्रत्यक्ष करना न चाहते हों । पर आज न पापा हैं और ना ही दादाजी– शायद दोनों बिछुड़े स्वर्ग में गले मिल रहे हों । आज इस अवसर पर हम परिवार के सभी सदस्य पापाजी की स्मृति में एक स्मृति–ग्रंथ प्रकाशित करने जा रहे हैं । हमारी आगे चली गई पीढ़ियां, हमारी स्मृतियों में सदा सर्वदा के लिए जीवित रहती हैं । मैं उन सभी महानआत्माओं को प्रणाम करती हूँ । फिर प्रणाम करती हूं उस पिता को, जिसने ''ईश्वर तत्व क्या है'' उसकी प्रतीति करवा दी, अपने स्वयम् के आचरण से तथा मेरे जीवन के कई अंधेरे- उजाले मोड़ों पर रखे दीपों से, जो आज भी ज्ञानदीप की भांति मेरा पथप्रदर्शन करने आ रहे हैं ।

एक बार एक सज्जन ने मुझसे प्रश्न किया था कि ''व्यक्ति कवि किस प्रकार बन जाता है ? और वह किस तरह आम मनुष्यों से भिन्न है ?'' वाकई प्रश्न था जटिल । मैं भी असमंजस में थी । सोचने लगी, काव्य चेतना की वेगधारा न जाने क्यों कुछ गिने-चुने पात्रों को ही प्लावित कर फूट पड़ती है । जब उत्तर सूझा तो सिर्फ यही– कंवि हृदय भी बिलकुल पंछी के समान है । कल्पना-शक्ति के डैनों का अवलम्बन पाकर, वह ऊपर उड़ जाता है । सृष्टि का सौंदर्यबोध लेता है और वह जब चाहे तब ठोस धरातल पर लौट आता है, जबकि आम मनुष्य जड़ जगत से अपने को अलविदा नहीं कर पाता ।

मैंने पू. पापा के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर एक कविता लिखी है । आशा है सुज्ञ पाठक मेरी कमियों पर ध्यान न देकर सिर्फ मेरी भावना को मुखरित हुआ जानेंगे ।

"स्वर्ण-पंछी"

हे स्वर्ण-नगर के रहने वाले पंछी,
किस लोक का अवलोकन है अब शेष ?
जहाँ नाचतीं स्वर्णिम परियाँ
छनका स्वर्ण नूपुर अविरल
छोड़ आ गये, किया बसेरा
कुछ क्षण, तुमने इस धरती पर।
गीतों में भी कथा व्यथा की
शौर्य और उन्माद भी,
"प्यासे झरने" और "द्रौपदी"
"पलाश-वन" की छांव थी।
गीत सुनाकर मधु भरे फिर
गाई कथा 'महाभारत' की,
कृष्ण-रुक्मिणी, पार्थ सभी को
जान गये हम पास से !
बना "प्रवासी" कर्मयोगी तब
मुक्त हो विचरा जगत में !
भुला दिया था स्वर्ण-लोक
और सुख-सुषमा का राज भी।
कर्तव्य-परायण पिता बने तुम
राम सुशीला- सीता के
और पास थी "पंचवटी" भी
न कहीं आने या जाने की चाह थी।
थके बहुत थे फिर भी नित-नूतन,
सुर थे, स्वर थे, छंदों के प्रांगण थे।
दीप-मालिका कितनी प्रगटाईं
तुमने अंधियारे उपवन में।

फिर सहसा स्नेह छुड़ाया-
सारे बंधन काट उड़ चला
अपने प्यारे स्वर्ण-लोक का
मेरा सुंदर स्वर्णिम पंछी।

छूटा साथ धरा का सारा,

मौन खड़े हैं मन, घर, आंगन।
कौन सुनाए तान सुरीली,
तेरे स्वर-सी ही मधु-गुंजित।
देना एक स्वर्ण-किरण अब
करने आलोकित मन-मानस को
तमस गहन नभ तक छाया है
ज्योति का आह्वान शेष है...

पापा जैसे विद्वान के बारे में कुछ कहना मेरे अपने अज्ञान का प्रदर्शन ही होगा। मैंने उन्हें सिर्फ पिता के रूप में देखा है। सो मैं वही आप लोगों के सामने प्रस्तुत करने की चेष्टा करूंगी। पापा ने आजीवन हमें ढेर-सा मनोबल, ढेर-सारा प्यार दिया है। पापा के व्यक्तित्व में हमने सच्चे मानवीय मूल्यों की परिभाषा को सजीव होते देखा है। हमारी अम्मा की गुजराती विरासत मन से बोल रही है...

"वैष्णवजन तो तेने कहिए
जे पीड़ पराई जाणे रे!
पर दुःखे उपकार करे तो ये
मन अभिमान न आणे रे।"

पापा सही अर्थों में "वैष्णव-जन" थे। सच! पापा जैसी उच्चात्माएं न जाने किन कारणों से मृत्युलोक में आ पहुंचती हैं कौन जाने! हमेशा असीम स्नेह, अपनापन न सिर्फ घर के सदस्यों पर लुटाया बल्कि जो भी व्यक्ति उनके संपर्क में आया, उनकी सभ्यता, सौहार्द से विगलित होकर उन्हीं का हो जाता। पिछले कई वर्षों से हम परिवार के सभी लोग यह बात स्पष्ट रूप से समझ गये थे कि पापा के इर्द-गिर्द एक प्रभामंडल का कवच था और उसे कोई भेद नहीं सकता था। वे इस जगत के होकर भी निर्लिप्त थे। स्नेह देते थे पर अपनी खुद की आवश्यकताओं के प्रति निस्पृह थे। जीवन की जरूरतों को उन्होंने बिलकुल कम कर दिया था। तपस्वी की साधना घनीभूत हो रही थी। उनकी जीवन जीने की कठिन परीक्षा में मेरी अम्मा का भी अपूर्व योगदान रहा है। दोनों भक्ति और श्रद्धा से मूर्तिमंत हुए से जान पड़ते हैं। विषम या सहज परिस्थितियों के बीच हमेशा ऐसा जान पड़ता मानों अपना

अस्तित्व ईश्वर के चरणों में भेंट चढ़ा रहे हैं। जीवन के अनेक पहलुओं के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। सत्य को स्वीकार किया फिर कभी उसे तजा नहीं। उनकी इसी कर्मठता की गवाही देता है हमारा १९ वें रास्ते स्थित वह छोटा - सा घर। बिलकुल प्राचीन मंदिर जैसा–जहां-तहां से दीवारों का रंग उड़ चुका है– कई जगहों से चूना झड़ गया है। हर तरफ एक सादगी, एक पवित्रता का आभास है। दीवारों पर महत्व का स्थान ग्रहण किये पुस्तकें लगी हुई हैं। यही तो है, पापा का संचित धन ! विरासत है उनकी अनेक प्रकाशित व अप्रकाशित पुस्तकें। समूचे जीवन में पापा ने कई अलग–अलग क्षेत्रों में योगदान दिया है। सोचें तब लगता है, क्या ये एक ही व्यक्ति की उपलब्धि हो सकती है ?

व्यक्ति और समाज, देश और नागरिक सभी आयामों में वे साधारण मनुष्यत्व को छोड़ कर बहुत ऊपर उठ गये थे। वे एक कवि ही नहीं थे, साहित्यिक प्रतिभा ही नहीं थे, सिर्फ एक अच्छे इंसान ही नहीं थे, वे थे एक मार्गदर्शक, एक दार्शनिक, एक तत्वचिंतक, एक विद्वान, एक वैद्य, एक संत, एक जागरूक नागरिक, सांसारी साधु, एक कर्मयोगी, एक संवेदनशील सज्जन, विचारशील तरुण युवक, एक हंसमुख, मिलनसार सरल स्वजन, एक तपस्वी, एक भविष्यवेत्ता, एक सच्चे भारतीय, एक अच्छे पति, पिता और सबसे ऊपर एक महान आत्मा।

पू. पापाजी के शैशव के बारे में बस कुछ ही बातें ज्ञात हैं। वे भारद्वाज उत्पन्न, गौड़ ब्राह्मण थे। पिता का नाम था श्री पूर्णलाल शर्मा। परिवार वाले पटवारी थे। पिता गुस्सैल थे। जब पापा चार के करीब थे तभी उनके पिताजी का देहांत हो गया। बड़े ताऊजी तथा माता गंगादेवी पर बालक नरेन्द्र के पालन- पोषण का भार आ पड़ा। पापाजी अक्सर कहा करते थे, "मैं ननिहाल कभी गया ही नहीं और मेरे ताऊजी मुझे जनाने में ज्यादह देर ठहरने भी नहीं देते थे।" कैसे रहे होंगे अबोध शिशु के दिन ! आज जब मैं दो बच्चों की मां हूं, मेरी पुत्री सिंदूर १२ वर्ष और पुत्र सोपान ७ वर्ष के क्रमश: हो गये हैं उन्हें छोड़कर आज तक मैं कहीं गई नहीं। मैं उन्हें मां की गोद से अलग करने का सोच भी नहीं सकती।

खुर्जा जिले से उन्होंने इंटर पास किया। ट्यूशन भी करते, पढ़ाई भी करते रहे। कविताएं लिखना शुरू किया। १९ वर्ष की आयु में पहला कविता–संग्रह छपा और बाद में प्रतिष्ठित इलाहाबाद युनिवसर्सिटी से अंग्रेजी साहित्य विषय लेकर उन्होंने एम.ए. की डिग्री हासिल की। उसके पश्चात् काशी विश्वविद्यालय में अध्यापन का भार संभाला। वहीं से वे राजनैतिक नजरबंदी ठहराये गये। देवली डीटेंशन कैम्प, राजस्थान, कई ब्रिटिश जेलों में उन्होंने दो वर्ष बिताये। यहां पर "लाल–निशान" जैसी कविता के संग्रह ने जन्म लिया–

"आओ हथकड़ियां तड़का दूं
जागो रे नतशिर बंदी"

एक बार उसी दौरान १५ दिन का अनशन उन्होंने किया। अंग्रेजों ने जबरदस्ती की और नलियों के द्वारा भोजन पेट में उतार कर उन्हें जीवित रखा। आज के भारतवर्ष में कितना कुछ खा लेने पर भी भारतीयों के पेट ही नहीं भरते, कोई डकारता भी नहीं, पर उस वक्त के भारत में क्या माहौल रहा होगा ! लोग भूखों मरने पर आमादा थे और मन भारत मां के प्रेम से भरे रहते थे। भारत उस वक्त पराधीन होते हुए भी अपने बच्चों के प्रेम से प्रसन्न था। आज हम स्वतंत्र हैं, पर न भारत माता खुश हैं और न ही भारत जन !

इलाहाबाद में त्रिवेणी संगम की तरह कवि नरेन्द्र की चेतना भी अनेक विलक्षण व्यक्तियों के संपर्क में आकर प्रवहमान हुई। सुश्री महादेवी जी, श्रीयुत् सुमित्रानंदन पंत, महाकवि निराला, रसपूर्ण कवि श्री बच्चन, भगवती बाबू और भी कइयों से मित्रता, प्रेरणा पाकर काव्य चेतना बह चली। काव्यसृष्टि के अभूतपूर्व जगमगाते दीपों ने, उनकी विलक्षणताओं ने कवि हृदय पर अमिट छाप छोड़ी। कविसम्मेलनों में "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ?" काव्य पाठ ने धूम मचा रखी थी। 'प्रवासी के गीत' हर पीढ़ी के युवा हृदयों का प्रत्यक्ष नाद है। और उसी का यह गीत अपनी मार्मिकता के कारण आज भी अमर है।

श्री भगवती बाबू बंबई फिल्म–व्यवसाय में तभी "चित्रलेखा"

को साकार करने में जुटे हुए थे। श्री अमृतलाल नागर भी बंबई आये थे। श्रीमती देविका रानी को बॉम्बे टाकिज में गीत-लेखन के लिए एक नये गीतकार की आवश्यकता आन पड़ी और श्री भगवतीबाबू के आग्रह से नरेन्द्र शर्मा कुछ नया अनुभव करने की इच्छा से बंबई की ओर चल पड़े। उत्तर प्रदेश में जन्मा प्रवासी अब अरब सागर से सेवित खारे पानीवाले क्षेत्र में आ गया। नियति इसी तरह निर्धारित समय पर हमें एक आवास से दूसरे तक ले जाती है। वहीं पर वे मेरी अम्मा "सुशीला" से मिले। अम्मा को मिलने के पूर्व ही अपनी एक कविता भावी पत्नी "सुशीला" नाम का उल्लेख उन्होंने किया है। क्या यह महज संयोग था कि या फिर किसी दैवी प्रेरणा की पहली प्रस्फुटित किरण !

बंबई में वे मेरे नानाजी श्री गुलाबदास गोदीवाला तथा नानीजी कपिला से मिले। कई वर्षों पश्चात् ननिहाल का नामकरण पापा ने किया था, "कपिलवस्तु"। परिचय अत्यन्त रोचक रहा। मेरे नानाजी युवा कवि के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। उन्हें अपने घर बुलाया। हमारे नानाजी के तीन बेटे, तीन बेटियां थीं। उनमें मेरी अम्मा सुशीला ५ वे नंबर पर थी। प्रति सप्ताह पापा उनके घर जाया करते। कभी-कभी कविता पाठ भी करते। आर्य-समाज के जानेमाने सुधारक पंडित परिवार के मेरे बड़े मौसा भी वहां प्रायः हुआ करते। सभी की सहमति से गुजराती कन्या तथा यू. पी. के ब्राह्मण युवक का विवाह निश्चित हुआ। परिचय परिणय में परिवर्तित हुआ। जब अम्मा घर आयी तब पू. पंतजी दादाजी, पापा के परिवार के अगुवा बने और बहू को उन्होंने ही गृह-प्रवेश करवाया। श्रीमती सुब्बुलक्ष्मी जी (भारत कोकिला) ने मंगल-गीत गाये और गृहस्थी बस गयी। उनका घर था माटुंगा में गांधी भवन, तैकलवाड़ी शिवाजी पार्क में। कुछ वर्ष वे वहीं रहे। पंतजी ने बड़े भाई व पिता के समान प्यार दिया। वात्सल्य और प्रेम अम्मा और पापा दोनों को मिला। हम चारों बच्चों का जन्म उसी मांटुगा वाले घर हुआ। १९४८ में प्रियवासवी का जन्म हुआ। उसी के आसपास छपी थी "रक्त चंदन"। मैं लावण्या जन्मी १९५० में उसी वर्ष "अग्नि शस्य" छपी थी। चि. मोंघी (यह उसका प्यार का नाम उसका पू. पापा से मिला नाम तो बांधवी है) १९५३ में जन्मी। तभी "कदली वन" छपी थी और अंत में चि. परितोष, मेरे भाई के आगमन से पूरा परिवार संतोष से भर गया। याद

आती हैं बचपन में सुनी पंक्तियाँ–

"छोटा-सा, नन्हा-सा बचपन
एक था बचपन, एक था बचपन ।
बचपन के एक बाबूजी थे,
सीधे, सच्चे बाबूजी थे ।"
और मेरी आंखें अनायास सजल हो उठती हैं ।

जब मैं करीब ५ वर्ष की थी तब हम लोग "खार" नामक उपनगर में अपने निजी आवास में स्थायी हुए । मेरा शैशव वहीं बीता । तीनों बहनों के ब्याह उसी घर से हुए । वही घर हमारे अस्तित्व का केंद्र था । हमारी अनगिनत सहेलियां, मित्र, पास–पड़ोस, मुहल्लेवाले, रिश्तेदार, पापा के असंख्य चाहनेवाले व मित्रगण सभी से भरापूरा हमारा–छोटा–सा घर दिन–रात सस्वर गूंजरा रहता था । पापा बीच में ५ या ६ वर्ष दिल्ली रहे थे । आकाशवाणी का "विविध भारती" कार्यक्रम उन्होंने एक शिशु की भांति, संभालकर अपने पैरों पर खड़ा किया । वहां से अक्सर लंबी–लंबी चिट्ठिया हम सभी को लिखते । हम लोग छुट्टियों में दिल्ली जाते । कभी पापा बंबई आ जाते । नौकरी पेशा इंसान वहीं रहता है, जहां उसे काम करना पड़ता है। दूर रहते हुए भी हमें इतना पता था कि पापा तो हमारे पास हैं और हम पापा के पास हैं ।

अम्मा हमारे साथ ज्यादह बंबई ही रहीं । हम तीनों बहने गुजराती माध्यम से पढ़ीं । भाई हिंदी माध्यम की पाठशाला में पढ़ता था । पापाजी की दूरदर्शिता का ख्याल आज हमें आता है जब हमारे कई मित्र अपनी भारतीय संस्कृति से अनजान हैं–बंबई में पलकर बड़ा होने पर "रामायण" तथा "महाभारत" की कथा-वस्तु से भी वे लोग अनभिज्ञ हैं । कान्वेट स्कूलों में पढ़े–लिखे बच्चों की मनोदशा ठीक वैसी हो जाती है, जो बजाय अपनी मां के किसी आया के हाथ बड़ा होता है । आज हम अपने- आप को आरामदेह और संतोषकारक मनोभूमि में पाते हैं ।

मैं जब छोटी थी, तब एक सज्जन ने मुझसे मजाक में पूछा था, "बेटा, तुम कौन जाति की हो ?" मैं करीब १०-११ वर्ष की थी । मैं परेशान–सी घर आ गयी । गेंद खेलने में मन लगा

नहीं । मां से गुजराती में पूछा, "अम्मा , हम कौन जाति के हैं?" उलटा प्रश्न हुआ, "क्यों, कौन पूछता है?" मैंने जवाब दिया "फलां भाई ।" अम्मा गुस्सा हो गयी । कहा, "कह दो बहुत ऊंची जाति के हैं ।" तभी पापा जी, जो इस वार्तालाप को पानसुपारी काटते हुए सुन रहे थे बोल उठे, "कैसे लोग होते हैं? जो बच्चों से इस तरह के सवाल करते हैं?". फिर मुझसे कहा, "बेटा हम भारतीय हैं। हां, वही शब्द काफ़ी है ।" कितना सुंदर समाधान मिला था मेरे बाल-मानस को । आज भारतीयता मेरी आत्मा में, मेरे प्राणों के साथ घुलमिल गयी है ।(और इस रहस्य की) प्रथम प्रतीति मुझे परदेश में हुई।

मुझे अपने आम के पेड़ याद आये, मिट्टी से सने अधनंगे बच्चे याद आये, हिमालय के उत्तुंग शिखर याद आये और श्रीराम के कहे स्वर्णाक्षर मन में कौंध उठे ।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"

हम स्वदेश लौट आये । इस भावना का अंकुर पड़ा था पू. पापा के हाथों । एक माली ने अपने उद्यान को प्रेम-रस से सींच कर बड़ा किया था । कितनी भाग्यवान थी मैं जो ऐसे परिवार की छत्रछाया में निर्भीक होकर बड़ी हुई । आज याद करती हूं तो कृतकृत्य हो जाती हूं ।

हमारे घर में इतनी पुस्तकें थीं कि उन्हीं के साथ रहने का अभ्यास हो गया था। पापाजी ने अपना नजरिया कभी हम पर थोपा नहीं, कभी हमारे विचारों को मोड़ा नहीं। कभी शायद जीवन के हर मोड़ पर वे राह देखते थे, "देखूं इनकी उत्सुकता भारत जैसे महान देश के लिए जागती है या नहीं? हमारी नादानियों को वे नज़रअंदाज कर देते । ग़लतियों को मुस्कराकर सुधार देते । कभी उलाहना नहीं, न ही व्यंग्य । कभी-कभी आश्चर्य में पड़कर सोचती हूं कि क्या जब हम बच्चे गर्मी के छुट्टियों में सारी-सारी दोपहर बरामदे में धमा-चौकड़ी मचाते थे, उसी वक्त बिलकुल बगलवाले कमरे में पापाजी की कलम से स्वप्न-ज्योति 'द्रौपदी' का आविर्भाव हो रहा होता था? जीवन के प्रत्यक्ष और परोक्ष के वह सेतु थे। सृष्टि और समष्टि के बीच का समाधान उन्हें मिल गया था; सृजन तथा जीवन को वे साथ-साथ जी पाते थे ।

पू. पापा के कवि जीवन का, उनकी काव्य–समृद्धि का विश्लेषण करना मेरे बूते के बाहर की बात है । उनकी बाद की रचनाओं को पूरी तरह समझने का दावा भी मैं नहीं कर सकती । पर एक पिता को मैं अच्छी तरह जान गयी थी । वे भावुक हृदय तो थे ही, बहुत ही ज्यादा संकोची भी थे । वे सिर्फ़ हमारे न होकर पूरे समाज के हो गये थे । अहम् को उन्होंने चूर्ण कर दिया था । हर कड़वे घूंट को पीकर भी मुस्कराते रहने का उन्हें अभ्यास हो गया था । आज के बड़े–बड़े नेताओं से मान–सम्मान मिलने, या न मिलने से उन्हें दु:ख नहीं होता था । हां हमें जरूर होता था कि उनकी सेवाओं की क़द्र किसी ने नहीं की । भारत माता के एक सच्चे सपूत को किसी ने कभी याद न किया । कोई मान-पत्र उन्हें नहीं दिया । कई–कई बार लोगों की भीड़ के बीच मन करता पापा के पास कुछ देर बैठ आयें । कभी बैठते तो लगता वे हमसे मीलों दूर हैं, कभी लगता ध्यान लगा है कहीं और वे साधना में लीन हैं, तो कभी ऐसा भी लगता कि शायद थक गये हैं ।

गत कई वर्षों से अक्सर कहा करते थे कि "अब पहाड़ों पर जाने को जी करता है । मैं बंबई में रहते–रहते ऊब गया हूं ।"हम सभी सुझाव रख़ते, 'चलिए पापा, कश्मीर चलते हैं या फिर शिमला वगैरह–" पर वे अक्सर याद किया करते 'अलमोड़ा' 'कौसानी' को । 'कुमाऊंकी घाटियां' उन्हें अत्यंत प्रिय थीं । आज सोचती हूं कि जब उनकी आत्मा अनंत पथ पर अग्रसर हुई होगी तब क्या कुछ देर "अलमोड़ा" या "कौसानी" रुकी होगी? हमारा १९ वें रास्ते का घर मानों पापाजी की बाट जोह रहा है–
"चौमुख दिवला बार धरूँगी, चौबारे पे आज ...
जाने कौन दिशा में आयें मेरे राजकुमार ।"

आज पापाजी इस संसार में नहीं रहे । नहीं रहे पापा, नहीं रहे । अब क्या कभी न मिल पायेंगे? आज का बिछुड़ा प्रवासी फिर कब गीत गाएगा ? क्या ही अच्छा होता कि, "ज्योति कलश छलके" और "सत्यम् शिवम् सुंदरम" का अमर कवि हमें आगे 'गीता' समझा पाता ! 'महाभारत' सीरियल जो अधूरी छोड़ गये हैं, उसका मुझे बड़ा दु:ख है ।

एक ओर पापा से बिछुड़ने के ग़म से मानों हृदय टूट कर कहीं गिर गया हो और दूसरी ओर जब देखती हूं कि कितने आदर से, क़ितने प्यार से कितने ही अश्रुओं ने उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दी है, तो मैं गद्‌गद् हो उठती हूं । मेरी अम्मा अधूरी जान पड़ती हैं । वे सही अर्थों में पापाजी की अर्धागिंनी हैं । शिव–पार्वती की प्रतिमा खंडित दिखाई देती है । हम अब मूक दर्शक से अक्सर पापा के घर, अपने घर एकत्रित होते हैं। पर सभी जानते हैं कि नाटक का सूत्रधार नहीं रहा । परदा खुला रह गया है, पात्र अपनी- अपनी पंक्तियां भूल गये हैं और प्रेक्षक घर को चल दिये हैं । जीवन बहता जा रहा है ।

श्रद्धांजलि, यादें, संस्मरण होते रहेंगे । पर जो स्थान रिक्त हो गया है वह कभी नहीं भरेगा । जिंदगी के पन्ने का एक अहम हिस्सा हवा के बहाव में उड़ गया है ।

पर हमारे साथ पापा का आशीर्वाद है । वे किसी न किसी रूप में हमारे साथ हैं। हमें उन्हें पहचानना होगा । उनसे प्रेरणा लेकर जीवन कैसे जीयें, यह सीखना होगा । मुझे विश्वास है वे हमें जरूर बतायेंगे कि हम किस तरह उन्हींके दिये इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ में ही न गंवा दें।

आदरणीय कुसुमताई ने श्री विनोबा भावे के पवनार आश्रम से यह सांत्वनापूर्ण आशीर्वचन पापाजी के निधन पर हमें लिख भेजा था । वही यहां दोहराती हूं–

"प्रियजन के वियोग की व्याकुलता मानवता की देन है । इस पवित्र देन का संग्रह हृदय–संपुट में अगर गोपनपूर्वक किया जाये, तो उससे अमृत–तत्त्व की झांकी हो जाती है । शुभं भवति ।"

पप्पाजी न रहे

● वांधवी दिलीप काथरानी

पप्पाजी नहीं रहे। समय की धारा में जीवन नौका की तरह आगे बहता ही जा रहा है। पप्पाजी के बिना भी हमने जीना सीख लिया है, पर उनके सानिध्य का अभाव हमेशा खटकता रहता है। उनकी बातों को खिड़की में से सूर्यप्रकाश जैसा उज्ज्वल प्रेम कहीं न कहीं कभी न कभी उदित होगा। वो हम ढूंढ़ते रहते हैं, सोचते हैं पर वो संभव नहीं है। सुना है, वक्त गुजर जाने पर हर कोई रंग फीका पड़ जाता है। उनकी स्मृति के इंद्रधनुष का रंग तो गहरा ही होता जाता है। पप्पाजी बड़े ज्ञानी, गुणी और महान थे। उनमें एक बहुत बड़ी खासियत थी कि वे जिससे बात करते, वे उसी के स्तर में आकर बात करते थे । सामने वाले की बात में चाहे कोई भी उल्लेखनीय बात क्यों न हो, वे अपना दु:ख किसी से नहीं कहते थे।

हम बच्चों ने, मित्रों ने, पड़ोसियों ने और संबंधियों ने उनसे जो प्यार, आत्मीयता और अपनापन पाया, वो शायद ही कोई किसी को आज तक दे पाया हो। अम्मा भी अब नहीं रहीं। मेरी अम्मा ने पप्पाजी की प्रसिद्धि और महानता के पीछे बड़ा योगदान दिया था। भगवान उसकी आत्मा को शांति दे,यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है। मैं जब भी कभी श्री नरसी मेहता लिखित भजन, जो पू. बापू को बहुत पसंद था, 'वैष्णवजन तो तेने रे कहिए, जो पीड़ पराई जाने रे' सुनती हूं तो हमेशा पप्पा का ही चेहरा मेरी आंखों के सामने उभर आता है। वे वैसे ही थे।

मैं प्रभु से यह प्रार्थना करती हूं कि पप्पा के आचार-विचार हमारे जीवन में सदा बने

रहें। पप्पा सदा हमारी यादों में, बातों में और कार्यों में जीवित रहेंगे।

●

यथा नाम

●परितोष शर्मा

९ फरवरी १९८९, वसंत पंचमी का दिवस, कवि के जीवन-काल की अंतिम रचना। न जाने क्यों मेरे पूज्य पिताजी ने निम्नलिखित दोहे को सरस्वती प्रतिमा के सम्मुख रख, देवी को समर्पित किया।

"शंखनाद ने कर दिया समारोह का अंत।
अंत यही ले जायेगा कुरुक्षेत्र पर्यन्त।"

यह दोहा भविष्य के घटना-चक्र का द्योतक है। इसका अर्थ दूरदर्शन प्रस्तुति 'महाभारत' के परिप्रेक्ष्य तक ही सीमित न रह कर, सांकेतिक है, व्यापक है।

अभिव्यक्ति ही व्यक्तित्व और व्यक्ति के अव्यक्त को व्यक्त करती है। स्वजन और जन-जन के प्रिय मेरे पूज्य पिताजी का प्रियतम था स्वदेश भारत !

इतिहास अपनी पुनरावृत्ति के लिए प्रसिद्ध है। कुरुक्षेत्र से भीषण संग्राम की पुनरावृत्ति की संभावना और दोहे के रचनाकार के भावी स्वरूप का संकेत देता है उपरोक्त दोहा !

●

कुछ अविस्मरणीय संस्मृतियां

● गायत्री राकेश

जीवन की कुछ बातें – घटनाएं बीत तो जाती हैं, किंतु उन्हें भुलाया नहीं जा सकता; जन्म–जन्म तक याद रखने को जी चाहता है। कुछ तो ऐसी हैं उनमें, जो बंबई के समुद्री ज्वारों में धुल–धुल कर निखर गयी हैं, और शेष ग्राम्य जीवन की गर्द में दबी–दबी भी गंधमयी बनी हुई हैं।

सच मानिए, मेरी अमर स्मृतियों का केंद्रबिंदु केवल मेरे दिवंगत पूज्य चाचाजी कविवर पं. नरेंद्र शर्मा जी हैं। अपने माता–पिता से अल्पआयु में ही वियुक्त होने के लगभग चार दशकों के उपरान्त यह परम कटु सत्य स्वीकार करना पड़ता है कि मैं अब अनाथ – पितृहीना हो गयी हूं। एक बरगद की शीतल सघन–स्नेहल छाया अचानक चुक गयी है!

१९४२ में मैंने पहली बार पूज्य चाचा जी को देखा- जाना था। तब मैं केवल छह वर्ष की थी। तभी एक समर्पित राष्ट्रभक्त कांग्रेसी के नाते वे दो वर्ष का कठोर कारावास भोग कर गांव जहांगीरपुर (खुरजा–बुलन्द शहर) लौटे थे। जनता उनके स्वागत में उमड़ पड़ी थी। बड़े–बड़े स्वागत–द्वार सजे थे, तोरण झूमे थे और जयकार के स्वर जुलूस के बाजों के साथ गूंज रहे थे। तब सरकार ने उन्हें बुलन्दशहर में छह मास तक नज़रबंद रखा। उनकी शारीरिक गतिविधि तो नियंत्रित हो गयी, किंतु आत्मिक–मानसिक उछालों को शासन छू नहीं पाया। वे दुर्दिन पूज्य चाचा जी के साथ मैंने और पूज्य अम्माजी (दादी जी) ने खुरजा की नयी बस्ती के एक मकान में बिताए। वे बोझिल दिन यों ही बीत गये।

१९५० हमारे परिवार के लिए बड़ा अशुभ रहा। सच मानिए, घर के चिराग़ों ने ही घर को आग लगा दी। हम भाई–बहन पूज्य अम्माजी के साथ गांव में कृष्णलीला देखने गये थे कि मौका देखकर हमारे कुछ ईर्ष्यालु भाई–बंधुओं ने हमारे घर चोरी करा दी। एक वज्रपात हुआ हम पर, अस्तित्व की जड़ें ही हिल गयीं। पू. चाचा जी को जब वास्तविकता का पता चला, तब अपनी परम पूज्यनीया माता जी के दृढ़ आग्रह करने पर भी कि दोषी व्यक्तियों को अवश्य दंड दिलाया जाए, एक ज्ञानी महापुरुष की तरह यह कह कर मन को समझा लिया और हमारे धैर्य के टूटे

बांध को बांध दिया कि "जो गया वह वापस आने वाला नहीं है । भला अपने ही लोगों को पुलिस के हवाले कैसे कर दूं? अपने घर की बदनामी होगी ।" हमारे भरण-पोषण के लिए उन्होंने भरपूर सहारा दिया, जिससे हम सम्मान-सुविधा सहित रह सकें । आर्थिक सहारा तो देते ही थे, अपने चचेरे-फुफेरे भाइयों को भी पत्र लिखते थे कि वे हमारा ध्यान रखें । आज यह सोचकर भी डर लगता है कि पू. चाचा जी का रक्षारूपी हस्त हम पर न होता तो गांव में हमारा रहना भी संभव नहीं था।

चोरी की दुर्घटना के बाद ही पू. चाचा जी मुझे बंबई ले गये। महानगर की गोद में गोबर की गुड़िया थाप दी ! परम स्नेहशीला पू. सुशीला चाची जी ने मुझे बांहों में भर कर अपने भीतर उतार लिया। गांव के घर की देहरी का जब-तब ध्यान आ ही जाता था , क्योंकि सुधियाँ बिलकुल निर्मम तो होती नहीं ! फिर वर्षों तक बंबई में ऐसी रच-बस गयी जैसे जनम का नाता हो । अपने कर्तव्यों से कहीं अधिक मुझे अधिकार मिले । बहुत दिनों तक पास-पड़ोस के लोग मुझे पूज्य चाचा जी की बहन समझते रहे । भला, भाई की लड़की को इतनी आत्मीयता से कौन सहेजता है?

गृह-वापी में पूज्य चाचा जी कमल की तरह मुक्त-निर्लिप्त-से रहते थे । अपनी धुन में ही सृजन के सूत्र बुनते थे । घर में क्या हो रहा है? बच्चे क्या कर रहे हैं? हम कहां आ-जा रहे हैं? उन्हें कोई सरोकार न था। इसलिए मुझे याद नहीं कि उन्होंने कभी हमें किसी बात पर डाँटा-फटकारा था । हाँ, प्यारी-प्यारी चाची जी ही हम सभी से सिर खपाती थीं । जब कभी वे कहती भी थीं कि तुम्हारे चाचा जी ऐसा कह रहे हैं, या तुम्हारे पापा ने यह कहा है, तो हम उनकी भोली अटकल समझकर कहते कि "आप ही अपने मन से बना रही हैं, वह तो कभी कुछ कहते ही नहीं ।" वह तो एक महामनस्वी थे । महामनस्वी जन प्रकृति से ही मितभाषी होते हैं ।

सच तो यह है कि बच्चे मां के निकटतम संपर्क में रहने के कारण सिर चढ़े हो जाते हैं । यह संस्मरण उन दिनों का है जब पू. चाचा जी आकाशवाणी दिल्ली में 'विविध भारती' के लोकप्रिय कार्यक्रम के निदेशक थे । ट्रेन का समय हो रहा था। हम सब

नाश्ता कर रहे थे । तभी पू. चाची जी अचानक किसी बात का ध्यान करके कुछ रुआँसी होकर कहने लगीं – नरेन्द्र जी, मैं भी आपके साथ दिल्ली चलूंगी, ये बच्चे मुझे बहुत परेशान करते हैं ।" पूज्य चाचा जी ने मुस्कराते हुए पूछा –"कौन परेशान करता है?" वे बोलीं – "गायत्री से लेकर परितोष तक सभी ।" चाचा जी फिर मधुर कर्कश स्वर में कहने लगे – "देखो बच्चो ! तुम अपनी अम्मा को परेशान मत करना, इनका कहना माना करो, नहीं तो अगली बार इन्हें अपने साथ दिल्ली ले जाऊंगा ।" यह कह कर कुछ और लंबी मुस्कान होठों में ही पी गये । वे गर्जनाओं में विश्वास नहीं करते थे । शायद उन्हें अपने सात्विक संस्कारों पर भरोसा था । और फिर स्टेशन रवाना हो गये ।

पू. चाचाजी पत्र लिखने में बहुत कम रुचि लेते थे । या फिर यह कहूं कि उनके पास पत्र लिखने का समय ही नहीं था । हां, विशेष परिस्थितियों में वे कभी पत्र लिखने में चूकते भी न थे । अपनों–परायों को भी पत्र लिखकर स्नेह–परामर्श प्रकट किया करते थे । पढ़ने वालों का मन पत्र पढ़कर गद्‌गद हो जाता था । कभी–कभी अपनी लंबी चुप्पी को वे दूरभाष से नाप लेते थे – दूर कर देते थे । जब मैं पहली बार अकेली जयपुर दसवीं कक्षा की परीक्षा देने गयी, तब वे बड़ी लाड़भरी चिट्ठी लिखकर मेरा मन भटकने न देते और साहस–प्रेरणा प्रदान करते थे । उनके एक स्मरणीय पत्र के अंश हैं – "परीक्षा में खूब प्रसन्न मन से आत्मविश्वास के साथ बैठना । परीक्षा–फल क्या होगा, इस विषय में सोच–विचार करने की आवश्यकता नहीं है । तुम इसके बारे में तनिक भी चिंता न करना । चिंता करने वाले हम लोग, जो तुम्हारे बड़े हैं बैठे हैं और तुम्हें क्या चिन्ता पड़ी है । तुम हिम्मत करके जो सामने आये कर डालो । परीक्षा में ऐसा धरा ही क्या है?"

बंबई में कई वर्ष बड़े प्यार–दुलार में बीतने पर एपेन्डीसाइटिस के दर्द ने मुझे बड़ी बेदर्दी से झकझोर दिया । मेरे गरम–जिद्दी मिज़ाज में और कड़वाहट घुल गयी । जो गुस्सा नाक पर धरा रहता था, वह बात–बात में उतर आया । पू. चाचा जी ने उस कठिन समय में अपने सुनाम को मातृवत धर्म–कर्म से सार्थक ही किया । उनसे जितनी बार जिद करके रूठी, उतनी ही बार मूर्तिमान्

देवताओं से भी । एक बार तो मेरी ज़िद देखकर डॉ. गाँजावाला ने कह ही दिया कि "गायत्री को इसके चाचा-चाची के अत्यधिक लाड़-प्यार ने ही बिगाड़ दिया है - किसी की मानती ही नहीं !" पर मैं सही राह से कभी बहकी नहीं, हाँ, ज़िद पर मेरा ज़ोर कभी नहीं चला, उसका ज़ोर आज़ तक कमज़ोर नहीं पड़ा । कुछ प्रिय परिवारी जन तो मेरे उबाल को यह कह कर टाल जाते हैं - 'गाय मरखनी दुद्धा मीठा !' ऑपरेशन के बाद पूज्य चाचा जी देहली चले गये । वहां से उन्होंने यह पत्र लिखा था-

ए ९/डी२ नेताजी नगर, नई दिल्ली-३
२२-९-६२

चिरंजीवी प्रिय गायत्री,

प्यार और आशीर्वाद । आशा है तुम दृढ़ता के साथ, पूर्ण मनोयोग से स्वस्थ और निरोग हो जाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करोगी । शरीर के रोग को स्वस्थ और आशापूर्ण मन के बल से दूर हटाना चाहिए । ऐसा कोई रोग नहीं, जिसे आशा और विश्वास के बल से दूर न किया जा सके । १९६० और ६१ में मैं कितना बीमार रहा और मैंने दृढ़ता से लड़कर उसे दूर किया । ऐसे तुम भी आशा और विश्वास से जल्दी ही निरोग और स्वस्थ हो जाने का मन से प्रयत्न भी करोगी, पूर्ण सफलता भी प्राप्त करोगी । भगवान् में भी पूरा विश्वास रखना चाहिए और उसी विश्वास के बल पर अपने मन के संकल्प को भी दृढ़ करना चाहिए ।

जब तक मैं अगली बार बंबई आऊं, तुम मुझे अपने स्वास्थ्य में सुधार करके ही दिखलाना ।

मुझे पत्र लिखना और अपना समाचार देना ।
प्यार और आशीर्वाद ।
चाचा जी.

पू. चाचा जी पक्के ईश्वरवादी थे । उनकी आस्था में कभी कमी नहीं देखी । वे अपनी सभी छोटी-बड़ी पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं को अपने रोम-रोम में रमे राम को सौंप देते थे । एक बार मेरा बड़ा भाई और मैं, बालकृष्ण की पढ़ाई के विषय में चिन्तित थे, तब पू. चाचा जी ने मुझे लिखा था कि - " तुम और नगेन्द्र

भय के भाव को मन से निकाल दो। कोई अनिष्ट नहीं होगा। नगेन्द्र से कहना कि गुरुवार का व्रत करे और हर गुरुवार को शंकर भगवान पर जल चढ़ाए। "सुन्दरकांड" का पाठ तो करते ही रहना चाहिए। उसका पाठ हर अमंगल को दूर करता है, इसमें संदेह नहीं है। ..... तुम बालकृष्ण की इच्छा के विरुद्ध पढ़ाई छोड़ने का आग्रह मत करना। उसके भीतर भी तो राम हैं, वह जागते रहें, ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए।"

प्रिय अनुज स्व. चोखा के स्वर्गवास से पू. चाचा जी भी अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा था कि चोखा के चले जाने से मुझे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा नज़र आता है। फिर भी पू. चाचा जी ने सांत्वना का वह पत्र मुझे लिखा था, जिसमें शरीर और शरीरधारी की व्याख्या की है।

५९४, उन्नीसवां मार्ग
खार, बंबई –५२
२–४–७६

सौ. प्रिय गायत्री
आशीर्वाद और प्यार।

तुम्हारा पत्र पाकर, चोखा के जाने का दुःख और शोक फिर–फिर उमड़ आया, लेकिन साथ ही यह भी ध्यान आया कि स्वयं उस जीव की दृष्टि से जिसने जीर्ण–शीर्ण देह का त्याग किया और उस लोक की यात्रा की, जहां न रोग है न शोक है, यहां रह जाने वाले स्वजनों के दुःख, शोक की छाया को दिवंगत आत्मा तक पहुंचाने की सामर्थ्य से रहित पाया। चोखा केवल शरीर ही नहीं था, वह शरीर का धारण करने वाला था और उसने धारण किये हुए शरीर को त्याग दिया, क्योंकि उस शरीर का त्यागा जाना ही उस शरीरधारी के लिए श्रेयस्कर था। प्रयत्न पूरा किया गया, लेकिन प्रयत्न की सीमा और मर्यादा होती है। इस रोग का आज़ तक कोई क़ारगर उपचार संभव हो नहीं सका है। और इस रोग का कारण भी जन्म–जन्म की परंपरा में ही निहित है, अतः रहस्यमय और अज्ञात है। तुमने बहुत किया, अब तुम्हें धैर्य और ज्ञान से काम लेना चाहिए। मेरी तो सच्ची सलाह यह है कि तुम अब अपने स्वास्थ्य, अपने पति के सुख–सुविधा और अपने घर के हर मामले में अपना ध्यान अधिक दो। तुमने शोध–प्रबंध का

काम भी हाथ में ले रखा है, उसमें भी जी लगाओ। मनुष्य के हाथ में इतना ही है कि सद्विचार, सदाचार, सत्य भाषण और उपकार करता रहे और अपने संकल्पों को प्रभु को सौंप दे। प्रभु की प्रभुता है, मनुष्य की नहीं है।

मैं इस बीच शिरडी, नासिक और त्र्यंबकेश्वर गया था। कामकाज तो करना पड़ता ही है, इस यात्रा में मन को शांति मिली और थोड़ा–बहुत आत्मिक बल–संबल भी प्राप्त हुआ।

सबसे यथायोग्य कहना और अपना ध्यान रखना।

– चाचाजी

पू. चाचा जी ने एक बार राकेश जी से कहा था कि – "मनुष्य की माया और वृक्ष की छाया, उसके साथ ही चली जाती है।" आज उनकी यह बात रह–रह कर मन को कुरेदती है। पू. चाचा जी के चले जाने से हमारी तो रक्षारूपी 'माया' और 'छाया' दोनों एक साथ ही चली गयीं और हम असहाय छटपटाते रह गये!!

वे कभी निराश–हताश नहीं दीखे। ईश्वर के व्यक्त–अव्यक्त निर्णय के प्रति सर्वात्मना विनत रहे! इसीलिए प्रभु का नाम प्रभुमय होने तक उनका अविरत जप रहा। उनकी संत–योगी जैसी क्षणिक मृत्यु हुई। अपना ज्योति–कलश ज्योति–पुरुष ने अचानक उठा लिया। जितना स्नेह–सम्मान पाया था यहां, उससे कहीं अधिक दे गये देने–पाने वालों को!

पू. चाचा जी का बहुचर्चित महामानव–कवि रूप अविस्मृत स्मृति–शेष हो गया है।

"पापा"

● लता मंगेशकर

भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता, धर्म, देशभक्ति, आत्मविश्वास, ईश्वर में श्रद्धा और अटूट विश्वास, इन सारी बातों का संगम पं. नरेन्द्र शर्मा जी में मैंने देखा है।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था। प्रतिभाशाली कवि, प्रकाण्ड पंडित, ज्योतिषविद्या और आयुर्वेद के बड़े जानकार, तुलसीकृत 'रामचरित–मानस', 'महाभारत', वाल्मीकि रामायण जैसे महान ग्रंथों पर घंटों तक बहुत सहजता से वे बोला करते थे।

परन्तु उन्हें देखकर किसी को भी महसूस नहीं होता था कि इस वामन मूर्ति के भीतर ज्ञान का महासागर छिपा है। सरल हृदय पापा के मन के अंदर पवित्र स्नेह की गंगा सदा बहती थी।

बीमारी से लेकर प्रोग्राम कब करने चाहिए ? मुझे कौन–सी बात से दुःख होता है, कौन–सी बात से खुशी होती है, ये सारी–सारी बातें उनके सामने बैठकर सुनाया करती थी। मेरे जीवन की कोई ऐसी बात नहीं, जो पापा को मालूम नहीं थी, परन्तु वो उन्होंने अम्मा को भी नहीं बताई।

१९७३ में मैं बहुत बीमार थी। मेरा ऑपरेशन होने वाला था। यह बात सिर्फ चार–पांच व्यक्तियों को मालूम थी। पापा को तो मालूम था ही। उस समय मैं "चलां वाहि देस" मीरा भजनों की एल.पी. रोकार्ड कर रही थी, गाते समय बहुत तकलीफ होती थी। पापा हर रोज सुबह एच.एम.वी. स्टूडियो पहुंच जाते। उन्हें मेरी चिंता होती थी। जिस दिन रेकार्डिंग पूरी हो गयी और सब लोग बैठकर गाने सुनने लगे, तो पापा की आंखों से आंसू बहने लगे। मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा "बहुत बढ़िया हो गया है।" वे जानते थे कि दो–चार दिन में ऑपरेशन होने वाला है।

बाद में अम्मा ने मुझे बताया कि ऑपरेशन के दिन पापा सुबह जल्दी उठकर, स्नान करके पूजा घर में बैठ गये, जब तक उन्हें खबर नहीं आई कि ऑपरेशन अच्छी तरह हो गया।

मैं कितनी भाग्यवान हूं कि पापा जैसे साधु पुरुष ने मुझे अपनी

बेटी कहकर आशीर्वाद के योग्य समझा !

पापा के मुख से किसी के भी लिए मैंने कोई बुरी बात नहीं सुनी। लेकिन अगर कोई गलत बात कहे, तो वे उसे उसी समय डांट देते।

पापा भगवान श्री राम के परम भक्त थे। वे रोज रामायण पढ़ा करते थे। तुलसीदास, कबीर, मीराबाई उनके प्रिय संत कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त (पापा उन्हें दद्दा कहा करते थे), सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन और अमृतलाल नागरजी का उल्लेख बहुत आदर और प्रेम से करते थे। उन्हें मराठी के संत कवि भी पसंद थे। खासतौर पर संत ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि मराठी के कवि। भा.रा. तांबे की एक कविता का अनुवाद पापा ने बहुत ही सुन्दर किया है। विदेशी कवियों में उन्हें "शेली" बहुत ही पसंद था।

१९८८ नवम्बर १४ को नेहरू सॅन्टिनरी समारोह में तीन मूर्ति में कार्यक्रम करके जब वापस लौटी तो पापा से मिलने गई। जाते ही उन्होंने कहा, "बहुत ही अच्छा लगा। न जाने क्यों उनकी आखें भर आयीं ? उस वक्त मैं समझी नहीं, पर आज यूं लगता है कि वे समझ गये थे कि "लता की और मेरी ये आखिरी मुलाकात है।"

पापा के बहुत सारे भजन, गीत मुझे पसंद है, परन्तु सबसे ज्यादा पसंद है--

"दिन जाये, दिन आये। उस दिन की क्या गिनती-
जो दिन, भजन किये बिन जाये।"...

इतनी सच्ची और सुंदर पंक्तियां एक संत ही लिख सकता है। एक और भजन में पापा मां वैष्णवी से कहते हैं--

"माता तेरे भजन में सुख शांति का बसेरा
माता तेरे चरण में सौभाग्य का सवेरा।"

१९४७ या ४८ में अनिल विस्वास के संगीत में मैंने रेडियो के लिए पापा के दो गाने रेकार्ड किये थे। उसमें एक गीत था-- जिसके बोल आज भी मुझे याद हैं और आज भी बहुत अच्छे लगते हैं--

"रख दिया नभ शून्य में किसने तुम्हें मेरे हृदय।
इंदु कहलाते सुधा से विश्व नहलाते
पर न जग ने जाना तुम्हें मेरे ह्दय।"

पापा के जाने से मेरा जो नुकसान हुआ है, वो इस जीवन में पूरा नहीं हो सकता।

१९४८ में अनिल विस्वास जी ने मुझे पापा की बहुत ही सुप्रसिद्ध कविता सिखायी थी, और उसे मैं प्रायः गाया करती थी -- आज मेरे होठों पर वो पंक्तियां बार-बार आ रही हैं-

"आज के बिछुड़े न जाने,
कब मिलेंगे ? कब मिलेंगे ??

जापानी बेटी की याद

● तामाकी मात्सूओका कान्दा

मैं स्वर्गीय श्री नरेन्द्र शर्माजी की जपानी बेटी हूं। हमारी युनिवर्सिटी तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. तोशीओ तनाका जी शर्माजी के घनिष्ठ मित्र थे। इस सिलसिले में शर्माजी जापान भी आये हुए थे। जब मुझे भारतीय फिल्मों के बारे में रुचि हुई, तब प्रो. तनाका ने मुझे शर्माजी के बारे में बताया और उनसे मेरा परिचय कराया। मैं बंबई आई और उनके यहां गई। लगभग दस साल पहले की यह बात है।

जब भी मैं बंबई आती, तो उनके यहां आती रही। एक - दो घंटे बैठकर उनकी सरल मगर गहरी बातें सुनती रहती। नमस्कार कहते हुए और विदा लेते हुए मैं उनके पांव पड़ती तो वे सदा बोलते थे- " आनंद ! आनंद। " यह सुनकर मेरे मन में भी आनंद उठता था। उनकी बातें सुनते - सुनते मेरी आत्मा को सुख और शांति मिलती थी। ऐसे समय को मैं भारत की यात्रा का सबसे अनमोल समय समझती थी।

अब शर्माजी नहीं रहे। जापान में उनकी बेटी वासवी जी की चिट्ठी पढ़कर भी विश्वास नहीं आया। लेकिन आज फिर बंबई आकर उनके घर में अम्माजी की आंखों में आंसू देखा, तो मुझे महसूस होने लगा कि शर्माजी अब इस दुनिया में नहीं हैं, स्वर्गवास हो चुका। फिर भी, आज भी मेरे कानों में उनकी आवाज आती रहती है-"आनंद- आनंद !" मुझे लगता है कि वे हमेशा की तरह मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं।

●



द्वितीय पुष्प

एक हमारा साथी था, जो चला गया

● अमृतलाल नागर

बंधुवर नरेन्द्र शर्मा जी के साथ मेरी घनिष्ठता यों तो सन १९४३ में उनके बंबई पहुंच जाने पर बढ़ी, पर अब याद आता है कि उनसे मेरा पहला परिचय सन १९३६ में हुआ था। उस समय मैंने अपने चौक क्षेत्र के कुछ नवयुवकों के साथ "द कॉसमिक सोशलिस्ट्स" नाम की संस्था के तत्वावधान में श्रद्धेय निराला जी का अभिनंदन समारोह आयोजित किया था। यद्यपि वह समारोह केवल स्थानीय गण्यमान्य कवियों एवं साहित्यकारों के साथ ही संपन्न हुआ था, किंतु सौभाग्यवश आयोजन बहुत ही भव्य रूप से हुआ था। कार्यक्रम पूरा होने के बाद एक ठिगने कद और गौरवर्ण के चश्माधारी युवक निरालाजी के सामने आकर खड़े हुए। उन्हें देखते ही महाकवि खिल उठे थे। उनसे कुशल-क्षेम की कुछ बातें कर लेने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "इन्हें जानते हो? यह नरेन्द्र शर्मा हैं ?"

नरेन्द शर्मा का नाम तब तक प्रसिद्धि के पथ पर काफ़ी आगे बढ़ चुका था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में होने वाले कवि-सम्मेलनों में उनकी धूम मचने लगी थी। उससे भी बड़ी बात यह थी कि उनके प्रथम काव्य-संग्रह "शूल-फूल" की भूमिका स्वर्गीय डॉ. अमरनाथ झा ने लिखी थी और वह महाकवि सुमित्रानंद पंत के अनन्य भक्तों में माने जाने लगे थे।

मुझे बहुत दु:ख हुआ कि नरेद्र जी के आगमन की सूचना समारोह के संपन्न हो जाने के बाद मिली, वरना हम लोग भी उनके गीतों का कुछ आनंद लाभ कर सकते। खैर, सन चालीस में मैं जीविका कार्य हेतु फिल्म लेखन के काम से बंबई चला गया। एक साल बाद श्रद्धेय भगवती बाबू भी 'बॉम्बे टाकीज" के आमंत्रण पर बंबई पहुंच गये। तब हमारे दिन बहुत अच्छे कटने लगे। प्राय: हर शाम दोनों कॉलेज स्ट्रीट स्थित स्वर्गीय डॉ. मोतीचंद्र जी के यहां बैठकें जमाने लगे।

तब तक भगवती बाबू का परिवार बंबई में नहीं आया था और वह कालेज स्ट्रीट के पास ही माटुंगा के एक मकान की तीसरी मंजिल में रहते थे। एक दिन डाक्टर साहब के यहां से लौटते हुए उन्होंने मुझे बतलाया कि वह एक-दो दिन के बाद इलाहाबाद जाने वाले हैं।

"अरे गुरु, यह इलाहाबाद का प्रोग्राम एकाएक कैसे बन गया ?"

"अरे भाई, मिसेस राय (देविका रानी राय) ने मुझसे कहा है कि मैं किसी अच्छे गीतकार को यहां ले आऊँ । नरेन्द्र जेल से छूट आया है और मैं समझता हूं कि वही ऐसा अकेला गीतकार है, जो प्रदीप से शायद टक्कर ले सके ।"

सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ । प्रदीप जी तब तक "बॉम्बे टॉकिज" से ही सम्बद्ध थे । "कंगन", बंधन", और "नया संसार" फिल्मों से उन्होंने बंबई की फिल्मी दुनिया में चमत्कारिक ख्याति अर्जित कर ली थी, लेकिन इस बात से कुछ पहले ही वह "बॉम्बे टॉकिज" में काम करने वाले एक गुट के साथ अलग हो गये थे । इस गुट ने "फिल्मिस्तान" नामक एक नई संस्था स्थापित कर ली थी । कंपनी के अन्य लोगों के हट जाने से (मिसिस राय) को अधिक चिंता नहीं थी, किंतु ख्यातनामा अशोक कुमार और प्रदीप जी के हट जाने से वह बहुत चिंतित थीं । कंपनी के तत्कालीन डायरेक्टर श्री धरमसी ने अशोक कुमार की कमी युसुफ़ खां नामक एक नवयुवक को लाकर पूरी कर दिया । युसूफ़ का नया नाम दिलीप कुमार रखा गया, किंतु प्रदीप जी की टक्कर के गीतकार के अभाव से श्रीमती राय बहुत परेशान थीं । इसलिए उन्होंने भगवती बाबू से यह आग्रह किया था ।

दो-तीन दिनों के बाद मैं जब डॉक्टर साहब के यहां पहुंचा तो उनके बनारसी मित्र और भगवती बाबू के पड़ोसी स्वर्गीय चतुर्दास गुजराती ने मुझसे कहा "भैया" तो देश गया ।

"कब ?"

"कल ।"

उन दिनों या शायद अब भी बंबई में उत्तर भारतीयों को "भैया" कहा जाता था । और कोई भैया जब देश जाता तो बंबई के अन्य दूध-विक्रेता भैया लोग उसे विदा करने के लिये स्टेशन अवश्य जाया करते थे । मैंने गुजराती से कहा, "अरे मुझे पता नहीं था, वर्ना मैं भी भगवती बाबू को बिदाई देने स्टेशन जाता । खैर । लौटेंगे कब ?"

"अरे यार, कवियों की जबान का भला कोई ठिकाना है ? यों कह गये हैं कि आठ-दस दिनों में आ जायेंगे।" बीच में और भी दो चार बार डॉक्टर साहब के यहां गया, लेकिन "गुरु" के वापस आने के कोई समाचार न मिले।

भगवती बाबू तो "बॉम्बे टॉकिज" से जुड़कर बंबई आये थे, लेकिन मैं फ्रीलांसर था। तब तक दो-तीन फिल्मों में डायरेक्टर जुन्नरकर की फिल्म "संगम" के गीत-संवाद लिख कर जब बंबई लौटा तो अपने मित्र फिल्म स्टार और निर्देशक स्वर्गीय किशोर शाहू के साथ ही उनके घर पर रहने लगा। वह भी उन दिनों बंबई की फिल्मी दुनिया में नये सिरे से अपने को जमाने का प्रयत्न कर रहे थे और "आचार्य आर्ट प्रोडक्सन्स" के साथ जुड़कर "कुंआरा बाप" नामक एक हास्यरस की फिल्म बनाने की योजना उन्होंने मुझे बताई। किशोर मुझसे बोले, "पंडित जी, अभी पैसे की तो कोई बात तुमसे नहीं कर सकता, लेकिन तुम मेरी मदद कर सको तो बहुत अच्छा है।" मैं उन दिनों श्रीमती लीला चिटनीस के लिये एक फिल्म के संवाद लिख रहा था और वहां की बहसबाजी से बहुत दुखी था। इसलिए मैंने किशोर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। "कुंवारा बाप" फिल्म ने किशोर को फिर से फिल्म लाइन में जमा दिया। वह पहले श्रीमती देविका रानी के साथ "बाम्बे टॉकिज" की एक फिल्म "जीवन प्रभात" में हीरो बन चुके थे। और उनके साथ मुझे भी अपूर्व ख्याति मिली। मेरा काम बढ़ गया था, किशोर और मेरा दोनों ही का स्थायी अड्डा दादर के "श्री साउन्ड स्टूडियोज" में ही रहता था। एक दिन वहीं "बाम्बे टॉकिज" से भगवती बाबू का फोन आया, "गुरु, हम आ गये हैं।" सुनकर मेरा मन खिल उठा। मैंने कहा, "क्या नरेन्द्र जी भी आये हैं ?"

"हां आज शाम को डाक्टर मोतीचंद्रजी के यहां आओ, खाना-पीना भी वहीं रहेगा।"

शाम को कालेज स्ट्रीट पहुंच गया। नरेन्द्र जी को देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। नरेन्द्र जी मोटे तो कभी नहीं थे, परन्तु उस समय जेल की कष्ट यातनाएँ सहकर वह काफ़ी दुबले हो गये थे। सन इकतालीस के अंत तक मेरी पत्नी और मंझला भाई स्वर्गीय रतन बंबई आ चुके थे। रोटी-पानी का जुगाड़ घर में ही जम चुका था, इसलिये बंधुवर नरेन्द्र जी को अक्सर भोजन के लिए

अपने घर बुला लेता था। इस तरह प्रतिभा (मेरी पत्नी) से भी उनका नेह-नाता अच्छा जुड़ गया था। नरेन्द्रजी बड़े ही पुरमज़ाक आदमी थे। हम तीनोंमें खुलाव भी काफ़ी आ गया था। वह आयु में मुझ से तीन वर्ष बड़े थे इसलिये प्रतिभा उन्हें 'जेठजी-देवरजी' कहा करती थीं। "जेठजी-देवरजी आज आपके लिये क्या बनाऊँ ?" कभी-कभी वह अपनी पसंद की चीजें उनसे बनाने के लिए कह भी दिया करते थे।

इस बीच हमने घूमकर लगंभग सारी बंबई छान मारी और इस तरह बातों-बातों में उनके पूर्व-जीवन के संबंध में बहुत-कुछ जान लिया। लखनऊ का होने के कारण वे मुझे अक्सर "लखनाऊओं" के शहर का निवासी कहा करते और खुर्जा स्थित जहांगीरपुर के निवासी होने के कारण मैं उन्हें "कुर जांगलीय" कहा करता था। खुर्जा कुरु जांगल का ही बिगड़ा हुआ नाम है। उनके पिता पंडित पूरनलालजी गौड जहांगीरपुर ग्राम के पटवारी थे। बड़े कर्त्तव्यनिष्ठ, ईमानदार, सात्विक विचारों के ब्राहमण। अल्पआयु में ही उनका देहावसान हो गया था। उनके ताऊजी ने ही उनकी देखरेख की और पालन-पोषण उनकी गंगास्वरूप माता स्व. गंगादेवी ने ही किया। आर्यसमाज और राष्ट्रीय आंदोलन के दिन थे, इसलिए नरेन्द्र जी पर बचपन से ही सामाजिक सुधारों का प्रभाव पड़ा, साथ ही राष्ट्रीय चेतना का भी विकास हुआ। नरेन्द्र जी अक्सर मौज में आकर अपने बचपन में याद किया हुआ एक आर्यसमाजी गीत भी गाया करते थे, मुझे जिसकी पंक्ति अब तक याद है, "वादवलिया ऋषिया तेरे आवन की लोड़।" लेकिन माताजी बड़ी संस्कारवाली ब्राह्मणीं थीं। उनका प्रभाव बंधु पर अधिक पड़ा।

जहाँ तक याद पड़ता है उनके ताऊजी ने उन्हें गांव में अंग्रेजी पढ़ाना शुरू कर दिया था। बाद में वे खुर्जा के एक स्कूल में भर्ती कराये गये। उसके हेडमास्टर स्वर्गीय जगदीशचंद्र माथुर के पिता श्री लक्ष्मीनारायण जी माथुर थे। लक्ष्मीनारायण जी को तेज छात्र बहुत प्रिय थे। स्कूल में होने वाली डिबेटों में वे अक्सर भाग लिया करते थे। बोलने में तेज। इन वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में वे अक्सर फर्स्ट या सेकेंड आया करते थे। जगदीश चंद्र जी माथुर नरेन्द्र जी से आयु में चार या पांच साल छोटे थे। बाद में तत्कालीन सूचना मंत्री बालकृष्ण केसरकर ने उन्हें आकाशवाणी के डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया। जगदीशचंद्र जी

सुलेखक एवं नाटककार भी थे, तथा इलाहाबाद विश्वविदयालय में पढ़ते समय भी उनका श्रद्धेय सुमित्रानंदन पंत और नरेन्द्र जी से बहुत संपर्क रहा था। वह बंधु को सदा नरेन्द्र भाई ही कहा करते थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद एक बार दिल्ली में मेरी उनसे लंबी और आत्मीय बातें हुई थीं। उन्होंने ही मुझे बताया था कि उनके स्वर्गीय पिताजी ने ही उन्हें (बंधु को) सदा नरेन्द्र भाई कहकर ही संबोधित करने का आदेश दिया था।

नरेन्द्र जी इलाहाबाद में रहते हुए ही कविवर बच्चन, शमशेरबहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल और श्री वीरेश्वर से जो बाद में "माया" के संपादक हुए, उनका घनिष्ठ मैत्री-संबंध स्थापित हो गया था। ये सब लोग श्रद्धेय पंतजी के परम भक्त थे और पंत जी का भी बंधु के प्रति एक अनोखा वात्सल्यभाव था, यह मैंने पंतजी के बंबई आने और बंधु के साथ रहने पर अपनी आंखों से देखा था। नरेन्द्र जी के खिलंदड़ेपन और हँसी–मजाक भरे स्वभाव के कारण दोनों में खूब छेड़–छाड़ भी होती थी।

किन्तु यह सब होने के बावजूद दोनों ने एक–दूसरे को अपने ढंग से खूब प्रभावित किया था। नरेन्द्र जी की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर बंबई वालों ने एक स्मरणीय अभिनंदन – समारोह का आयोजन किया था। तब तक सुपर फिल्म स्टार चि. अमिताभ बच्चन के पिता की हैसियत से आदरणीय बच्चन भाई भी बंबई निवासी हो चुके थे। उन्होंने एक बड़ा ही मार्मिक और स्नेहपूर्ण भाषण दिया था, जो नरेन्द्र के अभिनंदन–ग्रंथ "ज्योति कलश" में छपा भी है। उक्त अभिनंदन समारोह में किसी विद्वान ने नरेन्द्र जी को प्रेमानुभूतियों का कवि कहा था। इस बात को स्वीकार करते हुए भी बच्चन भाई ने बड़े खुले दिल से यह कहा था कि अपनी उन प्रेमाभिव्यक्तियों में भी नरेन्द्र जी ने जिन गहराइयों को छुआ और सहज ढंग से व्यक्त किया वैसा छायावाद का अन्य कोई कवि नहीं कर पाया।

अपने छात्र जीवन में ही कुछ पैसे कमाने के लिए नरेन्द्र जी कुछ दिनों तक "भारत" के संपादकीय विभाग में काम करते थे। शायद "अभ्युदय" के संपादकीय विभाग में भी उन्होंने काम किया था। एम. ए. पास कर चुकने के बाद वह अकेले भारतीय कांग्रेस कमिटी के दफ्तर में भी हिंदी अधिकारी के रूप में काम करने

लगे । उस समय जनता राज में राज्यपाल रह चुकने वाले श्री सादिक अली और भारत के दूसरे या तीसरे सूचना मंत्री के रूप में काम कर चुकने वाले स्व. बालकृष्ण केसकर भी उनके साथ काम करते थे । एक बार मैंने उन दिनों का एक फोटोग्राफ भी बंधु के यहां देखा था । उसी समय कुछ दिनों के लिए वह कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू के कार्यालय सचिव भी रहे थे । इतने प्रतिभाशाली होने के बावजूद उन्होंने कभी किसी से किसी प्रकार की मदद नहीं मांगी ।

फिल्मों में उन्होंने सफल गीतकार के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की। उससे भी अधिक ज्योतिषी के रूप में भी उन्होंने वहां खूब प्रतिष्ठा पायी । एक बार तो मैं उनसे नाराज भी हो गया था । यह ज्योतिष विद्या उन्होंने देवली जेल में ही रहकर सीखी थी । जेल में रहकर ही अलमोड़ा के किसी पंडित की लिखी हुई एक अच्छी पुस्तक 'सुगम ज्योतिष' उनके हाथ लग गयी थी, उसे पढ़कर ही उन्हें इस विद्या का चस्का लगा था । उसके बाद उन्होंने और भी कई किताबें पढ़ी थीं । बंबई में रहते हुए उत्तर और दक्षिण भारत के कई ज्योतिषियों से उनकी अच्छी जान-पहचान हुई, कई अलभ्य पुस्तकों का पता भी उन्हें लगा और धीरे-धीरे वह गीतकार के अलावा बंबई के ख्यातिनामा ज्योतिषियों में भी गिने जाने लगे, लेकिन उन्होंने कभी उससे आर्थिक लाभ नहीं उठाया । हमारी प्रतिभा अक्सर उनसे कहतीं, "जेठजी- देवरजी, यह बताइये कि हमारा - इनका झगड़ा कब खत्म होगा?" और बंधु हंसकर कहते, "प्रतिभा जी यह झगड़ा ही तो आपके प्रेम की निशानी है, यह कैसे खत्म होगा ।"

बंबई में रहते हुए ही उनका कुमारी सुशीला गोदीवाला से परिचय हुआ । यह परिचय बहुत प्रगाढ़ हो गया । उन्होंने एक कविता भी लिखी थी । मैंने कहा, "बंधु किससे यह नेह-नाता जुड़ा है, इसमें बहुत गहराई है । बस अब ब्याह कर डालिये ।"

"मैं भी यही सोचता हूं बंधु ।" बाद में मेरी, प्रतिभा और नरेन्द्रजी की बातें हुईं । गोदीवाला श्री गुलाबदासजी के रेलवे में काम करने के कारण प्रतिभा की पुरानी स्मृतियां जाग उठीं । आदरणीय गुलाबदासजी गोदीवाला कभी आगरे में स्टेशन मास्टर रह चुके थे । उस समय आगरे में रहने वाले एक संपन्न गुजराती वैश्य सज्जन

श्री मधुवनदास शाह और उनकी पत्नी से गोदीवाला दंपत्ति की खासी जान–पहचान थी और मेरी स्वर्गीया सासजी स्वर्गीय शाह दंपत्ति की धर्मपुत्री थीं । अपनी माता के साथ प्रतिभा का भी वहां बहुत आना-जाना होता था । प्रतिभा ने कहा – यह गोदीवालाजी कहीं वे ही पुराने परिचय के न हों । नरेन्द्रजी से उन्होंने यह बात बतलाई । उनकी होने वाली सासजी ने इस बात का समर्थन किया और मुझे तथा प्रतिभा को अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया । बातें स्पष्ट होने पर हम दोनों का नेह–नाता भी गोदीवाला परिवार में तत्काल जुड़ गया । प्रतिभा और सुशीलाजी की भी बहुत बातें हुईं । नरेन्द्र शर्मा और सुशीला गोदीवाला के विवाह की बात तब तक लगभग तय हो चुकी थी, अब और भी पक्की हो गयी ।

मैं उस समय भारत कोकिला श्रीमती सुब्बुलक्ष्मीजी की एक फिल्म "मीरा" हिन्दी में डब कर रहा था और इस निमित्त से वह और उनके पति श्रीमान टी. सदाशिवम्‌जी बंबई ही रह रहे थे । बंधुवर नरेन्द्रजी ने उक्त फिल्म के कुछ तमिल गीतों को हिन्दी में इस तरह रूपातंरित कर दिया कि वे मेरी डबिंग में जुड़ सकें । सदाशिवम्‌जी और उनकी स्वनामधन्य पत्नी तथा बेटी राधा हम लोगों के साथ व्यावसायिक नहीं, किन्तु पारिवारिक प्रेम-व्यवहार करने लगे थे । सदाशिवम्‌जी ने बंबई में ही एक नयी शेवरलेट गाड़ी खरीदी थी, वह जोश में आकर बोले, "इस गाड़ी में पहले हमारा यह वर ही यात्रा करेगा ।" गाड़ी फूलों से खूब सजाई गई । उसमें वर के साथ माननीया सुब्बुलक्ष्मीजी और प्रतिभा बैठीं । समधी का कार्य श्रद्धेय सुमित्रानंद पंत ने किया । बड़ी शानदार बारात थी । बंबई के सभी नामचीन्ह फिल्मस्टार और नृत्य–सम्राट उदयशंकरजी भी उस वर–यात्रा में सम्मिलित हुए थे । बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ । मेरी माता बंधु से बहुत प्रसन्न थीं और पंत जी को, जो उन दिनों बंबई में ही नरेन्द्र जी के साथ रहा करते थे, वह देवता के समान पूज्य मानती थीं । मुझसे बोली, "नरेन्द्र और बहु का स्वागत हमारे घर पर होगा ।"

यह स्वागत समारोह भी अनोखा ही था । पंत जी ने अपनी एक कविता सुनायी तथा माननीया सुब्बुलक्ष्मीजीने मांगलिक गीत गाये । वह दिन आज भी याद आ रहा है तो मेरी आँखें वे स्मृतियाँ लिखते हुए बरस रही हैं । सपना हो गये वे दिन ।

आज बंधु के स्वर्गवास के दसवें दिन मैं यह संस्मरण लिख रहा हूं, इन दस दिनों में मैंने उन्हें न जाने कितना याद किया है। प्रतिभा की मृत्यु के बाद मैं इतना कभी नहीं रोया। बंधुवर नेरन्द्रजी अजातशत्रु थे। अपने मीठे व्यवहार से उन्होंने सारी बंबई को एक प्रकार से बांध लिया था। अवधी के ख्यातिनामा कवि स्व. बलभद्र दीक्षित "पढ़ीस" की स्मृति में हम दोनों के परम मित्र डॉ. रामविलासजी शर्मा के संपादकत्व में लखनऊ से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका "माधुरी" का एक्र विशेषांक प्रकाशित हुआ था। बंधुवरने, जो उन दिनों प्रगतिशील आंदोलन के साथ जुड़े हुए थे, किसी की स्मृति में एक कविता लिखी थी, जिसकी एक पंक्ति अब भी मुझे याद है –"एक हमारा साथी था जो चला गया।" आज वही पंक्ति अपने परम –प्रिय कवि नरेन्द्र शर्मा के लिये दोहरा कर प्रभु से यह कामना कर रहा हूं कि अगले जन्म में भी हमारा और उनका साथ हो।

नरेन्द्रजी की तीनों पुत्रियां सौभाग्यवती वासवी, सौ. लावण्या और सौ. मोंघी (बांधवी) तीनों ही संपन्न और सुसंस्कृत परिवार में ब्याही हैं, बाल–बच्चों वाली हैं। अब चि. परितोष अपनी माँ की सेवा करने के लिए अकेला है। राम करे वह चिरंजीवी, चिरसुखी तथा चिर उन्नतिशील हो तथा अपनी माँ मेरी प्रिय सुशीला बेन को खूब–खूब सुख दे।

पंत की काव्य-परंपरा के संवाहक पं. नरेंद्र शर्मा की७५ वीं सालगिरह (२८ फरवरी) पर विशेष:

●डॉ. रामविलास शर्मा

आज से सैंतीस वर्ष पूर्व लता मंगेशकर की शहद लिपटी आवाज में रेडियो से सुने गीत की ध्रुव पंक्तियां, "युग की संध्या कृषक वधू-सी, किसका पंथ निहार रही है।' आज भी मन की किसी मृदुल टहनी पर ताजा, खिले पुष्प की तरह रस विभोर करती रहतीं है। गीत के रचयिता पं. नरेन्द्र शर्मा से भेंट की साध एवं ललक तभी से मन में घुमड़ती रहीं। यह सुखद संयोग प्राप्त हुआ पिछले दिनों जब आकाशवाणी इन्दौर ने उन्हें राजेन्द्रप्रसाद व्याख्यानमाला में उद्‌बोधन हेतु आमंत्रित किया।

प्रथम भेंट में ही पंडितजी इतनी आत्मीयता से मिले जैसे वर्षों पूर्व की जान-पहचान हो। विद्वत्ता मनुष्य को विनम्र बनाती है। नरेन्द्रजी इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। आज उनकी सबसे प्रमुख चिंता साहित्यकारों के बीच पनप रही संवादहीनता को लेकर है। वे कहते हैं "आज जब मैं देखता हूं कि साहित्य जगत में जो सक्रिय लोग हैं, प्रतिभावान भी हैं, लेकिन उनके बीच जो पारस्परिक संबंध है, वह ढीला होता जा रहा है, तो मुझे बड़ा दुःख होता है। मैं यह चाहता हूं कि हमारे साहित्यिक बंधु इस विषय में थोड़े और सचेत हो जाएँ कि कुछ भी हो, हम सब एक ही परिवार के हैं। हम, हमारे कार्यक्षेत्र भले ही विविध हों, लेकिन हिन्दी का साहित्यिक होना भी अपने-आप में एक प्रगतिशील बात है, क्योंकि हिन्दी के नाम पर कुछ मिलता तो है नहीं, घाटा ही रहता है। घाटे का सौदा प्रेम से अपनाने वाले जो साहित्यिक हैं, वे बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। उनको अब इस बात का अच्छी तरह भान हो जाना चाहिए कि परिवार के सब सदस्य पारस्परिक आत्मीयता रखें और एक-दूसरे के सन्निध्य में आने और रहने का प्रयत्न करें।"

पं. नरेन्द्र शर्मा ने बताया कि कविता के प्रति उनका मन प्रेरित हुआ पं. सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवीजी की कविताओं को पढ़कर

तथा उनके बारे में सुनकर। "इंटरमीडिएट पास करने के बाद अग्रिम पढ़ाई हेतु जब इलाहाबाद पहुंचा, तो वहां कविता के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ।" जिस बोर्डिंग हाउस में प्रवेश मिला, वहां केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह तथा माहेश्वरी से प्रगाढ़ मैत्री हो गई। ये लोग पहले से ही कविता रच रहे थे और उन्हें कविता का अभ्यास भी अधिक हो चुका था। ऐसा सान्निध्य पाकर पंडितजी की कविताधारा भी बह चली। प्रतिदिन भेंट और आपस में कविता सुनाने का दौर शुरू हुआ।

नरेन्द्रजी १९३१ में इलाहाबाद पहुंचे थे। उनकी पहली कविता "चांद" में छपी। इसी वर्ष के अंत में सर्दियों में प्रयाग में स्वदेशी मेला लगा और वह भी स्वराज्य भवन में। पंतजी वहां आये। यहीं पं. नरेन्द्र शर्मा की पंत जी से प्रथम भेंट हुई। आगे का हाल नरेन्द्रजी के ही शब्दों में– "जिनके प्रति मन में पहले से ही आकर्षण प्रबल हो चुका था, उनके दर्शन से बहुत आनंद हुआ। एक सौम्य व्यक्तित्व सुलभ हो गया। थोड़े दिनों बाद महादेवीजी से भी परिचय हो गया, तो जिन कवियों ने कविता रचने की प्रेरणा दी थी, उनसे साक्षात्कार हुआ। मिलना–जुलना, साथ उठना–बैठना प्रारंभ हुआ। लेखन में गति आई।"

पंडितजी ने स्मृति के तंतुजाल को सुलझाते हुए आगे बताया– "सच पूछिये तो प्रेरणा और प्रोत्साहन मुझे भगवतीचरण वर्मा से ज्यादा मिला। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि अपने से छोटों को वे अपने निकट बिठा लेते थे और भाईचारे का बर्ताव रखते थे। उन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया। अपने साथ ले जाकर बहुत से लोगों से मिलाया। इलाहाबाद के वातावरण में मेरी कविता पनपने लगी। सरस्वती में मेरी एक कविता छपी १९३३ में।

"मैं खुर्जा में जे.ए.एस. हाईस्कूल में पढ़ता था, उसके हेडमास्टर थे श्री माथुर। उनके बेटे जगदीचंद्र माथुर मेरे बाल मित्र थे, जो कालान्तर में आय.ए.एस. होकर आकाशवाणी के महानिदेशक भी रहे। तो उनको उनके पिता ने कहा कि "देखो 'सरस्वती' में नरेन्द्र की कविता प्रकाशित हुई है। जगदीशचन्द्र माथुर इस बात को मानने को ही तैयार नहीं। 'सरस्वती' उस समय एक व्यापक और स्तरीय पत्रिका थी। उसकी प्रामाणिकता भी मान्य थी। छुट्टियों में जब मैं घर पहुंचा और मैंने इस बात की पुष्टि की कि प्रकाशित रचना

मेरी ही है तो हेड मास्टर साहब को बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने मुझे प्रोत्साहित भी किया। नये कवि को प्रोत्साहन बड़ी प्रेरणा देता है।''

पं. नरेन्द्र शर्मा ने प्रयाग से १९३६ में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पूर्व ही उनका प्रथम काव्य संग्रह ''शूल फूल'' के नाम से प्रकाशित हो चुका था। १९३६ में एक और काव्य संग्रह ''कर्णफूल'' आया।

'सरस्वती' में ही पंडितजी की एक और कविता ''आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।'' १९३७ में छपीं। ''बच्चनजी'' उन दिनों पंजाब की यात्रा पर थे। उन्होंने लायलपुर स्टेशन पर ''सरस्वती'' खरीदी। इस अंक में पंडितजी की कविता पढ़कर उन्होंने पंडितजी को पत्र लिखा, जिसमें कविता की प्रशंसा की गई थी। पढ़कर पंडितजी को आनंद हुआ। प्रोत्साहन से प्रेरणा पाकर ''प्रभाती'' काव्य संग्रह आया हीराप्रेस भारती भंडार से। इसके बाद १९३९–४० में आया ''पलाश–वन''।

सामाजिक सुधार और राजनीतिक आंदोलन के प्रति रुचि के संस्कार हाईस्कूल में पढ़ते समय ही अंकुरित हो उठे थे। 'नौजवान भारत' नामक समाचार पत्र में भी ८ माह कार्य किया, उसके बाद कृपलानीजी तथा नेहरूजी के सान्निध्य में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मुख्य कार्यालय, जो स्वराज भवन में स्थित था, में १९३७ से ४० तक तीन वर्ष कार्य किया। ४० में काशी विद्यापीठ पहुंचे तो वहां नजरबंद हो गये। पहले जिला जेल बनारस में रहे फिर आगरा सेंट्रल जेल और वहां से राजस्थान के देवरी डिटेंशन कैम्प में भेज दिये गये। लंबी भूख हड़ताल करने पर राजनीतिक बंदियों को छोड़ दिया गया। जेल में भी लेखन चलता रहा था। उन कविताओं का संग्रह है, ''मिट्टी और फूल'' तथा प्रथम काव्यसंग्रह 'मनोकामिनी'।

पंडितजी से यह पूछने पर कि फिल्म जगत में आप कैसे जा पहुंचे, मुस्कराकर उन्होंने उत्तर दिया कि यह भी एक अनोखा संयोग ही था। आगे का विवरण नरेन्द्रजी के शब्दों में। ''१९४७ के फरवरी माह में भगवती बाबू अचानक घर आये और बोले, 'देखो हम तुमको बंबई ले चलते हैं, फिल्म वालों ने बुलाया है गीत-

लेखन के लिए।' मैंने कहा "भगवती बाबू फिल्म के लिए गीत लेखन का अभ्यास तो हमें है नहीं, बिलकुल भी नहीं और फिर फिल्मवालों से परिचय भी तो नही"। भगवती बाबू ने उत्तर दिया, हम भी तो वहां हैं, चिंता क्यों करते हो, चलो।"

"मैं उनके साथ बंबई रवाना हुआ। इलाहाबाद से बंबई की यात्रा में मैंने पूर्वाभ्यास के रूपमें एक गीत लिखने की कोशिश की। यह सुन रखा था यहां गीत उर्दू में भी लिखना होता है। उर्दू का अभ्यास तो मुझे था ही, क्योंकि उत्तर प्रदेश में उन दिनों उर्दू दूसरी भाषा के रूप में पढ़ायी जाती थी। जो गीत मैंने यात्रा के दौरान रचा, उसका मुखड़ा था,

"ऐ बादेशबा, इठलाती न आ,
मेरा गुंच-ए दिल तो सूख गया"

खैर, बंबई पहुंचे। बॉम्बे टॉकीज संस्था की निदेशिका थीं उस समय की विख्यात अभिनेत्री देविकारानी। मुझे याद है कि १७ फरवरी के अपरान्ह अर्थात दोपहर बाद हम उनसे मिलने पहुंचे थे। भगवती बाबू साथ में थे। देविकाजी से दो घंटे चर्चा हुई। अंत में उन्होंने पूछा आप हमारे बुलावे पर इलाहाबद से कब रवाना हुए ? मैंने उत्तर दिया "१५ फरवरी को।" इस पर उन्होंने यह कहकर मुझे आश्चर्यचकित कर दिया, "तो १५ फरवरी से आपकी बॉम्बे टॉकीज में नियुक्ति पक्की।" तीन वर्ष हम वहां रहे।"

मेरा फिल्म लेखन का अनुभव प्रारंभ हुआ "हमारी बात" फिल्म से। संयोग से यह देविकारानी की अंतिम फिल्म थी, जिसमें वे अभिनेत्री थीं। दूसरा संयोग यह है कि जो गीत मैंने पूर्वाभ्यास के रूप में लिखा था, उसे संगीत-निर्देशक ने पसंद कर लिया। दूसरे गीत जो फिल्म की सिचुएशन देख कर लिखा था कि "मैं उनकी बन जाऊं रे" यह भी बहुत लोकप्रिय हुआ। मैं लगभग १० वर्ष तक फिल्म जगत से जुड़ा रहा। इस बीच बाम्बे टॉकीज, राजकमल, मिनर्वा, प्रभात आदि जो बड़ी-बड़ी संस्थाएं थीं, उन सब के साथ काम करने का अवसर
मिला।"

१९५३ में डॉ. केसकर के आग्रह पर पं. नरेन्द्र शर्मा आकाशवाणी

में आ गये। पं. सुमित्रानंदन पंत तथा भगवती बाबू भी उन दिनों आकाशवाणी में थे। पंडित जी आकाशवाणी में लगभग १८ वर्ष रहे १९७१ तक। अवकाश के बाद पुन: उन्होंने "सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्" तथा "प्रेमरोग" आदि फिल्मों में गीत लिखे।

पंडित जी का कहना है फिल्म तथा आकाशवाणी ऐसे माध्यम हैं, जिनसे कविता जन-जन तक पहुंचती है। ये जीवन को प्रभावित भी करते हैं। बंबई पहुंचने के बाद पंडित जी के जो ग्रंथ आये वे हैं "हंसमाला, "रक्त चंदन" (गांधी निर्वाण पर), "अग्नि-शस्य" "कदलीवन"। कुछ खंड-काव्य भी जैसे "द्रौपदी", "प्रकीर्ण" तथा "सुवीरा" जो महाभारत की कथावस्तु पर आधारित है। इनके बाद आया "मुट्ठीबंद रहस्य"। इधर इनकी बहुत-सी कविताएं हैं, जो अभी अप्रकाशित हैं। एक कहानी-संग्रह छप चुका है तथा गांधी जी की एक़ जीवनी भी। निबंधों के संग्रह की पांडुलिपि भी तैयार है।

पं. नरेन्द्र शर्मा का जन्म २८ फरवरी १९१३ को जहांगीरपुर गांव में हुआ था। दादा की बनाई हवेली थी और सम्पन्न परिवार, इनके पूर्वज आये थे जमुनापार से। वे स्वामी कहलाते थे। जो ब्राह्मण गृहस्थ जीवन में रहकर साधना करते थे, वे स्वामी कहलाते थे उन दिनों। यहां से ११ मील दूर है कस्बा खुर्जा। वहीं से पंडित जी ने १९२९ में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। वहां के हेडमास्टर थे लक्ष्मीनारायण माथुर। उन्हीं से समाज सुधार की दिशा में प्रेरणा मिली।। 'नौजवान भारत सभा' के माध्यम से राजनीतिक आंदोलन से भी जुड़े।

पंडित जी की अल्पायु में ही पिता का निधन हो गया था। ताऊजी ने पुत्रवत स्नेह दिया। इनकी पढ़ाई में परिवारजनों ने विपरीत स्थितियों के बावजूद जो सहयोग दिया, उनका स्मरण कर वे चर्चा करते हुए अभिभूत हो उठते थे। जोखिम भरी जिंदगी जीने के आदी पंडित जी रूढ़ि-मुक्त थे। विवाह विलंब से किया १९४७ में और वह भी पं. सुमित्रानंद पंत के आग्रह पर। गुजराती परिवार की कन्या। अपूर्व सहयोगिनी। तीन पुत्रियां और एक पुत्र। तीनों बेटियां अपने-अपने घर की हुईं। पुत्र-पिता के चरण-चिन्हों पर। अभी विवाह नहीं किया, कहते हैं क्या जल्दी है। परिवार के साथ बंबई में अपने निजी मकान में रह कर साहित्य सर्जन में रत हैं

प. नरेन्द्र शर्मा ।

साहित्यकारों के साथ गुजरे सुखद क्षणों का स्मरण करते हुए पंडितजी बताते हैं– 'एक बार पंतजी महादेवी के यहां आये । उनका निवास था प्रयाग महिला विद्यापीठ परिसर में। सुरम्य कॉटेज एवं सुरुचि पूर्ण सज्जा । पंत जी ने कॉटेज में प्रवेश करते ही कहा "आपका यह कॉटेज तो मंदिर जैसा है ।" महादेवी ने हंसते हुए उत्तर दिया– "हां, लेकिन आपका हृदय तो शून्य मंदिर है" मुझे इसी समय महादेवी जी की एक पंक्ति स्मरण हो आई तो मैंने उनसे साहस कर पूछ ही लिया "क्या इसीलिए आपने लिखा है 'शून्य मंदिर में बनूंगी प्राण मैं प्रतिमा तुम्हारी ?"

"यह सुनकर दोनों वरिष्ठजनों ने मुझे डांटा-फटकारा । कान पकड़ने तक की नौबत आई । इनके अतिरिक्त पंतजी, निराला जी तथा भगवती बाबू के कई मार्मिक संस्मरण हैं, वे फिर कभी..."

आधुनिक कविता में व्याप्त जटिलता के बारे में पं. नरेन्द्र शर्मा का कहना है "मैं इसको दो तरह से देखता हूं। एक ओर यह मनोवैज्ञानिक समस्या है, तो दूसरी और यह समाजपरक समस्या । अनुभव कोई किसी को दे नहीं सकता, दूसरे का अनुभव ओढ़ा जा सकता है, लेकिन जिया नहीं जा सकता। जहां तक कविता में क्लिष्टता का प्रश्न है वह संकुचित मनोवृत्ति के कारण दुरूह होती जा रही है । पं. नरेन्द्र शर्मा के सृजन के लगभग ५५ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। सृजन की मंदाकिनी आज भी उनकी लेखनी से अविराम प्रवाहित है, यह हिंदी साहित्य जगत के लिए एक उपलब्धि है।

(इस ग्रंथ हेतु विशेष रूप से उद्धृत – संपादक)

कविमित्र नरेंद्र शर्मा की याद में

● केदारनाथ अग्रवाल

बात ५६/५७ वर्ष पहले की है। तब हम दोनों–नरेन्द्र और मैं प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे। बी.ए. में पढ़ते थे-हिन्दू होस्टल में रहते थे।

नरेन्द्र जहांगीरपुर (खुर्जा) से आये थे। मैं बुन्देलखंडी, बांदा से आया था। मैं पिछड़े इलाके के देहात से आया था। इसलिए देहाती से शहराती होने में मुझे समय लगा। नरेन्द्र के संस्कार इसके विपरीत थे। उनमें देहाती 'बू-बास' नहीं थी। लेकिन बी.ए. तक पहुंचते–पहुंचते मैं भी उसी सरल स्वभाव का युवक हो गया, जिस स्वभाव के नरेन्द्र थे। इसलिए हम दोनों एक–दूसरे के मित्र हो सके। मुझे भी कविता से वैसा ही प्रेम और लगाव था, जैसा नरेन्द्र को। यह काव्य प्रेम ही हम दोनों के घनिष्ठ मित्र होने का कारण बना।

मुझे मालूम नहीं कि नरेन्द्र को ब्रजभाषा के काव्य में रुचि थी या नहीं, मुझमें थी। मैंने पहले ब्रजभाषा में कुछ रचनाएं लिखीं। पता तो यह है कि नरेन्द्र ने कभी भी ब्रजभाषा में कविताएं नहीं लिखीं। इसलिये उनकी कविताओं में पूर्ववर्ती संस्कार नहीं मिलते, जो मेरी कविताओं में झलक मारते मिल जा जाया करते थे।

इस भिन्नता के बावजूद हम दोनों खड़ी बोली में ही कविता लिखने लगे। नरेन्द्र और मैं भी पंत जी के काव्यसंग्रह- "पल्लव"- की कविताएं पढ़कर बड़े अभिभूत हुए थे। हम दोनों पंत जी के शब्द–विन्यास उल्लास के कायल हो चुके थे। यह उल्लास मुक्तिकामी था। स्वतंत्रता प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित हो रहा था। शिक्षित वर्ग सबसे पहले प्रभावित हुआ और देश की आजादी के लिए संघर्षरत हुआ। एक ओर गांधीवादी विचारधारा सक्रिय हुई तो दूसरी ओर असंतुष्ट युवा पीढ़ी के कार्यकर्ता क्रांतिधारिता के माध्यम से ही स्वतंत्रता की प्राप्ति का लक्ष्य लेकर आंदोलन करने लगे। बहरहाल इस सबका प्रभाव हम दोनों पर भी पड़ा। नरेन्द्र तो पहले से ही खद्दरधारी थे और मैं भी देश के लिए कुछ करने का साहस करने लगा था। नरेन्द्र तो कांग्रेस के नेताओं के संपर्क में आये। वह कांग्रेस के दफ्तर में भी कार्य करने लगे और पं. जवाहरलाल नेहरू के घनिष्ठ संपर्क में रहे। परिणाम यह हुआ कि सन् ३४ के बाद से लगातार नरेन्द्र राजनीति के प्रति समर्पित होते चले गये

और उनका पहले वाला प्रेमाद्वेगी काव्य लेखन अपने असली रूप में न रह सका और न ही हृदय की वृत्तियां पहले जैसी सूक्ष्म, उन्मुक्त और भावविह्वला रह गयीं न व्यक्ति की निजी लालसा और लिप्सा रूपायित होने लगी। प्रेम की उनकी आत्मिकता, सहज–साधारण आदमियों की आत्मिकता में बदलने लगी। भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक तत्वों के प्रति उनका आकर्षण बढ़ने लगा। वह यथार्थ में न पैठकर वैचारिकता को अपनाने लगे और द्वंद्व का समाहार आध्यात्मिकता के आधार पर करने लगे। पहले तो मार्क्सवादी दर्शन ने उन्हें अपनी ओर खींचा, परन्तु प्रगतिशीलों के संपर्क में आकर भी अधिक समय तक प्रगतिशील न रह सके। उन्होंने तभी एक कविता "यंकुम मई" लिखी थी। वह खूब चर्चित रही और अब भी मई दिवस आने पर याद आ जाती है। संभवत: उनकी बाद की मानसिकता भाववादी विचार–धारा की ओर ले गई और वह भाव और भाषा में 'क्लासकीय' हो गये। मैंने यही अनुभव किया जब मैंने उनके बाद वाले काव्य–संकलन पढ़े। तत्सम शब्द साधिकार उच्चासनी सिंहासन पर बिराजमान दिखते। मुझे ऐसा महसूस होता कि हमारे पहले के नरेन्द्र-हमारे प्रिय मित्र अब हमसे दूर हो गये हैं। हम उनकी पहले वाली छबि को ही अपने प्रिय मित्र की छवि समझते हैं और उसी से जुड़े रहते हैं। हमें बाद के कवि नरेन्द्र की प्रतिमा से कोई लगाव नहीं रहा और न है।

एक जमाना था, सन् ४० के आसपास का, जब नरेन्द्र को हमने गुनगुनाते, दाहिने हाथ का पंजा घुमाते, पैदल चलते, साइकिल चलाते, चप्पल चटकारते, शेरवानी और पायजामा लटकाये देखा था। हम मित्रों के बीच बैठकर घंटों सस्वर नई–नई कविताएं सुनाते थे तब मित्रवर नरेन्द्र। हम सब देखते रह जाते थे। इतनी जल्दी–जल्दी कविताएं लिखते और सुनाते कि मुझे तो आश्चर्यचकित कर देते थे। मैं तो कभी ऐसा नहीं कर पाया।

नरेन्द्र की प्रेम–कविताओं का स्रोत क्या था, मैं नहीं जानता। मैं तो बहुत पहले ही ब्याहा गया था। सातवीं कक्षा में था तब ब्याह हुआ, दसवीं कक्षा में था तब गौना हुआ। इंटर के प्रथम वर्ष में था तब मेरी बड़ी बेटी श्यामा का जन्म हुआ। इससे मेरी प्रेम कविताओं का स्रोत मेरी पत्नी बनीं। ७४ वर्ष की आयु में वह दिवंगत हुईं। मैं ७८ वर्ष का बूढ़ा जीवन जी रहा हूं। मुझे

संसार से, प्रकृति से पहले जैसा लगाव है। मुझमें और नरेन्द्र में यही अंतर है कि वह राजनीति के होते चले गये। राजनेताओं और दद्दा मैथिलिशरण गुप्त जैसे राष्ट्रकवि के प्रिय बन गये और मैं इससे बचा रहा। इसलिए इस आयु में भी प्रेम-संबंधी कविताएं लिख सका। कोई माने या न माने, कविता पूरा मनोयोग चाहती है तब वह कवि की बराबर बनी रहती है, वरना कवि को छोड़ भागती है। नरेन्द्र यदि राजनीति में जुड़े न होते और कवि बने रहकर ही कविताएं लिखते रहते तो निःसन्देह हिन्दी के प्रमुख कवियों में गौरवपूर्ण स्थान पाते। ऐसा न कर सकने की वजह से वह केवल प्रेम के गीतकार के रूप में लब्ध प्रतिष्ठित हुए।

नरेन्द्र के बहुत प्रिय कवि रहे पंत जी। महादेवी जी से उनके घनिष्ठ संपर्क रहे। भगवती चरण वर्मा और बच्चन जी से तो अत्यन्त आत्मीय संबंध रहे। नरेन्द्र का ब्याह बंबई में हुआ। पंतजी वगैरह थे। पंतजी, नागरजी, भगवती बाबू और बच्चन जी नरेन्द्र की शादी में सभी रहे। मुझे भी निमंत्रण मिला था। पर पेशे के काम में फंसे रहने की वजह से बांदा की कचहरी छोड़कर अपने प्रिय मित्र की शादीमें न जा सका। अनूठा अवसर था। अनूठी शादी थी। आज तक मुझे इसका हार्दिक दुःख है कि मैं सम्मिलित न हो सका। इसलिए अपने मित्र के परिवार के सदस्यों को न जान सका। मेरी मित्रता केवल कविताओं की मित्रता हो कर रह गयी। वह जीवनव्यापी न हो सकी।

हम दोनों के एक आत्मीय मित्र शमशेर बहादुर सिंह रहे। वह भी सहपाठी थे और उसी होस्टेल में रहते थे। वह तो नरेन्द्र जी की कविताएं सुनते तो ऐसे भाव-विभोर हो जाते कि कुछ भी सुध-बुध न रहती और कविता की गूंज में ही डूबे रहते। वह चित्र भी बनाते थे। नरेन्द्र का इतना प्रभाव उनके मन पर पड़ा कि वह जो चित्र बनाते नरेन्द्र की आकृति का होता। हम लोग खूब हंसते। यह भ्रम काफी दिनों तक चला। बहुत दिनों बाद बंद हुआ।

नरेन्द्र की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। वह अपनी परीक्षावाली फीस जमा न कर पा रहे थे। चिंतित थे। शमशेर साहब को पता चला तो नरेन्द्र की फीस जमा कर आये और अपनी फीस जमा न कर सके। यही नहीं, बिना बताये बनारस चले गये।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि नरेन्द्र की तबकी प्रेम–कविताएं कितनी प्रिय और प्रभावशाली होती थीं। वैसे मैंने नरेन्द्र को कवि– सम्मलेनों में जाते और कविता पाठ करते कभी देखा नहीं। घरों की, मित्रों की गोष्ठियों में वह गये तो खूब तन्मय होकर सबको रसविभोर कर देते थे। इलाहाबाद की हिन्दी प्रेमी जनता में वे सम्माननीय कवि माने जाते थे। "सरस्वती" में भी छपे थे। "माधुरी" में छपते थे। "हंस" और "रूपाभ" में भी छपते थे। "रूपाभ" पंत जी ने निकाला था। प्रयाग के दीक्षित प्रेस से छपता था। संपादक पंतजी थे। नरेन्द्र और शमशेर भी संपादकीय मंडल में थे। ऐसा कोई न मिलेगा, जिसने नरेन्द्र की कविता पढ़ी या सुनी हो और उन्हें भूल गया हो।

बी.ए. में पढ़ते समय हम तीनों– नरेन्द्र, मैं और "अंचल"- पटेल फोटोग्राफर के स्टूडियो पहुंचे और फोटो खिंचवाई। अब भी वह फोटो मेरे पास बांदा में सुरक्षित है। एक फोटो और है। इसमें केवल नरेन्द्र हैं। शरीर से पतले हैं, दुबले हैं, शेरवानी-पायजामा पहने हैं। यह फोटो उन्होंने मुझे दी थी। सुरक्षित है अब भी मेरे पास है। जब इन तस्वीरों को देखता हूं तो फिर उस युग में पहुंच जाता हूं। बेहद खुशी होती है। अब न वह दिन रहे, न वे मित्र रहे। पर जाना तो सब को एक–न–एक दिन। तो भी चेतना में आदमी अपने आत्मीयों को मरते दम तक जिलाये रखता है। नरेन्द्र तो नहीं बचे। उसका साकार रूप मेरी चेतना में अब भी उसी तरह बिंबित है और मैं उसे जीवित देखता रहता हूं।

अभी पिछले दिनों आकाशवाणी से नरेन्द्र के दिवंगत होने का समाचार मिला, सन्न रह गया। रेडियो ने कहा- "मैसिव हार्ट अटैक" से मृत्यु हुई। सोचा संवेदना के शब्द लिख कर भेजूं, परंतु मैं न तो पता जानता था, न परिवार के सदस्यों से परिचित था। अपने दो एक मित्रों को ही अपनी वेदना लिख कर भेज सका।

हां याद आयी। नरेन्द्र मेरे नगर बांदा भी एक बार आये थे। भगवती बाबू के पुत्र की शादी बांदा की एक लड़की से हुई थी। उसी में सम्मिलित हुए थे। उस दिन मैं बांदा के कवि सम्मेलन पंडाल में व्यस्त था, देख रहा था। रात का समय। अचानक कार से उतरकर नरेन्द्र मुझसे गले मिले। मैं बेहद प्रसन्न हुआ। उन्हें

अपने घर लाना चाहा। पर वह उस शादी में शामिल होने की हड़बड़ी में थे, इसलिए मेरे घर न आ सके। आत्मीय थे तभी तो उन्हें मेरी याद मेरे पास तक घसीट लाई। वह दिन मेरे जीवन का सर्वोत्तम दिन था। मुझे गर्व है कि हमारी मित्रता अटूट थी।

नरेन्द्र के प्रेम गीत की पंक्ति रह-रह कर याद आ रही है। अब नरेन्द्र के न रहने पर यह पंक्ति अत्यधिक मार्मिक हो गई है। पंक्ति है-

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।"
मैं कहता हूं- "हम मिलेंगे हम मिलेंगे याद में,
गूंजती कविता जहां अपवाद में।"

एक खिलंदरा जादूगर

● शमशेरबहादुर सिंह

पंडित नरेंद्र शर्मा पर भी सार्थक लिखने की योग्यता या क्षमता मुझमें नहीं, पहले ईमानदारी से यह कबूल कर लेना मेरे लिए जरूरी है । कारण कि नरेन्द्र शर्मा जैसे गंभीर सांस्कृतिक चिंतक और कला-मर्मज्ञ का रचना-संसार बहुत व्यापक है; दूसरे वह केवल कवि-गीतकार लिरिक कवि ही नही; साहित्य-विधाओं को भी बहुत ही बारीकी से समझते थे । पिछले कुछ वर्षो में उन्होंने पद्यबद्ध कथा विशेषकर महाभारत जैसे महाकाव्य के विशिष्ट पात्रों को विश्लेषणात्मक पारिभाषिक शैली में ही व्यक्त किया है। उनमें जो विशिष्ट पात्रों का प्रतीकात्मक स्वरूप सामने आता है, वे कविताएं।

नरेन्द्र शर्मा मेरे साहित्य-जीवन में एक ऐसा नाम आता है, जो बरसों तक अजीब अनिवार्यता के साथ मेरी भावनाओं और कल्पना-क्षेत्रों को घेरे रहा । इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदू बोर्डिंग हाउस (अब मालवीय छात्रावास) में सन् ३२-३३ और उसके बाद सन् ३६ से ३८ तक मैं रहता था । यहाँ हम चार मित्र-साहित्यकार थे, जो एक-दूसरे को अच्छी रचना करने के लिए एक बहुत गहरे प्रेरणा स्रोत का काम करते थे । हमारे ग्रुप में हम चार-जन वीरेश्वर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र और मैं - हर महीने की पूर्णिमा भर में लिखी गयी अपनी कविताएँ सुनाते थे । सबसे अधिक कविताएँ नरेन्द्र शर्मा लिखते थे । केदारनाथ भी छोटी-बड़ी कम-से-कम तीन कविताएँ महीने भर में जरूर तैयार कर लेते थे। मैं भी दो-तीन कविताएँ लिख लेता था । थोड़ा-सा वीरेश्वर सिंह का हम लोगों पर रोब इसलिए भी था कि वो सुभ्रद्राकुमारी चौहान के मौसेरे भाई थे । एक दफे जब सुभ्रद्राजी इलाहाबाद में आई हुई थीं, तो वीरेश्वर सिंह हम लोगों को उनसे मिलाने ले गये थे । हम लोगों ने अपनी कविताएँ उन्हें सुनाई थीं और जहाँ तक मुझे याद है, सुभद्राजी ने भी अपनी दो-एक कविताएँ सुनाने का अनुग्रह किया था । वे बहुत कम बोलती थीं, स्वभाव से सरल और गंभीर थीं । उनका पहला काव्य संग्रह "मुकुल" उन्हीं दिनों प्रकाशित हुआ था । हम सब लोग उसे पढ़ चुके थे, देख चुके थे । "मुकुल" की कविताओं में सहज अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय-भावना का मेल था ।

जिन वरिष्ठ कवियों से हम लोगों को निरंतर प्रेरणा मिलती थी, उनमें से दो-तीन तो कमोबेश इलाहाबाद के ही वासी हो गये थे। पंडित सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा तो सविशेष । जीवन के

अंतिम वर्षों में निरालाजी प्रायः दारागंज (संगम) के तट पर ही विराजते थे। महादेवीजी ने अपने अध्यवसाय और उत्साह से गंगा के किनारे फाफामऊ नामक ग्राम में 'साहित्यकार संसद ' कायम किया, जहां कोई साहित्यिक-कवि या कथाकार फ्री ठहर सकता था। इलाहाबाद में ही मैंने सन् ३० के आरंभिक वर्षों में हिन्दी के उच्च कोटि के कुछ पुराने साहित्यकारों के दर्शन किये थे, जिनमें पंडित जगन्नाथदास 'रत्नाकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बाबू मैथिली शरण गुप्त प्रमुख थे।

इन सब सुप्रतिष्ठित सात्यिकारों से हम चारों मित्रों में नरेन्द्र शर्मा ही एक विशिष्ट जागरूक और अध्ययनशील भावुक, मेधावी कवि थे। वे बहुत जल्द नये कवियों की पांत में प्रायः सबसे आगे आ गये। लोकप्रियता में नरेद्र का मुकाबला सिर्फ लोकप्रिय बच्चन से था । नरेन्द्र और बच्चन, विशेषकर बच्चन नये कवियों के लिए टार्च–लाईट की तरह थे। उन्हीं के भाव और शैली को पकड़ कर नई पीढ़ी आगे आ रही थी। लेकिन नरेन्द्र शर्मा ने अपनी शैली को बच्चन की शैली से अलग बनाकर प्रस्तुत किया। बच्चन अपनी कविताएँ तरन्नुम से पढ़ते थे; गुनगुनाते हुए से और काफ़ी ऊर्जा और शक्ति उनके काव्य–पाठ में रहती थी । वो ज़माना लयदारी से कविता सुनाने का था। हमारी पीढ़ी में केवल पद्मकांत मालवीय ही एक युवा कवि थे, जो कविता पाठ में लयदारी ही नहीं, बल्कि संगीत की दृष्टि से सुर–ताल मिलाकर कविता पढ़ते थे। उस समय लोकप्रिय कवियों में उनका नाम भी ले लिया जाता था। इन्हीं के साथ बालकृष्ण राव भी आते हैं, मगर संगीत के ताल–सुर के साथ नहीं। नरेन्द्र ने एक नया मोड़ ले लिया था, जिसमें सामाजिक पृष्ठ–भूमि को लेकर सामाजिक भावनाओं वाली रचनाएँ उन्होंने लिखीं। वे कविताएँ आज भी दिलचस्पी से पढ़ी जायेंगी। अधिकांशत, "लाल निशान" नामक संग्रह में ऐसी बहुत-सी कविताएँ संकलित हूई हैं। "शूल–फूल" और "कर्ण फूल" ये दोनों संग्रह होस्टेल में रहने के जमाने में ही छप गये थे।

मैंने यह बात बार-बार महसूस की कि हिन्दी के सुधी पाठकों ने पंडित नरेन्द्र शर्मा के गद्य को अभी तक नहीं पहचाना। वो गद्य इतना सरस मुहावरेदार और जीवंत है कि अन्यत्र कम ही मिलेगा। शैली और शैली का तेवर इतना प्रभावकारी होता है कि लेखक का मंतव्य, भावना आदि सीधे पाठक की चेतना में उतरते जाते है। उनकी शैली में एक कोमलता और सरसता बराबर मिलती

है। यहां मुझे एक बात याद आ जाती है कि नरेंद्र ब्रज क्षेत्र के खड़ी बोली के कवि थे। ब्रज की मिठास और कोमलता सहज ही उसका गुण नजर आती है।

नरेंद्र को छोटे बच्चों से बहुत लगाव था। जब कभीआते तो मकान के आस पास के बच्चे उन्हें घेर लेते। मै उन्हें एक खिलंदरा जादूगर कहूँगा। बच्चों के साथ खेलना सबको नहीं आता। नरेंद्र के अंदर एक बच्चे की आत्मा निवास करती थी। महाभारत के खास- खास हिस्सों का बच्चों और युवक -युवतियों के लिए संक्षिप्त अनुवाद या अपने शब्दों में रुपांतरण कर देते तो उन पर बड़ा एहसान होता।

नरेंद्र से किनती यादें जुड़ी हैं। कहाॅ तक बताऊं और क्यों ? पर इलाहाबाद का वो वाक्या मुझे कभी नहीं भूलता, जिसके बयान के साथ मैं अपनी बात पूरी करुँगा।

शायद सन् '४०-'४१ की बात है। एक अच्छी बिकने वाली साप्ताहिक पत्रिका के संपादक सुबह के वक्त नरेंद्र से मिलने चले आये थे। बात करते-करते नरेंद्रजी ने उठते हुएं कहा "अमुकजी मैं अभी एक मिनट में आया, आप बैठिए।" अमुकजी कसमसाते हुए बोले, "अच्छा।" फिर एक दो मिनट रुक कर पुकार कर कहा, "नरेंद्रजी मैं चलता हूं, कुछ बहुत जरूरी काम याद आ गया। " गुसलखाने से ही नरेंद्र ने कहा,"मैं आ रहा हूं, आप अभी न जाएं। अगले मिनट नरेंद्र सामने थे। यकायक उन्होंने संपादक महोदय के चारों ओर घूमकर ठीक वहीं हाथ रखा, जहां वे जाँघ के अंदर कोई बड़ी - सी चीज दबाए हुए थे। नरेंद्र ने हंसते हुए कहा,"पंडितजी हम गरीब आदमी हैं, कहां खरीदेंगे इस किताब को दोबारा।" कहकर वह बड़ी-सी चीज डिक्शनरी जाँघ से निकालकर मेज पर रख दी। कहा, "हम पर कृपा रखिए। कोई और सेवा हो तो हाजिर हूं।" संपादक महोदय अब तक पानी-पानी हो गये थे। पर अपनी झेंप मिटाने के लिए नरेंद्र की हंसी में शामिल हो गए। मेरी यादों के नरेंद्र सदा अमर रहेंगे।

नरत्व के उन्नायक नरेंद्रजी

● शिवमंगल सिंह 'सुमन'

नरेन्द्र से मेरा परिचय आज से लगभग ५१–५२ वर्ष पूर्व इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एक कविगोष्ठी में सन् १९३८ में हुआ था। जैसा उनका सालोना, सुकुमार, सौम्य स्वरूप था, वैसी ही उनकी रचना भी मधुर और मर्मस्पर्शी थीं। विश्वविद्यालय के युवक-युवतियां उनके गीतों को ऐसे गुनगुनाते फिरते थे, जैसे किसी मधुवन में मदमस्त भौंरों की गुंजन डाल-डाल और पात–पात में मुखरित हो उठी हो ! उनके लोकप्रिय गीत "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे" की प्रतिध्वनि तो सभाओं, छात्रावासों और कॉफी हाउसों में आये दिन सुनी जा सकती थी। उस संगोष्ठी में नरेन्द्र जी कुछ ऐसे छा गये थे कि छायावादी नवोन्मेष के विदग्ध कवि डॉ. रामकुमार वर्मा और मधुशाला के मदमस्त गायक बच्चनजी भी कुछ क्षणों के लिए हफ़्त दिखाई पड़े थे। मेरे जैसे नौसिखिए की तो औकात ही क्या थी ? संगोष्ठी की समाप्ति पर तत्कालीन काव्यमर्मज्ञ डॉ. अमरनाथ झा ने अपनी माला नरेन्द्रजी को पहनाकर बड़े ममत्व से उन्हें झंझोर लिया था।

उस समय का प्रयाग का वातावरण ही कुछ और था। एक ओर तो परम सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत की लाक्षणिक प्रकृति प्रेरक रचनाओं का सम्मोहन था, तो दूसरी ओर महादेवी कीं वेदना–व्यंजक रचनाओं का स्पंदन। निराला का बहुआयामी व्यक्तित्व अभी कलकत्ता और लखनऊ के परिवेश को ही चमत्कृत कर रहा था, यद्यपि काशी और प्रयाग में भी उसकी विद्युत तरंगें चकाचौंध की छटा यदा–कदा बिखेर जाती थीं। प्रयाग में तो बच्चन जी की मधुशाला की मादकता, नरेन्द्रजी के "प्रवासी के गीतों" की भावोच्छलता और भगवंती बाबू की "चित्रलेखा" के उफनते यौवन के ज्वार की अलमस्ती छाई हुई थी। परिमल की भारवाही कलियों की प्रस्फुटन अभी प्रतीक्षित थी। नरेन्द्र की पंतजी से अधिक घनिष्ठता थी। दोनों के बीच भावना की सुकुमारता का साम्य ही संभवतः पारस्परिक सम्मोहन का आधार रहा होगा।

नरेन्द्र से मेरी घनिष्ठता उनके काशी प्रवास के दौरान ही सिद्ध हो सकी, जब वे वहां काशी विद्यापीठ के अध्यापक हो कर आये थे। उन्हीं दिनों प्रेमचंदजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपतरायने सरस्वती प्रेस में मुक्तिबोध और शमशेर को भी ला जुटाया था। मैं उन दिनों

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी उत्तरार्ध का छात्र था। मैं प्राय: अपने परमप्रिय सुहृद्य रुस्तम सेटिन के रामपुरा स्थित निवास में आया-जाया करता था। संयोग से नरेन्द्रजी भी वहीं आकर ठहर गये। रुस्तम सेटिन भी काशी विद्यापीठ में अध्ययन करते थे और अपनी साम्यवादी आस्थाओं के लिए विशेष प्रसिद्ध थे। यद्यपि इसके पूर्व नरेन्द्रजी से इलाहाबाद में मैं मिल चुका था, पर वह भेंट केवल सलाम-दुआ तक ही सीमित रह गई थी। जिस दिन न मिल पाते उस दिन कुछ खाली-खाली लगता। द्वितीय महायुद्ध छिड़ने पर लगभग दो वर्षों तक वे देवली कैंप जेल में नजरबंद रहे। वहीं उन्होंने "आओ हथकड़ियां तड़का दूं" तथा "लाल रंग है ढाल साथियों दुनिया के मज़लूमों की" जैसी सशक्त रचनाएं लिखीं। प्रयाग में पहली मुलाकात के समय तो वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान कार्यालय 'स्वराज भवन' में कार्य करते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी एम्.ए. भी कर रहे थे। आजादी के बाद वे 'आकाशवाणी' से जुड़े और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा उत्सर्गशील कवि पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के वात्सल्यभाजन भी बने। आकाशवाणी के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल श्री जगदीशचंद्र माथुर तो विद्यार्थी काल से ही उनके मुरीद बन चुके थे।

इसी बीच सुना कि किसी जन्मान्तर पुण्य के फलस्वरूप गुर्ज प्रदेश की कोई मनोरम सुंदर जीवनसंगिनी के रूप में उन्हें सुलभ हो गई। तिथि तो ठीक से याद नहीं है, पर दिल्ली में अशोक जी के एक आत्मीय भोज में जब पहले-पहले उन्हें देखा, तो ऐसा लगा कि जैसे नरेन्द्रजी के काव्य का लालित्य ही सुशीला भाभी के रूप में साकार हो उठा है। फिर वे जब से आकाशवाणी में 'विविध भारती" की प्रतिष्ठान के लिए बंबई में ही बस गये; तो ५९४ नंबर, १९ वाँ रास्ता खार, हम लोगों के लिए तीर्थस्थान बन गया। इस आश्रमनुमा बंगले के विकास का इतिहास भी निष्पृह नरेन्द्रजी के अप्रतिहत संघर्ष और आस्थावान सुशीला भाभी के अप्रतिहत धैर्य का ज्वलंत अख्यान कहा जा सकता है।

दैवयोग से १ जनवरी १९८२ को मुझे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष के रूप में लखनऊ जाना पड़ा। सौभाग्यसे महादेवी जी को "भारत-भारती" पुरस्कार के साथ नरेन्द्रजी को भी संस्थान का कविवर पुरस्कार प्रदान करने का सुयोग घटित हो गया, जो बुधवार को १८ मई १९८३ को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा

गांधी के हाथों दिया जाने वाला था। कुछ अनिवार्य कारणों से वे महोत्सव में नहीं पहुंच पाये और मुझे उपाधि, ताम्रपत्र उत्तरीय आदि ड़ाक द्वारा भिजवानी पड़ी। पर कई महीनों बाद जब गुरुवार १५ सितंबर १९८३ को मैं उनकी अनुपस्थिति से खलने वाले अभाव, विशेषकर महादेवीजी के भी चिंतित होने की कथा सुनाने उनके निवास स्थान पर पहुंचा, तो बड़े निर्विकार भाव से अपने महत्व को नकारने के बाद, प्रसंग बदलकर मेरे बच्चों की कुशल–क्षेम पूछने लगे। उनके उस तपः पूत वैष्णव स्वरूप को देखकर मैं उन्हें मंत्रमुग्ध-सा निहारता रह गया।

इसके लगभग तीन वर्ष बाद १५,१६,१७ अगस्त १९८६ को भारत-भवन भोपाल में आयोजित "राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जन्मशती समारोह" में उनके साथ पुरानी स्मृतियां दुहराने का अलभ्य सुयोग सुलभ हो गया। तीन दिन कैसे बीते, पता ही न चला। प्रयाग, काशी और दिल्ली की अनगिनित कहानियां समाप्त होने ही नहीं आतीं थीं, जिन्हें हम रोज रात को भोजन के बाद शुरू करते और आधी रात के बाद अधूरी छोड़कर ही सो जाते। उद्घाटन के पश्चात संस्मरण गोष्ठी में अपने प्रति गुप्तजी के ममत्व के प्रसंग सुनाते-सुनाते वे भावविभोर हो उठे थे। उनसे मेरा अंतिम मिलन २-३ दिसंबर १९८७ को हुआ था, जब वे आकाशवाणी द्वारा आयोजित "अखिल भारतीय राजेन्द्र प्रसाद व्याख्यानमाला" के प्रमुख वक्ता के रूप में इंदौर आये थे। अनवरत दो दिनों तक दो-दो घंटे गंगा की निर्मलधारा के समान "सांस्कृतिक संक्रांति और संभावना" पर उनका व्याख्यापरक उद्बोधन स्वयं में ही एक उपलब्धि थी। अध्यक्ष के रूप में अंतिम दिन उसके समाहार स्वरूप उस मनीषा के प्रति अपनी प्रशस्ति अर्पित कर मैं भी कृत-कृत्य हो गया था। चलते समय उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और पीठ थपथपाते रहे। तब मैं नहीं जान पाया था कि यह उनके वरदहस्त ऊष्मा का अंतिम स्पर्श है।

विगत वर्ष जब "महाभारत" का सीरियल प्रारंभ हुआ, तो पटकथा लेखक और गीत रचनाकार के रूप में उनका नाम देखकर मैं पुलकित हो उठा था। वे शब्दब्रह्म के साधक और संवेदन तत्व के अनन्य पारखी थे। आज भी "महाभारत" के मंगलाचरण को मंत्र की गरिमा प्रदान करनेवाला शब्द "दिग्घोषित हुआ..." का उद्घोष दिगदिगंत को प्रतिध्वनित करता और शब्दों को सार्थक करता प्रतीत होता है। उनके दोहों की अर्थगर्भिता और मार्मिकता अब तो कहानी

बनकर रह गई है। इस कथा में कृष्ण के जन्म से लेकर गोपियों के साथ रास संपन्न करने तक की लीलाओं का समावेश संभवत: उन्हीं की देन थी। श्रीमद्भागवत् की परमविरहासक्ति उनके रोम-रोम में रम गई थी।

अचानक एक दिन सुना कि वे बिना कुछ कहे-सुने ही हमें बिलखता छोड़कर चले गये। आज भी 'महाभारत' के निर्माता–निर्देशक परम सहृदय श्री बी.आर. चोपड़ा उनका नाम लेते ही करुणा-कातर हो उठते हैं। पिछली बंबई यात्रा में भावविह्वल स्वरों में उन्होंने बताया था कि "मैं तो उन्हें अपना भगवान मानता था। उनके महाप्रयाण के साथ इस सीरियल की मूल आत्मा ही जैसे चली गई।" श्री चोपड़ा इसकी अभूतपूर्व सफलता का श्रेय उन्हीं की तप:पूर्ण मंगलकामना को मानते हैं। काश वे अपने जीवन के ज्योतिकलश की परिपूर्णता इस रूप में देख सकते! निश्चय ही इसे उनकी पूजा की पूर्णाहुति कहा जा सकता है।

अकस्मात ही उनकी बड़ी पुत्री वासवी का पत्र मिला कि वह उनकी पावन स्मृति में संस्मरणों की एक पुस्तक प्रकाशित कराना चाहती है। व्यस्तता के कारण मैंने लिख दिया कि उनके अभिनंदन ग्रंथ 'ज्योतिकलश' से मेरा संस्मरण ले ले। पर वह अपने जीवनदाता के चरणों में बासी भोग नहीं चढ़ाना चाहती। उसने पुन: दूसरे पत्र में अपने आग्रह को दुहराया, जिसके सीधे-सादे शब्दों में बड़ी मार्मिकता थी। "पिताजी चले गए, उनकी पावन स्मृति में हम और अधिक कर ही क्या सकते हैं? इसे ही उनका श्राद्ध समझ लीजिए।" बरबस इसी बहाने उनकी वर्षा पर मैं भी अपनी अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि अर्पित कर अपनी अकिंचनता में धन्यता का अनुभव कर रहा हूं।

यादें नरेंद्र शर्मा की

● श्रीनाथ द्विवेदी

"एक प्रतिभा थी अचानक खो गई ।
भूमि से अनजान सहसा सो गई ।"

आज केवल स्मृतियां भर शेष हैं, जो मन में टीस रही हैं । वह ऐसी प्रतिभा थी, जिसके खोने का अभी भी विश्वास नहीं है । ऐसा नहीं होना चाहिये था । विश्वास और अविश्वास के बीच का वह क्षण मेरी पकड़ में नहीं आया । यह दर्द छिपाया तो जा सकता है, नक़ारा नहीं जा सकता ।

याद आता है वह काल–खंड जब महीने में तीन-चार बार काव्य–तीर्थ की यात्रा करने जाता था । घंटों बैठा रहता । वह मुखर-वेला कैसे बीत जाती, पता तक न चलता । बातें होतीं, कवि की, कविता की, देशकाल की, समाज की, राजनीति की, साहित्य की । यदि उन खोई हुई यादों को एक सूत्र में पिरोया जाय तो, मेरा विश्वास है वह रोचक तो होगा ही, उपयोगी भी होगा । यदि कभी संभव हुआ और उन स्मृति-पुष्पों की महक पहचान सका, तो प्रयास करने का दुस्साहस कर सकता हूं ।

किंतु जो कहना चाहता हूं, वह मेरी ऐसी चूक है, जो चैन नहीं लेने देती । साहित्यकारों की एक बैठक थी। अकस्मात किसी ने कहा "नरेन्द्र शर्मा का स्वर्गवास हो गया ।" मुझे बहुत बुरा लगा । मैंने तीखी आवाज़ में पूछा –"यह शब्द किस मुंह से बाहर आया है, मैं उस महाभाग से मिलना चाहता हूं ।" किसी ने कहा –"उड़ती हुई खबर मिली है । ईश्वर करे यह खबर झूठी हो ।" थोड़ी देर तक कुनमुनाहट हुई फिर सब शांत हो गया । मुझे किसी भी तरह विश्वास न हो सका । वह एक क्षण था, जिसका महत्व मेरी समझ में नहीं आ सका । अब सोचता हूं जीवन भले क्षणिक हो, क्षण क्षणिक नहीं होता । उस रात नींद नहीं आई । मन में न जाने कितनी शुभ–अशुभ कल्पना होती रही । सुबह जब अखबार देखा तब काठ हो गया । मन अपने क्षणिक अविश्वास को कोसने लगा, जो मुझे कभी क्षमा नहीं कर सकता । यदि अविश्वास न किया होता, तो अंतिम दर्शन हो गया होता ।

चार–पांच दिनों बाद आया । आयुर्वेदाचार्य सुरेशचंद्र चतुर्वेदी भी साथ थे । वहां पहुंचने पर मकान ही नहीं पहचान सका । सब कुछ बदल गया था । पहले का देखा हुआ कुछ भी नहीं था । प्रवेश द्वार के मेहराब पर सुशोभित बटरकप्स और वसंत मालती का महामिलन, फूलों से लदा हुआ पारिजात, चमेली का झुबड़, बंगले तक पहुंचने वाले मार्ग के दोनों किनारे लगे हुए फूलों के गोटे, मुख्य द्वार के दोनों ओर गुड़हल की हरियाली, जिसे रक्तवर्णी फूल अनुपम सौंदर्य प्रदान करते थे, कुछ भी नहीं था । चारों ओर केवल मौन पसरा था। मन में आया कि सौंदर्य के कवि ने बंगले के पीछे अमरूद का वृक्ष भी सींचा था, जिसका कच्चा फल शहद की भांति मधुर था। सोचा, उसे ही देख आऊं, लेकिन जब सामने की सारी शृंगार-माला टूट गयी है, तब वह भी न होगा ।

सब लोग मौन थे । केवल मेरा मन जीवन-मूल्योंका गणित कर रहा था । याद आई कवि की साहित्यिक यात्रा की, जब हिन्दी साहित्य या जगत इस द्रष्टा कवि की प्रतिभा के आलोक से चौंधियाया हुआ था । अब हो सकता है काव्य के इस हस्ताक्षर को समझने का प्रयास करे । यदि ऐसा हुआ तो नई पीढ़ी का मार्गदर्शन हो सकेगा जबकि यह दुरूह भी लगता है । यद्यपि श्रद्धा, विश्वास, अपनत्व और स्वाभिमान के आधार पर इस सारस्वत–मनीषी को समझने का प्रयास किया जा सकता है, फिर भी कर्तव्य, व्यवहार, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का पुनीत संगम अवगाहने के समय डूब जाने का खतरा भी दिखलाई देगा । लोग अपूर्ण में पूर्णता की कल्पना भले कर लें पर कवि की जीवनधारा अनेक रूपों में प्रवाहित होने के कारण दुरूह बनी रहेगी । शायद उन्हें कोई भी नहीं समझ पाया । चाहे परिवार के सदस्य हों या चाहे और कोई । सब के साथ एक दूरी बनाये रखना उनका सहज स्वभाव था । पान की लाली से अनुरंजित पतले होठों की मुस्कान रहस्यमयी लगती ।

मैं बैठा था । किसी का फ़ोन आया । कवि हँस–हँस कर बातें कर रहे थे । उसी समय उनकी धर्मपत्नी दरवाजे पर खड़ी होकर मुस्कराने लगीं । उन्होंने जैसे ही फ़ोन रखा, पूछ बैठीं, "किसका फ़ोन था?" शर्मा जी ने उसी लहजे में कहा "बहुत चौकसी रखती हो सुशीला ।" समवेत हँसी से वातावरण गूँज उठा ।

थोड़ी देर बाद कहने लगे "सुशीला ने कई बहुत अच्छी कहानियाँ

लिखी हैं । वैसे चित्रकार हैं । फिर भी कहानियाँ बहुत प्रेरक हैं। मन में आये तो मांगकर पढ़ लेना । मैं चाहता तो अपने प्रकाशक से छपवा देता । पत्रिकाओं में भी छप जातीं। मैं चाह नहीं सका। विकास अपने-आप होता है । समाधि-सिद्ध साधना से प्रतिभा तराशी जाय तो चाहे विकास देर से क्यों न हो, स्थायी होती है, साथ ही आगे का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। एक बार बैसाखी लगी तो जल्दी नहीं छूटती । एक बात और लोग सोचेंगे, मैंने अपने प्रभाव का प्रयोग किया।''

प्रतिभासम्पन्न, तेजस्वी व्यक्ति शत्रुओं से घिरा रहता है । नरेन्द्र शर्मा के हितचिंतक मित्र तो अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं केवल शत्रुओं की गणना नहीं की जा सकती । 'भारत-भारती परिषद' के सभी सदस्य ''नरेन्द्र शर्मा अभिनंदन ग्रंथ'' के प्रकाशन में लगे थे । बंबई के हिन्दी जगत में हमने हवा भी बांध रखी थी । एक दिन एक आदमी ने (नाम लेना नहीं चाहता) दो-चार भद्दी गालियां उछाल कर कहा - ''तुम लोग नासमझ हो, वह किसी के काम नहीं आया है ।'' रास्ते में यदि बोलता तो तमाशा खड़ा हो जाता, सो चुप रह गया । जब यह चर्चा मैंने की तब उन्होंने कहा ''यदि इससे उसे सुख मिला, तो यह प्रसन्नता की बात है। आप किसका-किसका मुंह बंद करेंगे? हमें अपने काम से मतलब होना चाहिए ।''

निन्दा-स्तुति से ऊपर उठे उस योगी पुरुष की बातों को मैं सोचता रहा । क्या सोचना रहा मुझे भी मालूम नहीं ।

कहीं पढ़ने को मिला था, शृंगारिक कवि अन्ततः दार्शनिक हो जाता है । पर शर्मा जी की दार्शनिकता भी क्रांतिकारी है । वे समाज की रूढ़ियों में क्रांति चाहते थे । जीवन को सुगम मार्ग दिखलाने के पक्षधर थे । उन्हें तोड़फोड़ में विश्वास नहीं था । कहने लगे, ''वर्तमान राजनीति मन को झकझोरती रहती है । मुझे शिखर के नेताओं को निकट से देखने का सुयोग मिला है । उनका ध्येय महान था । आज़ादी थी और देश का हितचिंतन था । किंतु आज की राजनीति घृणा करने योग्य हो गयी है । अब राजनीति व्यवसाय हो गयी है । नेता देश हित नहीं, स्वार्थहित देखते हैं। सच यह है कि आज की राजनीति स्वेच्छाचारिणी स्त्री के समान है । हमें तटस्थ भाव से सोचना चाहिये । सच्चाई व्यक्त करने

से हिचकना नहीं चाहिये, नहीं तो हमें इतिहास कभी क्षमा नहीं कर सकता ।"

रविवार था । मारवाडी कमर्शियल विद्यालय में "रस सिद्धांत" पर परिचर्चा थी । वहां के प्राचार्य श्री अक्षयवर मिश्र ने आयोजन किया था। श्री माधवाचार्य और पूना विश्वविद्यालय के डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित प्रवक्ता थे और शर्माजी अध्यक्ष थे । कार्यक्रम समाप्त हुआ हम बाहर आये । शर्माजी अपनी चप्पल तलाश कर रहे थे । वह गायब हो चुकी थी । बाजार बंद था । कविवर नंगे पांव चल पड़े । मैं उनके कोमल तलवों के लिए पछता रहा था । उन्होंने कहा "जिसे जरूरत थी वह ले गया । मैं दूसरी खरीद लूंगा ।" मैंने आग्रह किया "चलिए दादर से खरीद दूं" उन्होंने स्वीकार नहीं किया । कहने लगे - "आजादी के आन्दोलन में जेल गया था । नंगे पांव चलने का अनुभव मिल चुका है । चलिये सब ठीक है।"

कितनी स्मृतियां दुहराऊं ? एक दिन कहने लगे - " मुझे लगता है मेरा उद्देश्य पूरा हो गया। मैंने एक कविता लिखी है, मां फिर मुझे जनो ।" आगे की पंक्तियां याद नहीं आ रही हैं । मैं सोचने लगा इस द्रष्टा कवि के मन में यह भाव क्यों पैदा हुआ ? न तो उनका उद्देश्य पूरा हुआ था, न गृहस्थ जीवन का महत्वपूर्ण दायित्व ही पूरा हुआ है । आज लगता है कि इस मनीषी कवि ने जीवन की एक सीमा रेखा खींच दी थी ।

उन दिनों कविवर 'भरत' पर काव्य लिख रहे थे और मैं लोकमान्य तिलक के संबंध में 'अग्निपुत्र' नाम से काव्य लिख रहा था । मेरा लेखन पूर्णता के निकट था । मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आगे क्या होना चाहिए । उन्होंने समझाया और उसी रात काव्य समाप्त हो गया । मैंने कहा "आपने बहुत दुरूह, विषय उठाया है । मांडवी की अंतर्वेदना को कोई भी कवि छूने का साहस नहीं कर सका है । काव्य पूरा भी नहीं हुआ और आप उद्देश्य की समाप्ति सोचने लगे ।"

उन्होंने मोहनी मुस्कान के साथ कहा, "अछूता विषय था, इसीलिए वह कथानक चुना है । धीरे-धीरे पूरा हो जायेगा । न हुआ तो अधूरा रहेगा । कुछ तो रह ही जाता है । मनुष्य भी तो अपूर्ण

ही होता है ।" मैं उनको ताकता रह गया था।

महान व्यक्ति आत्मचिंतन की प्रक्रिया में अपने परिवेश से जो भाव, द्रव्य और शक्ति ग्रहण करता है, उसे वैचारिक कसौटी पर परखता है, उसके ग्राह्य तत्व को पचाता है, उसे नये गुणों से सजाता है, तब अभिव्यक्ति को आकार देकर समाज को बांट देता है । फिर उसका अपना क्या रह जाता है ? उसका साधारणीकरण हो जाता है । उसके स्नेह की धारा में त्याग होता है मोह नहीं, स्वार्थ नहीं नरेन्द्रजी की यही दर्शनिक चेतना है । वे सबके थे, अन्यथा-

"सिद्धांजन आंजे देख रहा हूं मैं मिट्टी का अंतराल" न देख पाते और न तो "नादान विश्व नासमझ हृदय" को पहचान पाते !

एक दिन मुझे समझाते हुए कहने लगे - "जीवन का अर्थ मात्र वैराग्य, उपेक्षा या पलायन नहीं होता, वह सजगता, सार्थकता, सतर्कता और दायित्व के स्वीकार में निहित है। आंखें खुली रहने में ही उसका महत्व है । तब वह गतिशील होता है । व्यक्ति की उमंगें उसके स्वभाव की जानकारी देती हैं । पूरी जानकारी के लिए सामान्य के साथ विशेष की भी जानकारी आवश्यक होती है ।"

मानव मनोविज्ञान की इस गहराई को मैं समझ न सका । मैं तो उतरांचल रामपुर की मिठाई खा रहा था । मेरी ओर गौर से देखते हुए कहने लगे - "सब न खाना, नुकसान करेगी !" फिर भी मैं खा गया । एक पाव का टुकड़ा अवश्य रहा होगा ।

"बहुत रात गये," की दो पंक्तियों ने मुझे सोचने के लिए विवश किया, "अभ्रकश शिखरों पर मेरा मनोनयन विचरे,
अवगाहन कर नभगंगा का, मुग्ध दृष्टि निखरे ।"
प्रेम और सौंदर्य के महान कवि को हो क्या गया है ? जो गाता है --

"सांझ होते ही न जाने छा गयी कैसी उदासी,
क्या किसी की याद आयी रे विरह-व्याकुल प्रवासी ।"

यादें जिद कर रही हैं । मुझे अपनी पंक्तियाँ याद आ रही हैं :

"याद जिद्दी है, नहीं हटती,
हृदय की कुंज गलियों में,
लगाती रात दिन फेरे,
हठीली राधिका सी ।"

ॐ शांति :

नरेंद्र का सान्निध्य : पूर्व दीप्ति और प्रतिच्छवि

● वीरेंद्र मिश्र

बहुमुखी प्रतिभा के धनी और बहुआयामी सर्जना के रचनाकार पंडित नरेन्द्र शर्मा से मेरा परिचय शनैः शनैः ही आगे बढ़ा।

स्वाधीनता के पश्चात्, सन् १९५० के आसपास आकाशवाणी से मेरे काव्यपाठ का सिलसिला शुरू हुआ था। तब मेरा गृहनगर ग्वालियर भी आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र के अंतर्गत ही समाविष्ट था।

उधर पंडितजी दस वर्ष बंबई के फिल्म क्षेत्र में रहकर सन् १९५३ में आकाशवाणी से सम्बद्ध होकर प्रोड्यूसर के रूप में बंबई से दिल्ली आ गये थे। आकाशवाणी दिल्ली के काव्यपाठ कार्यक्रमों में तथा दिल्ली और समीपवर्ती क्षेत्रों के कवि-सम्मेलनों में उन दिनों मेरा आवागमन काफी होने लगा था – विशेष रूप से सन् १९५५ से।

उन दिनों आकाशवाणी द्वारा हिन्दी साहित्य के धुरंधरों को बड़े पदों पर लाकर अधिक सुरुचिपूर्ण, लोकप्रिय और सार्थक कार्यक्रमों का निर्माण करना सुनिश्चित-सी नीति बन चुकी थी। जनभाषा हिन्दी के कवि-लेखकों को समुचित सम्मान देने और उनकी प्रतिभा का लाभ उठाने की वह नीति तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ. बालकृष्ण केसकर तथा हिन्दी के प्रख्यात नाटककार और आकाशवाणी के नये महानिदेशक श्री जगदीश चंद्र माथुर के संयुक्त चिंतन से निर्मित हुई थी। इसके बहुत सुखद परिणाम भी तुरंत सामने आए। आकाशवाणी में पदार्पण के पश्चात् जिन प्रमुख हिन्दी-लेखकों ने उन दिनों आकाशवाणी के स्तर को ऊंचा उठाने में विशेष सहयोग दिया, उनमें श्री भगवतीचरण वर्मा और उदय शंकर भट्ट तो थे ही, पंडित नरेन्द्र शर्मा भी महत्वपूर्ण थे।

जैसा कि मैंने ऊपर संकेत किया, सन् १९५५ के वर्ष में कई बार दिल्ली तथा आकाशवाणी के कार्यक्रमों के कारण मुझे आकाशवाणी स्थित हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध कवि-लेखकों के सान्निध्य के विशेष अवसर मिले। तभी मुझे पंडित नरेन्द्र शर्मा के भी दर्शन हुए।

यद्यपि प्रारंभ में उनसे मेरी विशेष निकटता नहीं हो पाई, लेकिन आकाशवाणी के तत्कालीन सुगम संगीत विभाग को जिस प्रकार उन्होंने कलात्मक रूप देकर लोकप्रिय बनाना शुरू किया था, वह अपने में एक विशिष्ट उपलब्धि थी। मैं उस स्थिति से बहुत प्रभावित हुआ था। स्वयं नरेन्द्रजी के कई गेय साहित्यिक गीत "प्रसारगीत" स्तंभ के अंतर्गत लोकप्रिय हुए। मुझ जैसे नये कवि के लिए तो वह विशेष आकर्षण की बात थी।

इसके बाद यदा-कदा नरेन्द्रजी से भेंट भी होती रही। कवि-सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में हम लोग मिलते रहे। एक लेखनी-जीवी कवि और जीवन शैली के रूप में उनका स्नेह और आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ।

लेकिन पंडितजी से विशेष सामीप्य का अवसर तब मिला, जब सन् १९५७ में उनके नेतृत्व में भारत सरकार द्वारा भेजे गए एक सांस्कृतिक सद्भावना मिशन के अंतर्गत अन्य कुछ कवि-कलाकारों के साथ मुझे भी आमंत्रित किया गया। हम सब लोग अलग-अलग स्थानों से चलकर पटना में एकत्र हुए और वहीं से विमान द्वारा कांठमांडू पहुंचे। पंडितजी सन् १९५५ में आकाशवाणी बंबई केन्द्र में प्रोड्यूसर के रूप में कार्यरत रहने के पश्चात इसी वर्ष वहां 'विविध भारती' के मुख्य निदेशक के रूप में नियुक्त हुए थे।

काठमांडू में भारतीय दूतावास की ओर से लगभग एक सप्ताह तक रोज शाम को साहित्यिक-सांस्कृतिक गोष्ठी और समारोह संपन्न हुए। उन दिनों दूतावास में श्री भगवान सहाय राजदूत के पद पर थे और डॉक्टर शिवमंगल सिंह "सुमन" सांस्कृतिक सचिव।

एक ही होटल में ठहरने, दिन-दिन भर साथ रहने और सांध्य गोष्ठियों में सम्मिलित होने के कारण हम सभी लोग एक दूसरे के काफी निकट हो चले थे। तभी मैंने पाया कि पंडितजी केवल कवि ही नहीं हैं, और भी बहुत कुछ हैं। वहां उनके मनुष्य के दर्शन हुए। स्नेह के साथ मनोविनोद, काव्य चर्चा के साथ संस्कृति प्रेम और राष्ट्रीयता के साथ विश्वबंधुत्व का विलक्षण संयोग प्रथम बार मैंने उनमें पाया।

भौगोलिक और प्राकृतिक दृष्टि से हिमालय-दर्शन से प्रमुदित-प्रेरित होने के साथ-साथ एक और हिमालय अपनी उदात्तता से मुझे प्रेरित कर रहा था, जिसके शुभ्र सांस्कृतिक शिखरज्ञान ने मुझे नई दिशा दी। जैसे पुण्य सलिला भागीरथी के उद्गम पर पहुंच कर और शुद्ध जल में स्नान करके तृप्ति मिलती है, लगभग वही स्थिति मैं अनुभव कर रहा था। यह हिमालय और यह गंगा-प्रवाह नरेन्द्रजी ही थे।

उसके बाद तो पंडित जी से मेरी भेंट बराबर होती रही! आकाशवाणी में हिंदी साहित्यकारों को आमंत्रित करने की नीति के अंतर्गत जब मुझे भी सन् १९६० में महानिदेशक श्री जगदीशचंद्र माथुर का आमंत्रण मिला तो बधाई देने वालों में सर्वप्रथम पंडितजी ही थे और जब मैंने बाद में सन् १९६४ में स्वेच्छापूर्वक आकाशवाणी से पदत्याग किया तब सर्वाधिक चिन्तित भी वही थे।

एक बार मैंने उन्हें अपना प्रथम गीत संग्रह ''गीतम्' भेंट किया। उन्होंने शुरू के पृष्ठ पलटे और हंस पड़े। कुछ पूछूं कि बोल पड़े- ''डॉ. अमरनाथ झा की भूमिका है।'' मैंने कहा, ''जी हां''। वह बोले, ''मेरे प्रथम संग्रह ''शूल-फूल' की भूमिका भी उन्होंने लिखी थी।'' यह मेरे लिए विलक्षण सूचना थी।

उन दिनों कभी-कभी मैं पंडितजी के बारे में जानकर आश्चर्य-चकित हो जाता था। उनसे मेरी पारस्परिकता और आत्मीयता के स्पष्ट कारण थे। कलमजीवी होने से लेकर साहित्य और कला की जिन विविध विधाओं में वह प्रविष्ट हुए योगायोग की बात कि लगभग उन्हीं विधाओं में मेरा भी प्रवेश होता गया। विधा-वैविध्य का यह आश्चर्यजनक साम्य है, तुलना नहीं। मेरी और उनकी प्रकृति तथा रुचियों की चर्चा प्रायः ही हुआ करती थी।

कवि-सम्मेलन मंच पर एक जमाने में वे छाए रहे और अपनी कंठमाधुरी तथा काव्यसौंदर्य से सबको प्रभावित करते रहे। वैसा ही उनका लोकप्रिय व्यक्तित्व रहा। फिर फिल्म, आकाशवाणी और दूरदर्शन पर वह अपनी छाप छोड़ते रहे।

मैं भी इन्हीं सब दिशाओं में अग्रसर हुआ। लेकिन मैं उनके बाद की पीढ़ी का रचनाकार था। उनके और मेरे समय-संदर्भों में

जमीन-आसमान का अंतर था। उनके जीवन-संघर्ष की स्थितियां अलग थीं, मेरी अलग। अत: कुछ आश्चर्यजनक साम्य के बावजूद उपलब्धियों और निष्कर्षों में समानता जरूरी भी नहीं है। तुलना का तो प्रश्न ही नहीं।

पंडितजी का जीवन बंबई से काफी संबद्ध रहा। सन् १९४३ में यहां फिल्मों में गीतलेखन के लिए आने के पश्चात् यद्यपि बाद में कुछ वर्ष वह दिल्ली में आकाशवाणी से संबद्ध रहे, लेकिन उनकी आकाशवाणी संबद्धता भी प्राय: बंबई से ही विशेष जुड़ी रही, चाहे वह बंबई केंद्र के हिंदी प्रोड्यूसर के रूप में हो, या 'विविध भारती' के मुख्य निदेशक के रूप में।

बंबई के कवि-सम्मेलनों में वैसे तो मेरा संबंध स्वाधीनता के पूर्व से ही प्रारंभ हो गया था, जब सन् १९४६ में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के बंबई अधिवेशन में मैं सम्मिलित हुआ था, लेकिन यहां के कार्यक्रमों में आवागमन धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। बाद में सन् १९७० से फिल्म क्षेत्र में मेरी भी थोड़ी बहुत संबद्धता हो जाने के कारण मुझे यहां टुकड़ों-टुकड़ों में दो वर्ष रहना पड़ा। इसके पश्चात् तो कई कारणों से इस समुद्र-नगरी में एक लहर की तरह मैं समाता गया।

इस समग्र कालखंड में आदरणीय नरेन्द्रजी से मेरा स्थानीय संपर्क बना रहा। बराबर मुझे उनका सान्निध्य-सुख और आशीर्वाद मिलता रहा, जो उनके महानिर्वाण के कुछ दिन पूर्व तक सहज उपलब्ध रहा। यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि उनके अंतिम क्षणों में मैं देश के एक अन्य छोर कलकत्ते में एक कार्यक्रम में फंस गया और उस समय उपस्थित न हो पाया।

पाण्डित्य के धनी, विनम्रता के प्रतीक और स्नेह के निर्झर, पंडित नरेन्द्र शर्मा के बारे में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। लिखा भी गया है। सन् १९७३ में उनकी षष्ठिपूर्ति समारोह में सम्मिलित होकर मुझे भी उनके साहित्यिक अवदान के प्रति अपने 'श्रद्धासुमन' अर्पित करने का अवसर मिला था।

बंबई आने के बाद यहां के कवि सम्मेलनीय कार्यक्रमों की फूहड़ता के विरुद्ध संघर्ष करते हुए जब मैंने एक अलग किस्म के साहित्यिक - सांस्कृतिक मंच (सांध्यमित्रा) की स्थापना की तो उन्होंने इस संकल्प,

साहस और सफलता पर मुझे बधाई दी।

यद्यपि ''सांध्यमित्रा' के केवल दो वार्षिक समारोह ही हो पाए, पर उनके प्रेरणा-प्रभाव से अन्य लेखकों ने भी आगे वैसे ही प्रयास किये, भले ही उनमें मूल्यों के प्रति वैसी मिशनरी समर्पणशीलता न रही हो।

''सांध्यमित्रा'' के उक्त आयोजन के पूर्व नगर के संम्पन्न शैक्षणिक और विश्वविद्यालयीन संस्थानों तक ही साहित्यिक सांस्कृतिक उत्सव सीमित थे , लेकिन ''सांध्यमित्रा'' के रूप में व्यापक जनमानस और समग्र प्रबुद्ध जन के सुखद संयोग की यह एक नई पहल और नई शुरूआत थी। और मुझे गर्व है कि इस सारे प्रयास में पंडित नरेन्द्र ने मुझे हर तरह सहयोग दिया।

इसी प्रकार वार्षिक पत्रिका ''सांध्यमित्रा' के प्रकाशन की दिशा में भी जब मैंने बंबई की व्यावसायिक परिपाटी को तोड़कर शुद्ध कला और साहित्य की गरिमा स्थापित करते हुए पत्रिका के दो वृहद् अंक संपादित-प्रकाशित किये, तब भी पंडित जी का पूर्ण सहयोग बराबर मिला। इस संदर्भ में 'सांध्यमित्रा' के संस्मरण स्तंभ में शमशेर बहादुर सिंह पर लिखित उनका आलेख स्मरणीय है।

श्रेष्ठ और आधुनिक मूल्यों के प्रति मेरी विनम्र आस्थाओं को अग्रसर करने में उन्होंने सदा ही पूर्व सहयोग दिया। इन प्रसंगों में कभी समझौता न करते हुए पत्रकारनुमा तथाकथित् साहित्यकारों की पद-प्रपंच की राजनीति को घास न डालते हुए साधनहीन लेखक वर्ग की ओर से मैंने जो भी संघर्ष किया, उस सबके कारण ही शायद नरेन्द्रजी मेरे अधिक निकट आते गए।

साहित्यिक संदर्भ में अपने प्रारंभिक दिनों में मुझे 'प्रवासी के गीत' तथा 'पलाश वन' की रचनाओं ने बहुत प्रभावित किया था। मैंने उस समय के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कवियों सुमित्रानंदन पंत, हरिवंश राय बच्चन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' और गोपाल सिंह नेपाली की कृतियां भी पढ़ी थीं, या मंच से उनका काव्यपाठ सुना था, लेकिन मैंने अनुभव किया कि उक्त कविवर्ग के अत्यंत निकट होने के बावजूद नरेन्द्र शर्मा का काव्य-व्यक्तित्व उन सबसे एकदम अलग था। न भाषा, न भावपक्ष

और न अभिव्यक्ति में कहीं कोई साम्य था। उनके गीत, उनके थे, जो केवल वही लिख सकते थे। छायावादोत्तर कवियों के अंतर्गत भाषा का नया संस्कार देने वाले कवियों में वह अप्रतिम थे।

काव्य भाषा के संबंध में अक्सर लोगों ने उनकी आलोचना की, यह कि 'प्रवासी के गीत' की सहजता उनकी बाद की कृतियों में नहीं रही और आध्यात्मिक जटिलता वाली भाषा उभरने लगी। लेकिन इस धारणा से मैं कभी सहमत नहीं हुआ। कविवर नरेन्द्र शर्मा की भाषा, रचना की प्रकृति के अनुसार बनती रही, बदलती रही। लेकिन हलके स्तर की गीतभाषा का प्रयोग उन्होंने कभी नहीं किया – न फिल्मी गीतों में, न गैर-फिल्मी गीतों में। साथ ही अपने सुदीर्घ छांदित लेखन में उनकी आस्था दृढ़ रही और भाषा उन पर कभी हावी नहीं हो पाई।

भाषा की जटिलता में यदि नरेन्द्र जी का विश्वास होता, तो जीवन के अंतिम वर्षों में न तो वह सहज साहित्यिक गीत लिखते और न फिल्मी; गैर फिल्मी गीतों के क्षेत्र में ही सफल होते। संगीत का विपुल ज्ञान होने के कारण उनके गीतों में सहजता और अपेक्षित लय बराबर बनी रही – अंत तक बनी रही। लेकिन खंडकाव्यों की प्रकृति अलग होने से उनमें भाषा का अन्य स्वरूप आवश्यक था।

आकाशवाणी के अखिल भारतीय वार्षिक समारोह "सर्व भाषा कवि सभा" में अन्य भाषाओं के हिंदी काव्य रूपांतरों के साथ हिंदी के दो मूल कवि भी प्रतिवर्ष आमंत्रित होते हैं। सन् १९८५ में आदरणीय नरेन्द्रजी के साथ ही मुझे भी वह सम्मान प्राप्त हुआ था। तब भी उनकी कवि-छवि और काव्य गरिमा पूर्ववत् थी।

"जो दुख में न मलीन भई
सुख में नहिं जो कबहुं हर्षाई'

यद्यपि नगर से बाहर रहने के कारण मेरी षष्ठिपूर्ति पर 'विभावरी' द्वारा संपन्न दो दिवसीय समारोह में वह सम्मिलित नहीं हो पाए थे, लेकिन उन्होंने जो लिखित संदेश भेजा था, उसने समारोह को काफी प्रभातिव किया था।

आज जब कभी बंबई दूरदर्शन केंद्र के द्वितीय चैनेल (क्षेत्रीय) पर 'रचना' कार्यक्रम देखता हूं तो स्मृतियों के बादलों में चमकते अक्षर-हस्ताक्षर नरेन्द्रजी की सौम्य मूर्ति बिजली की तरह कौंध जाती हैं। 'रचना' कार्यक्रम के वैविध्य को यदि कोई एक व्यक्ति अपनी बहुआयामी प्रतिभा से रेखांकित, प्रमाणित और धन्य कर सकने में समर्थ हो पाया था, तो वह पंडितजी ही थे – यह तथ्य बंबई दूरदर्शन के हिंदी भाषी दर्शक अच्छी तरह जानते हैं। उस साकार ज्ञानकोश का अभाव निरंतर खलता रहेगा। वह एक अपूरणीय क्षति है।

पंडितजी के बहुपक्षीय व्यक्तित्व के अंतर्गत उनके ज्योतिष और आयुर्वेद ज्ञान की भी चर्चा होती है। अंग्रेजी भाषा पर भी उनका बड़ा अधिकार था। जरूरत होने पर वह धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलकर लोगों को चकित कर देते थे। पर उन्होंने कभी उसका प्रदर्शन नहीं किया।

उनके विख्यात फिल्मी-प्रसार गीतों में 'ज्योति कलश छलके' 'नाच रे मयूरा' और 'स्वागतम् अथ स्वागतम्' चिर स्मरणीय रहेंगे।

वह हिंदी के प्रकांड पंडित तथा प्रखर वक्ता थे। 'महाभारत' सीरियल को उनके परामर्श और काव्य का जो संयुक्त प्रसाद मिला, वह अब दुर्लभ है। उनके दोहे, उनके गीत सहज रूप से प्रासंगिक और आकर्षक हैं। अमर हैं।

इन सब माध्यमों से गुजरते हुए उन्होंने 'सूक्ष्म से विराट' की यात्राएं की हैं। ये यात्राएं ही हमारी उपलब्धियां हैं, जिनसे सबको प्रेरणा मिलती रहेगी।

अपनी जीवन-शैली अपने ढंग से जीने वाले इस मस्तमौला काव्यपुरुष को मेरे अशेष प्रणाम और श्रद्धा सुमन।

पं. नरेंद्र शर्मा- एक गुणग्राही एवं समन्वयवादी व्यक्तित्व

● डॉ. मो. दी. पराडकर

सन् १९७७ के हिंदी दिवस-समारोह की बात है । पंडितजी की उपस्थिति में समारोह की अध्यक्षता करने की धृष्टता मैं कर रहा था । स्वाभाविक रूप से तनिक संकोच का अनुभव करके उनकी ओर देख रहा था । उनकी मुस्कान ने मुझे आश्वस्त किया । उस दिन तो कुछ हिंदीभाषी प्रोफेसरों ने न जाने क्यों हिंदी की दुर्गति की, जिससे पूरा वायुमंडल क्षुब्ध हो गया । संयोग से उस दिन मैंने हिंदी प्रचार के अपने अनुभव के बल पर जो कुछ कहा, वह लोगों को बहुत पसंद आया और सभा संभल गयी । पंडित नरेन्द्र शर्माजी ने उत्स्फूर्त भाव से कहा, "पराडकरजी, आज़ आप न होते तो हिंदी की नैया मझधार में डूब जाती । सच कहता हूं, सदाचारी व्यक्ति को प्रभू ही प्रेरणा प्रदान करते हैं ।" कैसी पारदर्शी सरलता एवं सज्जनता है ! मुझे संस्कृत सुभाषित याद आया -"परम गुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः संति संतः कियन्तः ।" सचमुच पंडितजी उन संतों में थे, जो दूसरे के गुण को बहुत बड़ा बनाकर प्रस्तुत करने में आनंद का अनुभव करते थे । समारोह के दूसरे दिन शाम को कवि-सम्मेलन आयोजित था, जहां पहुंचने का मेरा इरादा बिलकुल नहीं था। लेकिन पंडितजी ने मुझे कहा "भाई पराडकरजी, कल जरूर आइये । मैं खार से निकलता हूं, रास्ते में ही आपका घर पड़ता है, मैं आपको लेने के लिए आऊंगा।" अब भला मैं कैसे रह सकता था ? उनके साथ ही दूसरे दिन मैं कवि-सम्मेलन में पहुंचा। कवियों को फूल-मालाएं दी जा रही थीं, लेकिन पहले ही अध्यक्ष के रूप में पंडितजी ने मेरा नाम पुकारा और मुझे हार पहनाया । मैं अचरज से दंग रह गया और पंडितजी से पूछा, "पंडितजी क्या बात है?" पंडितजी ने हमेशा की तरह मुस्कान के साथ कहा, "भाई आपके ही कारण कल हिंदी जिंदा रही, पहले आपका ही सत्कार करना चाहिए । हम कवियों का उसके उपरांत ही सम्मान करना उचित होगा ।" मैं भला क्या उत्तर देता? काश ! सभी हिंदी -भाषी इस तरह की उदारता दिखाने की सोचते ।

दूसरा संस्मरण कुछ आठ-नौ बरस पहले का है । उस दिन बंबई हिंदी विद्यापीठ के समारोह में पंडितजी अतिथि के रूप में

पधारे थे । समारोह के बाद बातचीत हो रही थी। मैंने पंडितजी से कहा, "गत कई वर्षों से हमारी संस्था नाटकों के मंचन द्वारा हिंदी का प्रसार कर रही है, हम वैसे टिकट भी नहीं रखते । मराठी के नाटक भी बड़े मशहूर होते हैं, मंच पर उनकी सफलता जानी-पहचानी है । फिर भी दर्शकों की कमी मुझे हमेशा अखरती है । हमारी कमी क्या है?" पंडितजी ने तुरंत कहा, "पराडकरजी, सच कहूं? हम हिन्दी भाषी अभी तक नाटक देखने के मामले में पिछड़े हुए हैं, माँ बेटियों के साथ थियेटर में आकर नाटक देखना, हम पसंद नहीं करते । महाराष्ट्र और बंगाल बहुत आगे हैं । हम वहां शीघ्र नहीं पहुंच पाएँगे ।" सचमुच पंडितजी ने बड़े मार्के की बात कही थी।

हिन्दी को मराठी, गुजराती आदि भाषाओं की बहन कहना एक बात है, उसे अमल में लाना और अपने व्यवहार से स्पष्ट करना दूसरी बात है । पंडितजी में मैंने इस समन्वय का साक्षात् उदाहरण देखा है । इसीलिए मैं मानता हूं कि उनके अकस्मात चले जाने से भारतीय भाषाओं के बीच अपने स्नेहशील आचरण के बल पर सेतु बांधने वाला एक हँसमुख व्यक्तित्व विलीन हो गया । समन्वय का एक अध्याय समाप्त हो गया । उनकी स्मृति को त्रिवार प्रणाम ।

"दूर समय की धारा" का कवि

● डॉ. जगदीश गुप्त

"सजते नहीं नये घर प्यारे, उजड़े बन्दवारों से ।
दूर समय की धारा बहती, छूटे हुए कगारों से ।"

कवि नरेन्द्र शर्मा देखते-देखते समय की धारा में विलीन हो गये । वे अलक्षित हो गये । व्यक्त से अव्यक्त बन गये । इतनी दूर चले गये कि हमारी पुकार भी उन तक नहीं पहुंचेगी । वे नि:शरीर होकर हमें किस प्रकार पुकारते होंगे, कोई नहीं कह सकता । जन्म-जन्मान्तर का विश्वासी भारतीय मानस यह कभी नहीं मानेगा कि वे जड़-तत्वों में विलीन हो गए, सर्वथा नि:शेष हो गये । इस देश की मान्यता से वे सुपरिचित थे-- "ना सतो विद्यते भाव: ना भावो विद्यते सत: ।' जो अस्तित्ववान है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकता और जो कभी रहा नहीं उसका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता । परिवर्तन में केवल नाम और रूप का ही भेद हो जाता है । नरेन्द्र जी उन प्रगतिवादियों में नहीं थे जो आध्यात्मिकता को नकार देते हों, वरन् उनकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर भौतिकता से अध्यात्म की ओर उन्मुख होती गयी । उनकी रचनाएं इसका प्रमाण हैं । उनकी विचाराधार इसका सबूत है । इसकी बात आगे होगी ।

मैं पिछले चालीस वर्षों से गंगा किनारे रह रहा हूं और धारा से इतना निकट कि वह मेरी आंखों में निरन्तर समायी रहती है । जब धारा इधर के तट पर बहती थी, तब से धारा का स्वभाव मैंने जाना है और अब जब ऊपर के किनारे को छूकर धीरे-धीरे बीच में बहती हुई इधर की ओर ही आने लगी है तो लगता है छूटे हुए कगार भी धार से कभी नहीं छूटते । धार स्वयं अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उनकी खोज करती रहती है । छुआ हुआ जल भी बाढ़ के समय देखते-देखते धार का अंग बन जाता है । मानसिक रूप से मैं यही मानता हूं नरेन्द्र जी कवि-रूप में समय की धारा में समा अवश्य गये, पर वे उससे दूर नहीं हुए । समय कभी उन्हें भुला नहीं सकता । मैं समय को इतना संवेदनहीन नहीं मानता कि मनुष्य स्वयं अनुपस्थित हो जाए ।

उन्होंने स्वयं 'ग्रामचित्र' में लिखा है...

"यही कहेंगे लोग, चित्र यह केवल विगताभास है,
किंतु हुआ जो, होगा फिर वह, यह मेरा विश्वास
है।"

गंगा के तट पर बसते हुए धार और कगार के न जाने कितने प्रकार के संबंध मैंने देखे और अनुभव किये हैं, बल्कि जीवन को सही रूप में मानना ही मैंने उनसे सीखा है। दो पंक्तियां याद आ रही हैं- अपनी ही बात उनके सहारे कह रहा हूं।

"गिरा कगार बोल कर प्रवाह मूक हो गया।
हिली हिलोर और चांद टूक-टूक हो गया।"

मैंने तट पर बैठे-बैठे कगारों के टूटने और चांद के टूट-टूट कर फिर जुड़ने के दृश्य अनेकों बार देखे हैं। निश्चय ही नरेंद्र जी ने भी प्रयाग में वर्षों रह कर टूटने-जुड़ने का ऐसा परिदृश्य देखा होगा, तभी तो उन्होंने गंगा की धार को 'समय की धारा' से उपमित किया और स्वंय उसमें समा गये। खारे समुद्र ने उन्हें खारपन ही दिया होगा। बंबईवासी होने पर धर्मवीरभारती भी उस रस को नहीं पचा पाये जो उन्हें गंगाजमुनी प्रदेश ने दिया था। पर दोनों के अनुभव में एक अंतर दिखायी देता है। नरेंद्र जी ने उस समुद्री क्षार को अलग करते हुए जल की निर्मलता को कभी भुलाया नहीं। पर भारती खारे पानी को निर्मल बनाने की प्रक्रिया भूल गये। इतनी पीड़ा, इतनी चिंता मन ही मन सहते रहे कि हृदय रोग से ग्रस्त हो गये। अब वे ठीक होकर घर आ गये हैं तो लगता है कि मानो नरेंद्र जी की संजीवनी याद ही उन्हें वापस ले आयी।

'सजते नहीं नये घर प्यारे, उजड़े वंदनवारों से' का मर्म भारती ने नहीं जाना होगा यह मैं सोच नहीं सकता। जब 'प्रवासी के गीत' प्रकाशित हुआ था, तो मैं और भारती सहपाठी के रूप में उसी विश्वविद्यालय में पहुंच गये थे, जहां नरेंद्र जी पहले से ही कवियों का पथ प्रशस्त कर चुके थे। पत्रकारिता में भी वह अग्रणी रह चुके थे। रघुपति सहाय 'फिराक,' रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन और अंचल सबके-सब इसी विश्वविद्यालय की देन हैं, कुछ छात्र रूप में कुछ अध्यापक रूप में। भारती और मैं भी

इसी धारा में आ गये। सर्वेश्वर और साही तथा न जाने कितने तरुण प्रयाग की भूमि से जुड़े रहे। यहां से जाने के बाद भी वे प्रयाग को कितना याद करते थे, यह मैंने उनके बंबई निवास पर जाकर जाना। न केवल वे स्वयं, वरन् उनका परिवार भी प्रयाग को असाधारण आत्मीयता देता रहा।

कवि नरेन्द्र की बहुत कविताएं पारिवारिक जीवन के निजी अनुभवों से उपजी हैं, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं, क्योंकि 'प्रवासी के गीत' लिखने वाला स्नेह के क्षणों को सहेजने की प्रवृत्ति रखता था और उन्हें मूल्यवान मानकर उस मंजूषा को कविताओं के रूप में सबके आगे खोलकर दिखाने में गौरव अनुभव करता था। एक ऐसा ही बिंब मुझे याद आ रहा है, जिसमें नाराज बेटी तरुणी होकर भी पैर पटकने की आदत नहीं छोड़ पाती। पायल उसे मर्यादा की बेड़ी लगती है।

"अध लेटी युवती धरती पर
पटक रही है एड़ी।
जाने कब उतार फेंके वह
मर्यादा की बेड़ी।
अभी समय है, आ जाओ घर,
पोषितपतिका के वर।
अवनि-व्योम को एक न कर दे
बड़वाबहिन बछेड़ी।"

इसमें श्रृंगार की भूमि वात्सल्य रस से सींची गयी प्रतीत होती है। ऐसे उदाहरण हिन्दी काव्य में कम ही मिलेंगे। 'बछेड़ी' शब्द अद्वितीय व्यंजना रखता है।

'भारत-भारती-परिषद' ने 'ज्योति-कलश' नाम से षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर सन् १९७४ में कविवर पंडित नरेन्द्र शर्मा के सम्मान में "सदर्भ-ग्रंथ के परिप्रेक्ष्य' में "अभिनन्दन-ग्रंथ" निकाला था जिसमें 'पारिवारिक-परिप्रेक्ष्य' और 'व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक खंडों के पहले मेरी एक-एक कविता प्रतीकात्मक रूप में छापकर उसका श्रेय मुझे दिया गया है। ऐसा अभूतपूर्व श्रेय 'दिनकर' 'दीपक' भगवती चरण वर्मा और अन्तिम खंड में स्वयं पं. नरेन्द्र शर्मा को भी दिया गया है। 'ज्योति-कलश छलके' नामक गीत से प्रेरित यह

अभिनंदन-ग्रंथ सचमुच स्मरणीय और संग्रहणीय है । मेरी निजी प्रति ही मेरे संदर्भ-ज्ञान का आधार बनी है । दिनकरजी ने 'गंगाजल से ही गंगा की पूजा और सम्मान कर, मुझे शिवमंगल सिंह 'सुमन' की याद दिला दी, जो इस पूजाभाव को व्यक्त करने में अघाते नहीं हैं । उन्हें कालिदास तक ले जाना वे कभी नहीं भूलते । 'अग्रज के प्रति अनुज की अर्चना' इसका प्रमाण है नरेन्द्रजी से वे कम जुड़े नहीं रहे ।

पंतजीने अपने संस्मरण में १९३८ में नरेन्द्रजी के सम्पादन में 'रूपाभ' निकालने की बात लिखी है । उनके ज्योतिष-ज्ञान का लोहा स्वयं पंतजी मानते थे । इसका मैं साक्षी हूं । वस्तुतः नरेन्द्रजी ने बनारस जाकर वहां के ज्योतिषियों से ज्ञान-लाभ किया । पंतजी ने उसे 'जीवन-गंगा में डुबकी' लगाना कहा है और बंबई तक पहुंचने को 'सागरस्पर्शी' माना है । डुबकी लगाने और जल-स्पर्श करने का अन्तर कवि पंत भली-भांति जानते थे । उन्होंने जान-बूझकर ऐसा प्रयोग किया है ।

'अभी जाल न समेटें' शीर्षक से बच्चनजी ने जो कामना जाल समेटने के निजी अनुभव के साथ व्यक्त की वह चरितार्थ नहीं हुई और बच्चनजी से पहले ही नरेन्द्रजी चले गये और उनकी शेष आयु और बच्चनजी की मिले, मैं यही कामना करता हूं । वरन् कवि मात्र को मिले, कविता को मिले, मेरा यही भाव है। आगे पंतजी और पीछे बच्चनजी और नरेन्द्रजी की छाया-छवि मुझे कभी नहीं भूलती क्योंकि एडेल्फ़ी में मैंने तीनों को एक साथ देखा है, जैसे प्रयाग के विविध साहित्यिक संदर्भों में उनकी सम्मिलित छवि दिखायी देती थी ।

हालैण्ड हाल सुपरिन्टॅन्डॅन्ट और अंग्रेज़ी विभाग के लेक्चरर चित्रकार आर. एन. देव जो मेरे गुरु भी रहे, यूनिवर्सिटी गेट के सामने बने घर में रहते थे, जहाँ पहली बार नरेन्द्रजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह बात ४३-४४ की होगी जब 'परिमल' की स्थापना होने जा रही थी। नरेन्द्रजी ने 'परिमल' से वैसा ही स्नेहभाव माना जैसा प्रगतिशीलों से रहा, क्योंकि उनकी संस्कृति-चेतना केवल बाहरी प्रभाव के कारण उन्मूलित हुई । वास्तव में उनका सारा साहित्यिक जीवन मूल्यों की खोज में ही बीता । निष्कर्ष रूप में उन्होंने जो

कुछ पाया, उसमें किसी का विरोध नहीं है। प्रगति और परम्परा का समन्वय आवश्यक है । "प्रगति और परंपरा..." शीर्षक से 'ज्योति–कलश' के अन्त में जो परिचर्चा प्रश्नोत्तर के रूप में दी गयी है, उसके कुछ अंश विशेष द्रष्टव्य हैं क्योंकि उनमें वैचारिक पक्ष सुस्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है–

"सामान्य व्यक्ति के ह्रदय में कवि सदा विराजमान रहता है। तथाकथित् सामान्य व्यक्ति के ह्रदय में कवि सदा नहीं रहता। दोनों में यही बड़ा भेद है।

मैंने सौन्दर्य, प्रेम और संवेदना को त्याग कर दर्शन और अध्यात्म के स्वर में नहीं मिलाया है। मैंने इन तत्वों का अधिक व्यापक और गहरे रूप में अनुभव करते हुए दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र का अनुसंधान किया है। सौंदर्य, प्रेम और संवेदना का अनिवासी स्वरूप तो दर्शन और अध्यात्म का उद्देश्य रहा है।

कवि अपनी वैयक्तिकता में भी निर्वैयक्तिक, आत्म तटस्थ और सर्वमान्य ही होता है। ऐसा नहीं तो उसकी वैयक्तिकता उसकी विशेषता होते हुए भी, उसकी सीमा बन जाती है।

प्रगतिवाद और जनवाद के शाश्वत् मूल्यों के प्रति अब मेरा ध्यान उनके सामयिक प्रतिवादन की अपेक्षा अधिक केन्द्रित है। मैं जन की प्रगति के लिए अब भी प्रयत्नशील हूँ। मध्यवर्गीय प्रगतिवाद और जनवाद से मध्ययुगीन सन्त कहीं अधिक व्यापक और गंभीर रूप सर्वहितरत।

परम्परा प्रगति के बिना नहीं बनती और न विच्छिन्नता या उच्छेदन से प्रगति होती है। बद्धमुष्टि स्वार्थ का पक्ष मैंने कभी नही लिया है । मैं सामाजिक संस्कृति के उन्मूलन के पक्ष में नहीं हूँ । मैं भारतीयता का भी पक्षपाती हूँ। अंकुर को उन्मूलित करके उसे विकसित नहीं किया जा सकता । परमुखापेक्षी बनना स्वयं अवरोध बनना है।"

'लय' को वे अपनी रचनाओं में अनेक रूपों में समाहित करते रहे । 'नवगीत' के वे वस्तुतः उद्भावक कवि कहे जा सकते

हैं। उनका एक गीत द्रष्टव्य है:

मेरे गीत

मेरे गीत बड़े हरियाले ।
मैंने अपने गीत
सघन–वन–अन्तराल से खोज निकाले
मैंने इन्हें जलधि में खोजा ।
जहां द्रवित होता फ़ीरोजा
मन का मधु वितरित करने को
गीत बने मरकत के प्याले ।
कनक–वेनु, नभ–नील–रागिनी,
बनी रही बंशी सुहागिनी ।
सात रन्ध्र की सीढ़ी पर चढ़
गीत बने हारिल मतवाले ।
देवदारु के हरित शिखर पर
अन्तिम नीड़ बनायेंगे स्वर
शुभ्र हिमालय की छाया में
लय हो जायेगें लय वाले ।

"महाभारत" सीरियल से पहले वे आकाशवाणी के "विविधभारती" कार्यक्रम के निदेशक रहे । लता मंगेशकर को उन्होंने अदभुत प्रेरणा दी ।

'द्रौपदी' काव्य में उनका "महाभारत" सिद्ध अनुभव समाहित हुआ है । "रामायण" को भी उन्होंने मर्मस्पर्शी रूप में देखा और भरत को सर्वोपरि महत्ता दी । गांधी का 'रामराज्य' भरत की भूमिका से संभव है ।

"कैकेयी की मति अंग्रेजी पढ़े–लिखे मध्यवर्ग की मनोवृत्ति है । राजसेवा आज की मंथरा है । किन्तु आज़ कैकेयी–नन्दन पुण्यश्लोक भरतजी के दर्शन दुर्लभ हैं । मेरी मान्यता है कि भरत बिना रामराज्य

की संभावना नहीं है। भरत–भक्ति से ही भारत को रामराज्य संस्थापक राम मिलेंगे, ऐसी मेरी मान्यता है। गोस्वामीजी के राम निवृत्तकाम जन्मजात अकाम हनुमानजी के माध्यम से संप्राप्त थे। वह राम चिन्मय चित्रकूटवासी हैं। आज हमें भरत–भक्ति की आवश्यकता है। भरत–भक्ति से ही भारतीय प्रजातंत्र के सद्गृहस्थ संन्यासी सुनागरिक पैदा हो सकते हैं। मैं पूज्य भाई भरत का उपासक बन गया हूं। आज भाई–चारे का रामराज्य ही हमारे आदर्श रामराज्य का सुंदर प्रतीक है।''

(पृ. ४४२ ज्योति–कलश, अभिनंदन ग्रंथ)

इन सारी बातों से 'परिमल' का भी विरोध नहीं रहा, नहीं तो क्या प्रकाशचंद्र गुप्त जैसे लोग उसमें वर्षो तक बने रहते। वस्तुत: जो लोग प्रगतिवाद को स्थिर विचारधारा बनाकर प्रगति विरोधी बना देते हैं वही प्रतिक्रिया को जन्म देते हैं। 'प्रगतिशील' और 'प्रगतिवाद' में यही अन्तर माना गया है। परिमल की विचारधारा सदा वाद–मुक्त रही है। नयी कविता भी वाद–मुक्त धरातल पर ही व्यापक प्रभाव ग्रहण कर सकी। नरेन्द्रजी भी इतनी प्रगति न करते यदि वाद–वादिता उन पर छा गयी होती। साहित्य खुले विचारों से उपजता है और स्वतंत्रता एक जीवन–मूल्य की तरह उसे तोषित करती है। प्रगति इन दोनों विंदुओं के बीच तरल और प्रवहमानता के साथ स्वीकार्य की जा सकती है। एक कठोर मतवाद के रूप में कदापि नहीं। नरेन्द्रजी इस मर्म को जानते थे, अत: मैं उनके प्रति अपना विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूं।

अतीत के झरोखे से :

●प्रदीप

अतीत के झरोखे से झांक रहा हूं। इलाहाबाद में एक कवि–सम्मेलन का आयोजन था। काफ़ी भीड़ थी। उसी सम्मेलन में नरेन्द्र जी से मेरा अनायास परिचय हो गया था। समय की लीला अजीब होती है। मैं नया कवि होने के नाते मंच के एक कोने में सिमटा–सिकुड़ा बैठा था।

अपने से थोड़ी दूर बैठे एक गौरवर्ण सुकुमार–सौम्य युवक को न जाने क्यों मैं बार–बार देख लिया करता था। वे भी कविता–पाठ के लिये आमंत्रित थे और मैं भी। अध्यक्ष की घोषणा से पता चला कि यही पं. नरेन्द्र शर्मा हैं। जब दो कवियों के बाद मेरी बारी आयी, तो मैंने एक गीत सुनाया (यह बता दूं कि शुरू से ही मेरी पठन–शैली बड़ी अच्छी थी)। गीत के बोल थे–

"मुरलिके छेड़ सुरीली तान,
सुना–सुना मादक–अधरे,
विश्व-विमोहन तान।"

मैंने देखा सुंदर युवक नरेन्द्र जी मेरे पास आकर बैठ गये और गीत में मेरे शब्द–प्रयोग "मादक–अधरे" की खूब प्रशंसा करके शाबाशी दी।

यही हमारी पहली मुलाकात मित्रता में बदल गयी। फिर तो हम अनेकों बार लगातार मिलते रहे। उक्त बात करीब साठ वर्ष पहले की है। उमर में नरेन्द्रजी दो वर्ष मेरे अग्रज थे।

सन् १९३४ में इलाहाबाद छोड़कर मैं लखनऊ आ गया। फिर तो हमारी जन्म-कुंडलियों ने अपना–अपना काम शुरू कर दिया। नरेन्द्र जी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में ही रहे और मैं आगे के विद्याभ्यास के लिए लखनऊ आ गया। इस प्रकार हम एक–दूसरे से दूर हो गये। लखनऊ में चार वर्ष रहने के बाद, अचानक भाग्य की आंधी ने मुझे फिल्म क्षेत्र में ला पटका एक गीतकार के रूप में। यह सन् १९३९ की बात है। नरेन्द्र जी के कार्यक्षेत्र भी बदलते रहे। हम दोनों अपने–अपने ढंग से, अपने–अपने क्षेत्र में काम करते रहे। परंतु हमारे स्नेह-बंधन में कभी कमी नहीं आयी।

नरेन्द्र जी के बारे में नपे–तुले शब्दों में लिखा जाये, तो वे सद्‌गुणों के भंडार थे । वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और अदभुत् दार्शनिक थे । उनके व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार की बुलंदी थी, जिसे मैंने अनेकों बार अनुभव किया । वे जब कुछ बोलते थे, उसमें सहजता होती थी, प्रयास नहीं । उनकी वाणी में सरस्वती का निवास था । वे बड़े गंभीर चिंतक, मन के बड़े संस्कारी और स्वभाव से संत थे । मालूम होता था कि उनके भीतर भरपूर वैष्णवी भाव भरे थे, जो हमें अनायास ही लुभाते रहते थे ।

अब तो वे चले गये हैं, परंतु उनकी मधुर स्मृतियों के चित्र अभी भी मेरे सामने पड़े हैं । चलूं, उन प्यारी यादगारों के चित्रों को चलकर प्रणाम करूँ.....

भारतीय मनीषा सशरीर

● गोविंद मिश्र

दो पीढ़ियों का एक संवाद मेरे घर में प्रस्तावित था। वरिष्ठ पीढ़ी में अज्ञेय और नरेन्द्रजी और दूसरी तरफ मैं और डॉ. चंद्रकांत वांदिवडेकर। नरेन्द्र जी से मैं पहले नहीं मिला था, फिर भी वे बड़े ही सहज ढंग से आने को तैयार हो गये। यह साहित्य से उनके गहरे जुड़ाव का परिचायक था और मुझे सचमुच कौतूहल हुआ कि इन तमाम वर्षों, फिल्मों की नकली दिखावटी दुनिया से निबाह करते हुए नरेन्द्रजी उस जुड़ाव से कैसे बचे रह सके ? वे अपने आप ही पहुंच गये। यह उनका पहला दर्शन था मेरे लिए– विशुद्ध भारतीय लिबास, भारतीयता की गरिमा व्यक्तित्व के पोर–पोर से फूटती हुई, जैसे थोड़े नशे में मस्त आंखें... सोचा कि यह व्यक्ति बाहर से कैसे ही कैसे भी रहने को विवश रहा, भीतर–भीतर वह अपनी ही राह चलेगा और इसमें मस्त रहेगा। उन्होंने बंबई में भी अपने अछूते बने रहने का रहस्य बताया, "मैंने अपने–आपको कभी ज्यादा लगाया नहीं, मतलब बढ़चढ़ कर नहीं आंका।" मतलब तो साफ था कि उनका ज्यादा बोलना अहं की वजह से नहीं था, हालांकि जितने विद्वान थे, उसे देखते हुए अहं–भावना स्वाभाविक ही होती है। ज्यादा बोलना उनके साफ मन की वजह से था– जो बात उठती वह बिना कहीं अटके झर–झर बरसती चली जाती। सिनेमा की दुनिया को आजमाने साहित्यकार कब से आते रहे... प्रेमचंद से लेकर कई। लेकिन जिस तरह नरेन्द्र इसमें एकलय हो पाये, वैसा कोई नहीं। वह ऐसी एकलयता थी, जिसमें उखड़े–उखड़े रहना तो था ही नहीं, सिनेमा को साहित्यिकता का स्पर्श देकर उसे अर्थपूर्ण और गरिमायुक्त बनाना था और साथ–साथ अपनी रचनायात्रा अकलुष जारी रखना। अद्‌भुत सन्तुलन था वह जो नरेन्द्रजी बनाये रख सके। सिनेमा को एक़ ध्येय माध्यम मानने की बजाय आज की दुनिया में उसके सही महत्व को मानना और उसके स्तर को उठाने में सकारात्मक योगदान देना– यह कम साहित्यकार कर पाते हैं। यह वही कर सकता है जो बाहर से भीतर तक कुंठाविहीन हो।

कुंठा नरेन्द्रजी को छू नहीं गयी थी, मैंने साफ–साफ एक और मौके पर देखा। हिन्दी सप्ताह से संबंधित किसी कार्यक्रम में नरेन्द्रजी

और मुझे एक साथ बुलाया गया। नरेन्द्रजी अध्यक्ष, मैं मुख्य अतिथि। कार का इन्तज़ाम भी इस तरह कि पहले वह नरेन्द्रजी को लाये, फिर मुझे ले। इसी बात पर कोई भी बंबइया भड़क उठता। नरेन्द्रजी आये और शांत मन से गाड़ी में बैठे मेरी बिल्डिंग के नीचे मेरा इन्तजार करते रहे। मुझे जब यह पता चला तो मैं बेहद लज्जित हुआ। पर नरेन्द्रजी बड़े इत्मीनान से बोले- "भाई, जाना तो इसी तरफ था और उसे देखते हुए यह ठीक था कि मुझे पहले लिया जाये और तुम्हें बाद में।" कार्यक्रम के आयोजकों ने एक और धृष्टता कर रखी थी- पुरस्कार मुझसे दिला रहे थे। नरेन्द्रजी ने इसकी पूर्व सूचना होते हुए भी कार्यक्रम में आना स्वीकार किया और मंच पर "आत्मन्येव आत्मन: तुष्ट:" बैठे हुए थे। मुझे लगा कि वैसे आयोजन से नरेन्द्रजी का तो कुछ नहीं बिगड़ने का, हां जिन लोगों को पुरस्कार मिलता था, वे इस मनस्वी के आशीर्वाद से वंचित रह जायेंगे। इसलिए मैंने अपने भाषण के बाद पुरस्कार नरेन्द्रजी के हाथों दिये जाने की घोषणा कर दी, आयोजकों से बिना पूछे। कारण भी मैंने नहीं बताया। नरेन्द्रजी ने मेरी ओर स्निग्ध भाव से देखा और पुरस्कार बांटने बेतकल्लुफ आगे आ गये।

शब्दों में आजीवन डूबने-उतरने के बावजूद और वहां भी एक तरफ साहित्य के शब्द की प्रमाणिक खोज और दूसरी तरफ सिनेमा के गीत के लिए शब्दों का करीब-करीब व्यावसायिक इस्तेमाल-नरेन्द्रजी शब्दों की सीमा जानते थे। शब्द अक्सर कितने भ्रामक होते हैं। साहित्यकार जिन शब्दों का प्रयोग सत्य तक पहुंचने के लिए कर रहा है, अक्सर वे ही शब्द उसे सत्य तक पहुंचने नहीं देते। इसलिए शब्दों की मायावी चाल को भी पहचानना चाहिए। धर्मवीर भारती बंबई विश्वविद्यालय के लिए "कनुप्रिया" कुछ अंशों का पाठ सवक्तव्य कर रहे थे, नरेन्द्रजी अध्यक्ष थे। "कनुप्रिया" की रसानुभूति कविता पाठ द्वारा करते हुए भारतीजी कह गये कि "कनुप्रिया" लिखते समय वे नास्तिक थे, अध्यक्षीय भाषण में नरेन्द्रजी ने इसी बात को पकड़ लिया, बोले- "तुम कहते रहो कि नास्तिक हो, कहने से क्या नास्तिक या आस्तिक हो जाओगे?" और वाकई "कनुप्रिया" में रस के बिना रस कैसे आ सकता था?

नरेन्द्र शर्मा जैसा व्यक्तित्व- जैसे भारतीय मनीषा सशरीर सामने खड़ी हो। विद्वत्ता, साहित्यकार या कवि की विशिष्टता, प्रकाशित

पुस्तकें,... ये विशेषताएं भी जहां विशेष नहीं रह जातीं, एक अनोखे साधारणपन में विलीन हो जाती हैं। कोई बड़ा आम का पेड़ बड़े-बड़े फलों से लदा हुआ भी जैसे साधारण पेड़ की तरह ही खड़ा हो... सबके बीच, उन्हीं जैसा ! उनके पास बैठे हुए मेरे भीतर वैसे ही तरंगें उठती थीं, जैसी बचपन में अपने नाना, मौसा के पास बैठकर उठती थी। वही भव्य भारतीयता, ऐसी साधारणता कि जिसके आगे कैसी भी विशिष्टता फीकी पड़ जाए।

उमाशंकर जोशी, जैनेन्द्र कुमार, भवानी, नरेन्द्रजी, अज्ञेय ! मैं भाग्यवान हूं कि इन लोगों का सामीप्य और स्नेह मुझे मिला। मेरा दुर्भाग्य कि कुछ ही वर्षों के बीच ऐसा हो गया कि शरीर से कोई नहीं आस-पास ! यह जानते हुए भी क्यों ऐसा लगता है कि ये लोग बराबर साथ हैं, रहेंगे। ये साहित्य से मुझे दूर नहीं होने देंगे।

यादों की एक अंजलि

● गुलाबदास ब्रोकर

बरसों पहले की बात है। तब हम कुछ विविधभाषी मित्र–साहित्यकारों की मंडली नियमित मिलती थी। मिलजुलकर हम हंसते, विनोद करते, एक–दूसरे की कृतियों का पठन करते, गंभीर चर्चा करते और बिछुड़ जाते। ये सारे मिलन सिर्फ मिलन के हेतु होते और सभी को अनहद आनंद देते। उनमें किसी एक की प्रसिद्धि का प्रश्न ही नहीं था, सिर्फ मित्रों के मिलन का आनंद था।

उस गोष्ठी में हिन्दी के कुछ सुविख्यात सर्जक आते, जैसे नरेन्द्र शर्मा, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, शैलेन्द्र, पंडा, वीरेन्द्र कुमार जैन, परदेशी वगैरह। कभी एक तो कभी दूसरा, कोई न कोई अचूक आता। मराठी के भी सुविख्यात कवि पु. सी.रेगे और अनंत काणेकर जैसे निबंधकार भी कई बार अन्य मराठी लेखकों के साथ वहां आते। कभी-कभी कन्नड़ साहित्यकार भी हमारी गोष्ठी में हिस्सा लेते थे।

हमारे मंडल का कोई खास बंधन न था और न ही कोई सुनिश्चित मिलन स्थान। कई बार यह मंडली मेरे यहां एकत्र होती, तो कभी–कभी इनमें से किसी एक के यहां। जहां भी हम मिलते, वहां सभी में एक प्रकार की निकटता होती, प्यार होता।

इससे पहले भी मैं कविश्री नरेन्द्र शर्मा से मिला था, मगर अब हमारी पहचान मैत्री में बदल गयी थी। मैं देखता कि जब भी हम किसी भी प्रकार की चर्चा करें, या किसी भी वाद–विवाद में भाग लें, नरेन्द्र शर्मा का रुख पक्षपात रहित होता। उनकी चर्चा में कभी भी राग–द्वेष दिखाई नहीं पड़ता। धर्मवीर भारती और मोहन राकेश की चर्चा में एक तरह का असर होता, तो नरेन्द्र शर्मा की चर्चा में दूसरे प्रकार का। यह असर इतना गहरा था कि अब भी मेरे हृदय के कोने में ये अपना घर किए हुए है।

एक प्रसंग मुझे अच्छी तरह याद है। प्राध्यापक वंशीधर पंडा, जो घाटकोपर के सौमैया कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक थे, उन्होने हमारी मंडली के समक्ष अपनी एक कविता पेश की। उसका भावार्थ कुछ इस तरह का था– एक वृद्ध स्त्री, रास्ते पर बैठ कर चने–कुरमुरे

बेचा करती थी, उसके बारे में कवि कहते हैं--

"देखा उसे ?
वृद्ध दिखती भली स्त्री,
पहचानते हो उसे ?
वो मेरी मां है।"

शब्द ये नहीं थे पर भावार्थ ये था। आखिर में आता था– "वो मेरी मां है।" ये वाक्य इतना असरदायक था कि वो भाव मेरे हृदय में हमेशा के लिए अंकित हो गया।

मेरी एक और आदत रही है कि जब भी मैं कुछ अच्छा देखूं, या सूनूं तो मेरी निगाहें अनायास अपने आसपास के लोगों पर जम जाती है। "वह मेरी मां है..." जब ये उद्‌गार सुनाई दिये, तब मेरी निगाहें मंडली में चारों और घूम गईं। मैंने देखा कि भाई नरेन्द्र की आंखों में अश्रु छलक उठे थे और उनके चेहरे पर वात्सल्य के भाव जाग उठे थे। ये स्पष्ट हो गया था कि इस कविता का वे भरपूर आनंद उठा रहे थे। इतना भावपूर्ण हृदय ! मुझे यह बहुत ही अच्छा लगा। उस रोज के बाद हमारे बीच में एक विशेष प्रकार की निकटता स्थापित हो गयी।

नरेन्द्र जी हिन्दी भाषा के एक बहुत बड़े कवि थे। अपने जमाने के किसी भी नामी कवि की कतार में बैठ सकें, ऐसे ! साथ–साथ हिन्दी ही नहीं अंग्रेजी साहित्य, संस्कृत और वेद–पुराण में भी उनका गहरा अध्ययन था। इसीलिए वे जब भी चर्चा में भाग लेते, तब उनकी विद्वता का तेज चारों ओर फैलकर सबको चकाचौंध कर देता।

तेजस्वी होने के साथ–साथ वे बहुत प्रेमालु थे। इसीलिए जब भी हम उन्हें मिलते उनका प्रेम हमें जैसे अपने में समो लेता और उसकी तेजस्विता की लौ से सब कुछ चमकने लगता।

उनकी काठी ऊंची नहीं, पर भरावदार थी। मुख की कांति आकर्षक, आंखों में चमक और चाल में जोश था। अभिमान का उनमें एक कतरा भी नहीं था।

काशी विश्वविद्यालय में उन्होंने प्राध्यापक का कार्य किया था और विद्या के अनेक क्षेत्रों को शोभायमान किया था। मगर इन सारी बातों का घमंड न तो उनकी वाणी में और न तो उनके हाव-भाव में दिखाई पड़ता था। अनेक पत्रिकाओं का भी उन्होंने संपादन किया था। अनेक फिल्मों में लोकप्रिय गीतों की रचना भी की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने करीब बीस साल तक रेडियो में कार्यक्रम नियोजन का भार संभाला और १९८२ में उन्हें "प्रोड्यूसर एमेरेटस्" का गौरवभरा पद दिया गया। उनका कार्यक्षेत्र काफी विशाल था, जो सिर्फ काव्य रचने में, साहितय के सर्जन में, गीत लिखने में और आकाशवाणी के संस्थान को अपनी शक्तियों का लाभ देने तक सीमित नहीं था।

नरेन्द्रजी जितने बड़े साहित्यकार थे, उतने ही प्रखर देशभक्त भी। वे कांग्रेस कमेटी के इलाहाबाद केन्द्रीय कार्यालयों में भी हिन्दी के सचिव के रूप में लंबे समय तक कार्य करते रहे। इस सबके बदले में उन्हें १९४० से १९४२ तक, तबके वाइसरॉय के आदेशानुसार कारागर में नजरबंद कर दिया गया था।

इस तरह नरेन्द्र जी का जीवन अनेक दिशाओं के अनुभवों से समृद्ध था। इसी कारण से उनके काव्य में इन सारे अनुभवों की विविधता दिखाई देती है और वे अपने काव्य-रसिकों के हृदय में ऐसा प्रेम भरा स्थान बना सके।

कुछ ही दिनों पहले हिन्दी के कवि-मित्र अनंत कुमार पाषाण और प्रो. जगदीश शिवपुरी मिले थे। मेरा हृदय नरेन्द्रजी की बातों से भरा था। उनकी बात निकलते ही वे लोग कहने लगे, "उन्हें तो हम लोग गुरु-तुल्य मानते थे और उनसे हमें काफी कुछ सीखने को मिला है।" सभी कवि, प्रेम के बारे में तो कभी न कभी लिखते ही हैं। उसमें विरह-मिलन या मिलन-विरह की बातें भी आती ही हैं। तो नरेन्द्र शर्मा भी इन सबसे कैसे अछूते रह जाते ? परंतु वे कैसे अनिश्चित तत्व के हृदय-भेदक माधुर्य से अपनी बात कहते हैं।

"आज से दो प्रेम योगी, अब वियोगी ही रहेंगे, आज के बिछुड़े

न जाने कब मिलेंगे... ?''

अभी कुछ ही दिनों पहले (उनके अवसान के करीब पंद्रह दिन पहले) उनके साथ काफी समय गुजारने का सुअवसर मिला था। उस मिलन की मधुरता अब भी स्मृति-पटल पर अंकित है। भारतीय लेखक संगठन की महाराष्ट्र शाखा का उद्‌घाटन ७.१.१९८९ के दिन बंबई युनिवर्सिटी के ''क्लब हाऊस में'' रखा गया था। मुझे वहां ''अतिथि विशेष'' के रूप में जाना था। मुझे लेने आनेवाले सज्जन ने कहा कि नरेन्द्र शर्मा भी उस उद्‌घाटन समारोह में आयेंगे और हमें आशीर्वाद देंगे। मैं खुशी से फूला नहीं समाया। कितने सालों बाद अपने प्रिय सर्जक के साथ कुछ खुशी के क्षण बिता पाऊंगा, ये सोचकर प्रसन्नचित्त हो गया। हम उन्हें लेने उनके घर खार गये। वहां वे तैयार होकर ही बैठे थे। वही प्रसन्न हास्य, पर मुख पर वृद्धत्व की छाया लिए किन्तु उल्लास बिलकुल ही बिना वृद्धत्व का! रास्ते में उन्होंने भारतीय तांत्रिक संप्रदाय की बातें कीं। उन्होंने यह भी कहा कि अभी-अभी उन्होंने इस विषय में काफी रस लेना शुरू किया है। मुझे तो बहुत कुछ जानने को मिला, चूंकि मैं जैन हूं। वापसी में भी ज्ञान-धारा का लाभ मिला। जब उनके घर के बाहर हम अलग हुए, तो मुझे या उन्हें अलहदा होना अच्छा नहीं लगा। हम दोनों ने एक दूसरे को गले लगा लिया। उन्होंने कहा, ''गुलाबदासजी हमें फिर से पहले की तरह मिलना चाहिए।'' मैंने उत्तर दिया, ''जरूर मिलेंगे। अगर कोई नहीं मिले तो हम दोनों अवश्य ही मिलते रहेंगे।'' हंस कर उन्होंने विदा ली। घर में जब दाखिल हुए, तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनकी चाल कुछ धीमी हो गई है। मैंने सोचा, अब जब फिर से मिलेंगे तब ये थकान नहीं होगी। तब मैं कहां जानता था कि उनका आखिरी दर्शन है! आखिरी मिलन है!! उनको उनके जीवन की संध्या से विदा लेते देख मुझे उन्हीं की पंक्ति याद आ गई-

''सांझ होते ही जाने छा गई कैसी उदासी ?
क्या किसी की याद आयी ओ विरह व्याकुल प्रवासी

उनके अचानक चले जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सारे भारत के प्रेमी हृदय पर उदासी छा गई हो।

एक विनम्र प्रणाम

●डॉ सी.एल्. प्रभात

पंडित नरेन्द्र शर्मा के दर्शन मुझे पहली बार सन् १९५१ में हुए डॉ मोतीचन्द्र के घर। एक वर्ष पहले ही मैं इलाहाबाद से आया था और सेंट जेवियर्स कॉलेज में हिन्दी पढ़ाता था। उस समय नरेन्द्र जी की जो छवि मेरे मन में थी, वह प्रणय के एक मधुर गीतकार की थी। प्रगतिवाद के रास्ते पर काफी दूर जाकर वे लौट आए थे। "साँझ होते ही न जाने छा गईं कैसी उदासी" या "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे...." जैसी अनेक मोहक पंक्तियाँ मन में गूँजती थीं। विद्वान समीक्षकों ने बहुत समझाया कि यह सभी रोमांस है, पर मुझे सदैव यह लगा कि ये लोग सस्ती रूमानियत और आदमी के भीतरी दर्द में फर्क नहीं कर पाते। प्रेम के प्रत्येक रूप की गहरी ईमानदार अभिव्यक्ति मुझे उस समय बहुत भाती थी और रूमानियत कहकर उसे लांछित करना कविता ही नहीं, आदमी की तरुणाई और आदमियत के प्रति अन्याय लगता था। खैर डॉ मोतीचन्द्र ने परिचय कराया और अपनी सहज बनारसी मुस्कान के साथ यह भी जोड़ दिया- "नरेन्द्रजी, बंबई विश्व विद्यालय ने हिन्दी की पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई प्रारंभ कर दी है। सिर्फ दो रिकॅग्नाइज्ड प्रोफेसर हैं और प्राध्यापक बोर्ड के चेयरमैन हैं आपके प्रभातजी।" और कुछ रुककर बोले - "यह बंबई है। पता नहीं यहाँ हिन्दी कैसे चल पायगी । पता नहीं काम कैसे चलेगा।" यह बात तो मुझे भी परेशान कर रही थी। शायद इसीलिए बात परिचय से फिसलकर यूनिवर्सिटी पर आ गई। वैसे मैं पंडित जी की कविता की बात शुरू करने के लिए उत्सुक था, पर मैं कुछ कहूँ, उससे पहले ही वे बड़े आश्वासन भरे लहजे में बोले, जैसे मेरे भीतरी संकोच और सहमेपन को भांप गए हों- गीता में भगवान ने कहा है- "नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते। (इस संसार में ज्ञान से अधिक पवित्र करने वाला और कुछ नहीं है।) आप चिन्ता न करें; ज्ञान की साधना स्वयं सब सँभाल लेगी। यह तो रोशनी की यात्रा है। इसकी राह कोई नहीं रोक पाएगा। आप कर्म कीजिए, फल की चिन्ता मत कीजिए। वह निश्चित रूप से मिलेगा।" उस दिन पहली बार लगा कि पंडितजी केवल रूमानी कवि ही नहीं है; उनका व्यक्तित्व भांवुकता से बहुत ऊपर उठ गया है।

पंडितजी की आत्मा में एक भव्य आस्थावान रचनाकार था, जो भारतीय मनीषा और मूल्यों से प्रभावित ही नहीं था, उनका प्रतिविश्व भी था और उनका रचनाकार एक लम्बी यात्रा के बाद सोच- समझकर आस्था की इस भूमि पर आया था। देश-विदेश के साहित्य को उन्होंने पढ़ा था। हिन्दी या संस्कृत से नहीं, अंग्रेजी से एम्.ए. किया था। उनकी सौम्य मुस्कान और कोमल वाणी से यह अनुमान नहीं लगता था कि कभी ये आजादी की लड़ाई में काँग्रेस के एक अग्निपंथी विद्रोही सदस्य और देवली जेल में भूख हड़ताल के अगुवा थे। मार्क्सवाद का भी इन्होंने गहरा अध्ययन किया था। बंबई से निकलने वाले कम्युनिस्ट पत्र "नवजागरण" के चार संपादकों में एक थे। लाल चीन और रूस की जय के गीत भी इन्होंने लिखे। पर, यह सब देखने और करने के बाद वे अपनी मूल आस्था की भूमि पर आ गए। इस आस्था के कारण वे न कभी झुके और न कभी टूटे। इसी आस्था ने उन्हें कभी सूखने न दिया। उनकी आन्तरिक शक्ति का अंदाज इस बात से लग सकता है कि जहाँ वे फिल्मों में प्रवेश करके फिल्मी नहीं हुए, वहीं इन्होंने कभी त्रस्त होकर पलायन की बात नहीं सोची। हिन्दी के कई प्रख्यात कवि और लेखक फिल्मी जगत में आए और दुखी होकर उसे त्याग कर साहित्य की अपनी निजी चिर-परिचित दुनिया में लौट गए। पंडित जी में न दैन्य जगा और न पलायन। अपनी साहित्यिक चादर में उन्होंने कोई दाग नहीं लगने दिया। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि फिल्म के गीत "चश्मे बद्दूर' वाली जबान में ही लोकप्रिय नहीं होते। "ज्योति कलश छलके" इसका प्रमाण है।

मुझे पंडित जी की कविताएँ, विशेषकर प्रारंभिक कविताएँ-काफी पसंद हैं। पर, उनकी कविताओं से कहीं अधिक वे स्वयं मुझे अच्छे लगते थे और आदरणीय लगती थी भारतीय संस्कृति के मंदिर में जागती हुई निष्कंप दीप शिखा की तरह उनकी चेतना, जो कभी मंद नहीं हुई। मैंने उन्हें उल्लास के क्षणों में देखा- षष्ठिपूर्ति के अवसर पर बच्चनजी से आशीर्वाद लेते हुए और लता मंगेशकर द्वारा चरणस्पर्श के समय बेटी को आशीर्वाद देते हुए। मैंने उन्हें विषाद घड़ी में भी देखा-- पंडित सुदर्शन के निधन पर उनके पार्थिव शरीर को प्रणाम करते हुए। पर उनके चेहरे पर सदा समत्व भाव की वही आभा दिखाई पड़ी, जो आसक्तियों से मुक्त कर्मयोगी की

विशेषता है।

पंडितजी के निधन का समाचार मुझे दिल्ली में मिला, रेडियो से। सहसा एक झटका लगा। पंडित जी को देखकर और उनसे बातें करते हुए कभी ऐसा नहीं लगा था कि वे इतनी जल्दी चले जाएँगे। बाद में पता लगा कि अन्त तक अनातंकित थे। सवेरे उन्होंने दो कविताएँ लिखीं-- एक पुत्र पारितोष के नाम और दूसरी भाभी जी के लिए। एक तरह से ये कविताएँ ही इस कवि की वसीयत थीं। इन कविताओं से लगता है कि सवेरे से ही वे जाने की तैयारी कर रहे थे और उसी दिन इस तरह चल दिए जैसे "पुराने वस्त्र को उतारकर आत्मा चल देती है।" बंबई आने पर मुझे चोपड़ाजी का समाचार मिला कि "महाभारत सीरीयल" में पंडितजी की जगह परामर्शदाता के रूप में आप कार्य कीजिए। " मै विश्वास नहीं कर सका, क्योंकि इस क्षेत्र के लिए नया था। और पंडितजी की जगह भरना, मेरे लिए क्या, बड़े-बड़े दिग्गजों के लिए संभव नहीं था। मेरे मन में फिर वही सवाल उठा जो सन् ५१ में मोतीचन्द्र जी के घर में उठा था कि "पता नहीं कर पाऊँगा या नहीं।".....और एक बार फिर पंडितजी का आशीर्वाद और गीता की पंक्तियां याद आ गईं- "करमण्ये वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन" ।उसी आशीर्वाद की याद को जगाकर मै तुपकरी जी की बात से सहमत हो गया और एक नए "महाभारत" से जुड़ गया।

पंडित नरेंन्द्र शर्मा

●डॉ. रामसकल शर्मा

"भारत की मिट्टी में वह सुवास है, जो अन्यत्र नहीं। मेरी मनीषा, ऋषियों की चिन्तनधारा का प्रसाद है। वह केन्द्र की ओर उन्मुख हो चुकी है। वह धुरी से चलकर परिधि को प्रभावित करेगी और शक्ति के अभाव में वहीं शून्य में विलीन हो जायेगी। उसकी चिंता भी हमें करनी चाहिये।" ये शब्द हैं कविवर नरेन्द्र शर्मा के, जो उन्होंने एक विशेष साहित्यिक चर्चा के अवसर पर व्यक्त किये थे।

आचार-विचार से वे सोलह आने भारतीय थे। चिंतन, मनन, सत्यप्रेम, स्पष्टवादिता, आदि अनेक गुण उनमें अनायास ही समा गये थे। जो भी उनसे एक बार मिला, वह पुनः उनसे बिना मिले नहीं रह सकता था। जो बार-बार मिला, वह उनका पारिवारिक सदस्य ही बन गया। वैज्ञानिक जड़ता को फोड़कर इतनी प्रीति कहाँ से इस कवि के हृदय में समा गई थी, कहा नहीं जा सकता। ये परम्परा के पोषक एवं नैतिकता के स्वप्नदर्शी शुद्ध समर्पण की भावना के कवि थे। उनके कवि एवम् व्यक्ति में कौन बड़ा था, यह कहना बड़ा ही कठिन है। मेरा विश्वास है कि कवि को संवारने में श्रीमती सुशीला शर्मा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कवि बाहर और भीतर दर्पण की भांति निर्मल था।

एक स्थल पर उन्होंने लिखा है, "हम राम को हैमलेट बनाने के कायल नहीं हैं। गंगा उलटी नहीं बहाई जा सकती। वह जहाँ सागर से मिलती है, वहाँ से कोई नया बादल उठे, आकाश में छाए और टूटकर बरस पड़े, तभी नदी में पानी बहेगा। बहाव इसी प्रकार नया हो सकता है।" उनका दृढ़ विश्वास था कि "काल की निरंतर प्रवहमान धारा में व्यक्ति का अस्तित्व बहुत लघु है। ऐतिहासिक सत्ता किसी के बनाये नहीं बनती। विज्ञापन आदि के द्वारा किसी विशिष्ट कालाविधि के लिए भले ही किसी का कुछ नाम हो जाय, पर समय का शाश्वत प्रवाह किसे रहने देता है ? यदि व्यक्ति में सामान्य से इतर कोई योग्यता है , तो उसे दौड़-धूप करने की आवश्यकता नहीं। समय उसका मूल्यांकन स्वयं करेगा।"

उनके "प्रवासी के गीत" को यदि कवि की प्रथम प्रमुख प्रतिनिधि

रचना मानकर उसे "मील के पत्थर" की उपमा दें, तो उनके काव्य को परखने में सुविधा होगी। 'प्रवासी के गीत' के पूर्व की रचनाएँ भावुक कवि की स्वच्छंदतावादी अभिव्यक्ति हैं। इन पर कहीं-कहीं पंत की तो कहीं महादेवी वर्मा की और यत्र -तत्र वर्ड्सवर्थ और शेली की भी छाप स्पष्ट देखी जा सकती है; वहाँ तक कवि पर छायावाद की कुहेलिका के दर्शन भी यदाकदा हो जाते हैं, किन्तु "प्रवासी के गीत" में सुकुमार स्वाधीन कवि की सरल भावनाएँ सहज रूप में प्रवाहित हुई हैं। प्रेम और श्रृंगार का स्पष्ट चित्र सामने आया है। जीवन की मादक लालसा और सरस यौनानुभूति गीतों के माध्यम से छलक पड़ी हैं। उनमें अनुराग और भोग दोनों की स्वीकृति है। "प्रवासी के गीत" के कवि की विरहजन्य आकुलता, स्मृति और विवशता भी दर्शनीय है। स्वयं को "मरघट का पीपल" कहकर कवि मानव को नियति के हाथों पराजित मान लेता है। इसीलिए उसमें निराशा एवं करुणा की अभिव्यक्ति भी घुलमिल गई है। प्रकृति में मानवीकरण का भी अपने ढंग से सदुपयोग किया गया है। कुल मिलाकर यह कृति जीवंत सृष्टि है।

"पलास-वन" कवि की अत्यन्त प्रौढ रचना है। यहाँ तक पहुँचकर कवि शक्ति संपन्न हो गया है। प्रकृति-वर्णन में उसकी आत्मा सोलह आने रम गई है और प्रभात, संध्या, रात्रि, चांदनी, टेसू के फूल और नीम आदि वर्णनों में नैसर्गिक छटा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दीख पड़ती है।

नरेन्द्र जी ने अपने काव्य में नारी के विविध रूपों को स्थापित किया है। किन्तु अब तो नारी उनके लिए समस्त विश्व को संचालित करने वाली जीवन- शक्ति देवी ही बन गई है। कवि नारी के प्रति इतना संवेदनशील हो चुका था कि उसे पुरुष द्वारा ठगी नारी की एक परंपरा-सी दिखलाई पड़ती थी।

जीवन में नवीन मूल्यों की खोज कवि का लक्ष्य रहा है। पुराने मूल्यों को तोड़ने वाले मूल्य निर्माण की अनिर्वायता भले ही न स्वीकारें पर आज युग को पुराने मूल्यों की स्थापना की ही अधिक आवश्यकता है। युग पुरुष गाँधी जी से कवि बहुत अधिक प्रभावित जान पड़ता है। "रक्त-चंदन" का संपूर्ण काव्य-संग्रह तथा अनेक अन्य स्फुट कविताओं में बापू को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की है। गांधीजी के व्यक्तित्व में कवि कबीर की वाणी, तुलसी की काव्य

सृष्टि, अकबर के शासन-तंत्र तथा लोकमान्य तिलक के स्वराज्य-मंत्र की समन्वित प्रतिमा देखता है। यह उसके मौलिक चिंतन का ही प्रमाण था।

यद्यपि इस कवि ने छायावाद के प्रौढ़ परिवेश में काव्य सृजन का प्रारंभ किया, किन्तु इसकी कविताएँ छायावाद की परिधि में पूर्णतः बँध नहीं सकीं। प्रगतिवाद के काव्य-तत्वों से कवि प्रभावित अवश्य हुआ और बहुत दिनों तक समीक्षक उसे प्रगतिवादी ही समझते रहे। परन्तु राजनीतिक समाजवाद की प्रगतिवाद के नाम पर काव्य में लाने तथा रूस के साम्यवाद के गीत गुनगुनाने के पक्षपाती वे कभी नहीं रहे। प्रगति को जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया मानकर उन्होंने उसे काव्य के माध्यम से आगे बढ़ाया। यथार्थ की भूमि पर किसान, मजदूर, भिखारी और दीन-हीन कंगालों के प्रति भी कवि जागरूक रहे। प्रयोग तथा नयी कविता की आँधी में जब दिनकर, बच्चन, और अंचल आंख-मिचौली खेलने लगे, तब भी यह वाणी का वरद् पुत्र तटस्थ खड़ा रहा। प्रचार की मस्त लहरें उसके मानस को कभी विचलित नहीं कर सकीं। तभी तो इस कवि ने वादों के दलदल तथा संकीर्ण खेमों से सत्त दूर रहकर काव्य साधना की क्योंकि उसका अटल विश्वास था कि भौतिक समृद्धि से वैज्ञानिक उन्नति भले ही हो जाय, परन्तु नैतिक विकास के लिए आध्यात्मिकता की परम आवश्यकता है। राष्ट्र का सच्चा उत्कर्ष इसके बिना संभव नहीं है।

लगभग ४० वर्ष की लंबी काव्य साधना में इस कवि ने आशा, उत्साह, राष्ट्रप्रेम, और समाजसुधार, विद्रोह, निराशा, प्रकृति, प्रेम, शृंगार पर प्रेम और आध्यत्मिकता के अनेक आयामों का सफल उद्घाटन किया है। ये अखण्ड राष्ट्रीय निष्ठा के महान कवि थे।

पंडित नरेन्द्र शर्मा के निधन ने सांस्कृतिक लेखन के क्षेत्र में एक रिक्तता भर दी है। विशेषकर बंबई नगर में प्राध्यापक और विचारक तो इसलिए निराश हैं कि अब वे साहित्यिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए किसकी ओर निहारें। यह वटवृक्ष जिसकी छाया में हर गुत्थी का उत्तर और प्रत्येक समस्या का समाधान छिपा था, वह आज कहाँ है ?

"सांस में बसी सुरभि हैं नरेंद्र शर्मा"

●सुरेश सलिल

नरेन्द्र शर्मा नहीं रहे। हिन्दी के अपने सबके आत्मीय कवियों में से एक नरेन्द्र शर्मा, जिन्हें इधर एक अर्से से हम पंडित नरेन्द्र शर्मा के बतौर जानते रहे हैं। नरेन्द्र शर्मा उत्तर छायावाद और प्रगतिवाद के संधिकाल की देन थे। कविता के क्षेत्र में उनके प्रेरणापुरुष सुमित्रानंदनपंत रहे, लेकिन उन्होंने अपनी राह छायावाद की रूढ़ियों से अप्रभावित रहते हुए बनाई और माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की काव्य-परंपरा को आगे बढ़ाते हुए हिन्दी गीत को एक ऐसा व्यापक और उदात्त चरित्र दिया, जो आज भी मील का पत्थर बना हुआ है। हिन्दी कविता के फलक पर बच्चन और नरेन्द्र का उदय लगभग एक ही अवधि में हुआ। तीसरे दशक के उत्तरार्ध से लेकर चौथे दशक के अंत तक का १५ वर्षों का समय हिन्दी कविता की गीत-धारा के लिए बहुत महत्व का दौर माना जाना चाहिए। "निशा-निमंत्रण" "आकुल अंतर" और "प्रवासी के गीत" इसी बीच रचे गये। और ये वे कृतियां हैं, जिन्होंने एक ओर जहां कविता और सामान्य जन को निकट से निकटतर लाने में निर्णायक भूमिका निभाई, वहीं समकालीन कवि-कर्म को भी बहुत गहरे तक प्रभावित किया। उस दौर के बच्चन और नरेन्द्र एक अर्से तक कवियों के कवि बने रहे। (उन अर्थों में नहीं, जैसे कि एजरा पाउंड को "पोएट ऑफ पोएट्स" कहा जाता रहा।) लेकिन नरेन्द्र शर्मा के बारे में एक बात गौर करने की यह है कि वे रूढ़ि कभी नहीं बने, जबकि परवर्ती बच्चन अपनी रूढ़ि आप बनते स्पष्ट तौर पर देखे गये।

"आज न सोने दूंगी बालम", "मेरा घर हो नदी किनारे", "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे", के रचनाकार से प्रगतिवादी धारा के संपर्क से एक दौर में "नील लहरों के पार", "लगी है चीन देश में आग", "जाग रे हिन्दुस्तान जाग" जैसे जयगीत भी लिखे। लेकिन यह नरेन्द्र शर्मा की ही सामर्थ्य थी कि वे अपने-आपको प्रगतिवादी रूढ़ियों की गिरफ्त से भी बचा ले गये। और तो और रूढ़ अर्थों में कवि बने रहना भी उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। राजनीति, फिल्म, ज्योतिष- कहीं भी देखिये, नरेन्द्र शर्मा हैं भी और नहीं भी हैं। राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़कर वे जेल गये- "डेथ सॅल" मानी जाने वाली राजस्थान की देवली कैंप जैसी जेल में लंबा अरसा गुजारा, अनशनकारी कैदियों की अगुवाई की, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से जुड़कर उपसचिव का पद संभाला, पंडित नेहरू के सहायक

रहे, कम्युनिस्ट पार्टी की ज्ञान साहित्यिक पत्रिका "नया साहित्य" के संस्थापक संपादक रहे, फिल्मों से जुड़े तो देविका रानी से लेकर बी.आर. चोपड़ा तक ने उनकी प्रतिभा का लोहा माना। रेडियो से जुड़े तो "विविध भारती" "हवामहल" जैसे सदाबहार कार्यक्रमों का ढांचा खड़ा करके आकाशवाणी को रेडियो सिलोन की तर्ज पर लोकप्रिय बनाया, बंबई की फिल्मी दुनिया पंडित नरेन्द्र शर्मा के रूप में उन्हें ज्योतिषी बनाने पर भी आमादा रही। लेकिन अंत में देखिये तो वे सिर्फ नरेन्द्र शर्मा के ही रूप में नजर आयेंगे।

भगवती चरण वर्मा ने लभगभ पचीस साल पहले लिखा था, "आज तीस वर्ष बाद जब मैं नरेन्द्र शर्मा की कविताओं को पढ़ता हूं तब मुझे लगता है कि १९३२-३३ में मैंने नरेन्द्र शर्मा के संबंध में जो मूल्यांकन किया था और जो धारणा बनाई थी उसमें मुझसे किसी प्रकार की गलती नहीं हुई थी। अभिव्यक्ति के संतुलन और भावों के सौष्ठव में नरेन्द्र शर्मा हिन्दी के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत के समकक्ष आते हैं। वैसे सुमित्रानंदन पंत नरेन्द्र से कहीं अधिक ऊंचे शिल्पी हैं। उनके शब्द-सौंदर्य को अभी तक तो कोई नहीं पा सका है, लेकिन नरेन्द्र शर्मा में भी एक दूसरे प्रकार का शब्द-सौंदर्य है जो अनायास ही दूसरों को प्रभावित कर देता है।

"सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के कवि हैं। नरेन्द्र शर्मा संघर्षों के कवि हैं। पर दोनों ही इन विचित्र माध्यमों से एक स्थान पर पहुंचते हैं। जहां है एक तरह की आध्यात्मिक अनुभूति। इन दोनों कवियों में शरीर तत्व की एक प्रकार से उपेक्षा है- आत्मिक अनुभूति दोनों का लक्ष्य है। इस आत्मिक अनुभूति को पाने के लिए जहां पंत सर्वप्रथम प्रकृति के सौंदर्य के अध्यात्म वाले माध्यम से बढ़ते हैं, वहां नरेन्द्र शर्मा जीवन और कर्म के अध्यात्म वाले माध्यम से बढ़ते हैं। यहां नरेन्द्र शर्मा की भावनात्मक अभिव्यक्ति में एक प्रकार का सम्मोहन रहा है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में यह भावनात्मक अभिव्यक्ति विश्व के सर्वश्रेष्ठ साहित्य में रखी जा सकती है।"

चालीस के दशक के अंत में, जब नरेन्द्र शर्मा का कविता-संग्रह, "पलाश-वन" प्रकाशित होकर सामने आया तो शमशेर जी ने लिखा, 'प्रवासी के गीत' में जो एक ओर प्रेम में तपते-सुलगते हृदय की आक्रांत कल्पनाएं थीं, सजीव और दर्दनाक रूप और सौंदर्य के आकर्षण की मादक हंसी यानी "छलना" का जो एक गहरा घिरा व्यापार

था– उनसे मुक्ति किस प्रकार मिल सकेगी और उसका क्या रूप होगा, इसी प्रश्न की गंभीरता 'पलाश–वन'' में स्पष्ट हुई है। पंतजी को लोग कहते हैं कि वे अक्सर नरेन्द्र की कविता में हैं– हां, थे और हैं, किंचित अब भी, उनकी सात्विक कोमलता की एक छाप में, किन्तु भाषा के अपनाव में और मुहावरों में, उसके संस्कार में, अभिव्यंजना की स्वस्थ स्वाभाविकता में नव कवि का अपना ''आधुनिक'' व्यक्तित्व है। रचना में कवि का अपना सामान्य नियम जान पड़ता है भाषा की शुद्ध व्यावहारिकता का न टूटना। मुहावरे का सौंदर्य प्रत्येक पृष्ठ पर बोल रहा है।... उसमें उर्दू अंदाज और मुहावरे की चाशनी, किंचित ब्रजभाषा अनुप्रासपूर्ण और चीनी लिरिक की-सी (जैसा कुछ रूप अनुवादकगण हमें समझा सके हैं) गोलाई है। साथ ही उसमें कवि–हृदय की संपूर्ण तार्किकता है और इन सब के पीछे प्रेमी कवि व्यक्तित्त्व की शाश्वत् पृष्ठभूमि... अनेक–अनूप–रूपा चांदनी का संसार। विषयों की विविधता को लेकर भी कवि का विशिष्ट रूप एक लिरिसिस्ट, एक गायक का है। इस दिशा में हिन्दी का नव कवि बहुत कुछ सीख सकता है।''

हिन्दी के अमर कथा शिल्पी अमृतलाल नागर के खाते में तो नरेन्द्र जी से जुड़े अध्याय ही अध्याय हैं। उनके गृह (खुर्जा) बुलंदशहर का जिक्र छिड़ने पर वे कहते हैं कि हिन्दी साहित्य के पिछले ''ढाई सौ वर्षों में कुल जमा दो प्रसिद्ध कवि वहां से मिले एक सेनापति, दूसरे नरेन्द्र शर्मा।'' एवं मित्र के बतौर नरेन्द्रजी के बारे में सोचते हुए वे अनुभव करते हैं कि ''इस नन्हें से आदमी में ऐसा चुंबक है, जो सहज ही में सबको अपनी ओर खींच लेता है।'' और जब संस्मरण सुनाने लगते हैं तो नरेन्द्र शर्मा से जुड़ी छोटी से छोटी बात तक का जिक्र करना नहीं भूलते। ''मैं यदि 'महाकाल' उपन्यास, पूरा कर सका तो उसका श्रेय नरेन्द्र शर्मा को ही मिलना चाहिए। पुस्तक के आमुख के रूप में उन्होंने एक कविता भी लिखी थी। सुश्री सुशीला गोदीवाला से नरेन्द्र जी का विवाह तय होने की बात सुनकर पंत जी ने कहा था, ''ये नरेन भला ब्याह करेगा ?... मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानता हूं, यह बड़ा मुट्टाड़ है।' विवाह के बाद दंपत्ति के स्वागत में मांगलिक गीत फिल्म अभिनेत्री सुब्बुलक्ष्मी ने गाये थे।

नागर जी की हाल ही में प्रकाशित आत्मकथा ''टुकड़े–टुकड़े दास्तान'' में नरेन्द्र शर्मा पर एक स्वतंत्र अध्याय है, जिसे उन्होंने

शीर्षक दिया "वाणी के अलंकार नरेंद्र"। संस्मरणों के एक अन्य संग्रह "जिनके साथ जिया" में भी नागर जी ने नरेन्द्र शर्मा को एक स्वतंत्र अध्याय दिया है। उसमें एक स्थान पर वे कहते हैं– "सन् ३६–३७ के दिनों नरेन्द्र शर्मा के गीत गा–गुनगुना कर हम लोग अपने नौजवान– दिलों में प्यार और रोमांस की भावनाओं को पोसा करते थे।... अपने साथी से लगने वाले बराबर की आयु के बच्चन, नरेन्द्र हमारे मन मोहने लगे थे।"

नरेन्द्र शर्मा के गीतों की मन मोहने की इस ताकत, इस सामर्थ्य के दर्शन अभी बिल्कुल अभी के विष्णु चंद्र शर्मा जैसे कवियों के यहां भी किये जा सकते हैं। बल्कि विष्णु ही क्यों जयदेव और अमरुक की परंपरा को शरत के "देव–दास" और रेणु के हीरामन तक देखने और उससे जुड़ने को जो जितने लोग भी "अभिशप्त" हैं उनके लिए नरेन्द्र शर्मा अहम कवि हैं। उनके काव्य व्यक्तित्व का जायजा कवि शमशेर बहादुर सिंह की तर्ज पर समीक्षकीय नजरिए से लेना शायद अधिक पसंद करेगा। शायद इसीलिए, "प्रवासी के गीत',, "कामिनी", "अग्निशस्य", "कदली–वन" आदि की कुछ कविताओं को बेहद पसंद करने वाले और नरेन्द्र शर्मा के कवि–व्यक्तित्व को रक्तमुखी फूल की उपमा सेजोड़ने वाले विष्णुचंद्र शर्मा एक दिन यक–ब–यक सवाल कर बैठते है कि "एक प्रसन्न सहज कवि एकाएक वार्धक्य और कुछ आध्यात्मिक लहजे में उपदेशक क्यों बन जाता है ?" ("इन लोगों के मध्य") उसका जवाब देते हुए नरेन्द्र जी ने जो आत्मस्वीकृति की है, शायद उससे सटीक विश्लेषण उनके कवि व्यक्तित्व का हो नहीं सकता, कोई कर नहीं सकता। वे कहते हैं, "भाई, वार्धक्य हमारे युग का एक अभिशाप है। निराला जी जीवन भर देते रहे। उत्सर्ग करते हुए वे कभी थके नहीं। यही उनके कवि व्यक्तित्व का राज है। पंत जी से मेरा गहरा परिचय है। निराला जी शायद मजाक में मुझे "पंत स्कूल" का कवि कहा करते थे। लेकिन मैं यह जानता हूं कि पंत जी के व्यक्तित्व में वह उत्सर्ग नहीं है। वे व्यक्तिवादी हैं। मैं खुद अपनी दुर्बलताओं का कवि हूं। "शिवत्व" जो निराला जी के व्यक्तित्व में है, यह हमारी पीढ़ी में किसी में नहीं। उन्हें सब कुछ पी जाना था, गरल, कटुता, उपेक्षा... मैं अपने अंत:संघर्ष में अक्सर मध्यमवर्गीय संस्कारों से संघर्ष करता रहा हूं।... मेरे मन में अपनी दुर्बलताओं से संघर्ष रहा है। प्रणय कविताओं में मैंने इस अंतर्विरोध का चित्रण किया है। मेरा यह स्वभाव है कि मैं किसी अंतर्द्वन्द्व को दोहराना

नहीं चाहता। शिल्प के प्रति भी मेरे मन में एक ऐसा आग्रह है। बच्चन ने अपनी प्रणय कविताओं में एक ही सांचे को बहुत बार दोहराया है। मैं, एक सांचा दो बार इस्तेमाल नहीं करता। निराला जी के गीत और लंबी रचनाएं इस दृष्टि से मेरे सामने हर क्षण रही हैं। उनके गीतों का स्वर, भाव, दृश्य, मन:स्थिति किसी दूसरे गीत में फिर दुहराकर नहीं आई है। यों राजनीति मेरा विषय नहीं है। राजनीतिक आंदोलन में गया हूं। प्रेम, सौंदर्य और संवेदना के अगोचर तत्वों को देशकाल में तटस्थ रूप में देखता-परखता रहा हूं। आज छोटे-छोटे राजनीति-विशारद भी बड़े-बड़े साहित्यकों को रास्ता दिखलाने लगे हैं। इस स्थिति में अंतर्द्वन्द्व हम सबके मन में है... क्योंकि हमें अपने भावुक मन से अनेक बार समझौता करना पड़ रहा है।"

अपनी इस आत्मकथा में नरेन्द्र शर्मा अपनी प्रसन्नता और सहजता के एकाएक गायब होते जाने को उसी कुसुम कली की तरह देख रहे हैं, जो कब की सूख चुकी है और ट्वीड का कोट भी फट चुका है। किन्तु उस कुसुम कली से निकलती सुरभि ? उस सुरभि को क्या हम, आप, सभी भूल सकेंगे ? नरेन्द्र शर्मा की कविता वही न सुरभि जा सकने वाली है।

मेरे आदि पथ-प्रदर्शक : पंडित नरेन्द्र शर्मा

● डॉ. गिरिजाशंकर त्रिवेदी

पं. नरेन्द्र शर्मा के परिचय में आना भी एक विचित्र संयोग था। गांव से हाईस्कूल की परीक्षा पास करके नौकरी की तलाश में बंबई आ गया था। एक सुपरिचित सज्जन ने बताया कि पंडित नरेन्द्र शर्मा आकाशवाणी में बहुत बड़े अधिकारी हैं। वे आसानी से काम दिला देंगे। उनका पत्र लेकर मैं आकाशवाणी के कार्यालय पहुंच गया।

सभी पैंट-बुशर्ट वाले साहब दिखाई पड़े। गांव से आया मैं उनसे बात करने का साहस न बटोर सका। तभी धोती-कुरताधारी एक सज्जन दिखाई दिये। उन्हीं से मैंने पूछा- "पंडित नरेन्द्र शर्मा कहां बैठते हैं?" अपने साथ आने का इशारा करके वह एक ओर बढ़े। वे आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे, एक बड़े से शानदार केबिन में घुसे। बढ़िया-सी कुर्सी पर बैठकर उन्होंने पूछा- "क्या काम है?" मैंने फिर स्पष्ट किया कि "साहब, आपसे नहीं, पंडित नरेन्द्र शर्मा से काम है।"

उन्होंने बताया कि वे ही नरेन्द्र शर्मा हैं और मैंने बड़े संकोच के साथ अपनी मुट्ठी में दबा हुआ वह लेटर उन्हें दे दिया। उसे पढ़कर उन्होंने पूछा "क्या-क्या लिखते हो?" मेरे मौन रहने पर फिर पूछा- "कहानी, कविता, नाटक, चुटकुले-इनमें से कौन -सी चीज अच्छी तरह लिख सकते हो?"

सवाल यह था कि कुछ लिखना जानता होऊँ, तब तो बताऊँ कि क्या लिखता हूं। अभी तो सीधे स्कूल से निकल नौकरी की तलाश में बंबई आ गया था। मेरी मानसिक द्विविधा को समझकर और विवशता का अनुमान लगाकर उन्होंने समझाया कि लिखकर लाओ। चुटकुले लिखकर लाने का वायदा करके धीरे से खिसक लिया।

यह अनुभव हो गया कि बिना पढ़े वह भी बिना खूब पढ़े-कुछ भी लिखना, संभव नहीं है। इसी तरह इसकी भी जानकारी मिली कि यदि अच्छे वर्ग में बैठना-उठना है और अच्छा काम पाना है, तो अभी पढ़ते रहना चाहिए। पंडितजी के साथ हुई इस मुलाकात ने जैसे भविष्य के द्वार खोल दिये। मैंने अगली पढ़ाई चुनौती के

रूप में स्वीकार कर ली। फिर तो 'कमाई के साथ पढ़ाई'' शुरू कर दी।

''नवनीत'' मैंने और पं. सत्यकाम विद्यालंकार ने एक साथ ही 'ज्वाइन' किया। वे धर्मयुग से सेवानिवृत होकर नवनीत के संपादक होकर आये थे और मैं उनके सहायक के रूप में रखा गया था।

श्री सत्यकाम में यह विशेषता थी कि वे मुझ जैसे साधारण पढ़े–लिखे को भी संपादन का काम जानने के लिए प्रोत्साहित करते रहते। कुछ बात बिगड़ती तो बड़ी सरलता से समझाते। उत्साह बढ़ने लगता। एक दिन एक कहानी संपादन के लिए दी। जब मैंने संपादित कर उन्हें दिखानी चाही, तो बोले कि-- ''आकाशवाणी में पं. नरेन्द्र शर्मा बैठते हैं, उन्हें ही इसे दिखा लाओ तथा और कुछ बातें हैं, मैं पत्र लिख देता हूं, उत्तर लिख लाना।''

मुझे नरेन्द्र शर्मा की पहली मुलाकात याद आ गयी। पर संपादक का आदेश भी नहीं टाल सकता था। आकाशवाणी गया। सोचा कई साल हो गये हैं, अब क्या पहचानेंगे ? बाहर बैठे प्यून को परची लिखकर दी। तुरंत बुलाया। नमस्कार करके श्री सत्यकामजी का पत्र और कहानी आगे बढ़ा दी। कहानी देकर मैंने कहा कि पढ़कर देख लें कि संपादन में कहीं आवश्यक चीज तो नहीं कट गयी।

कहानी पढ़ने के बाद उन्होंने गर्दन उठायी और बोले– ''किसने संपादित किया है ?'' मैंने अपना नाम बता दिया, तो उठकर खड़े हो गये और मेरे कंधे को थपथपाते हुए बोले– ''भाई, बहुत अच्छा संपादन करते हो। जो लाइनें तुमने काटी हैं, कटनी ही चाहिए थीं। अब सुन्दर बन गयी है। इधर तुम्हारी कुछ चीजें पत्रों में पढ़ी हैं। अच्छा, एक बात बताओ कि इसके पहले भी कभी मुझे मिले हो ? चेहरा परिचित–सा लगता है।'' बाद में मालूम हुआ कि वह कहानी पं. नरेन्द्र शर्मा की पत्नी सुशीला शर्मा की थी।

मेरी हिम्मत अब तक बंध चुकी थी। मैंने सारी घटना दोहरा दी। तब पंडितजी हंसे और कहने लगे, ''वाह ! लिखते ही नहीं,

संपादन भी करने लगे। बहुत खूब। मैंने कहा था न कि खूब पढ़ो, फिर लिखो।'' उनकी निर्मल, स्पष्ट और स्नेहभरी वाणी सुनकर मेरे आनंदाश्रु छलक आये। इतना ही कहकर कि ''पंडितजी, आपके आशीर्वाद का ही तो यह प्रतिफल है। मैंने उन्हें प्रणाम किया और कार्यालय वापस आ गया।''

फिर तो ''विविध भारती'' और आकाशवाणी से बुलावे आने शुरू हो गये। कई बार विशेष अवसरों पर वार्ता के लिए कॉन्ट्रेक्ट आते, तो मैं जब रेकिार्डिंग के लिए जाता, तो पता चलता कि मेरे नाम का सुझाव पंडित नरेन्द्र शर्मा ने दिया है। मुझे आश्चर्य होता कि इतना बड़ा आदमी, मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति की भी याद रखता है !

दूरदर्शन पर कई बार उनके साथ प्रोग्राम देने का अवसर मिला। रिकार्डिंग के बाद जब मैं पूछ बैठता कि पंडितजी कहां–कहां भूलें हुई हैं। बता दें, तो अगली बार ध्यान रखूंगा,'' क्योंकि हर प्रोग्राम में उनके साथ मैं प्राय: सूत्रधार के रूप में रहता। वे मुस्कराकर कहते– ''भई अच्छे सवाल पूछे तुमने। तुम्हारी आवाज भी बढ़िया है।'' उनकी आदत थी कि वे हमेशा ही उत्साह बढ़ाने वाली बातें करते। भूलों को प्राय: नजरअंदाज कर जाते। यदि भूल समझाते तो भी बड़ी मृदुता से, उसे भी उनके मुंह से सुनने का अपना आनंद होता।

जब मैं नवनीत का संपादक बना, तो उन्होंने फोन पर बधाई दी। कहने लगे ''भाई, मैंने तो कहा ही था और तुम्हारी गति देखकर विश्वास होता था कि नवनीत के संपादन के लिए तुम एक दिन निश्चय ही योग्य सिद्ध होगे।'' अपने निधन के दो दिन पूर्व भी वे टेलिफोन पर काफी देर तक आज के लेखकों और उनकी रचनाधर्मिता पर मुझसे चर्चा करते रहे। उन्होंने इतना साहित्य लिखा है कि उनके ज्ञान की गहराई का अंदाजा लगाना सामान्य बात नहीं है। बच्चों के लिए गांधीजी पर पुस्तक से लेकर पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं पर उनका सृजन अद्वितीय है। भाषा की शुद्धता पर वे हमेशा जोर देते थे, परंतु उनका अगाध पाण्डित्य कभी भी उनके व्यक्तिगत जीवन पर या लोक–व्यवहार पर हावी नहीं हो पाया।

जीवन में मन, वाणी और कर्म की उनकी शुचिता अंत समय तक बरकरार रही। मिलने पर वे अत्यन्त साधारण, सरल और भोले-भाले दिखते थे, पर जब किसी विषय पर बोलना शुरू कर देते तो उनका पाण्डित्य सहस्र गुलाबों की तरह महक उठता था।

जीवन में उन्होंने सदैव एक अग्रज की तरह मेरा मार्गदर्शन किया है। आज सोचने लगता हूं कि यदि मैं सर्वप्रथम उनके पास नौकरी के लिए न जाता तो "पढ़ने-लिखने का मंत्र" कहां से पाता और आज जो कुछ हूं, शायद वह न हो पाता।

वे क्षण

● डॉ. हरिवंश शुक्ल

ऋषि-तुल्य समादरणीय श्रद्धेय स्व. पंडित नरेन्द्र शर्मा के महाप्रयाण से कुछ ही माह पूर्व मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दूरदर्शन पर "महाभारत" की प्रस्तुति के साथ उनका नाम सम्बद्ध जानकर मैं मन ही मन प्रसन्न हो उठा। भारतीय संस्कृति तथा उसकी आध्यात्मिक चेतना के संदेशवाहक के रूप में मैं उनके द्वारा रचित कविमय काव्यकृतियों का अध्ययन कर चुका था। अतः "महाभारत" संबंधी उनकी परिकल्पना से प्रभावित था। "महाभारत" की कथा तथा उसके पात्रों की मिथकीय अवधारणा एवं दार्शनिक व्याख्या ने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। मेरे मस्तिष्क में महाभारत के नारी पात्रों की चारित्रिक विसंगतियों से संबंधित अनेक प्रश्न उथल-पुथल मचा रहे थे। अपनी शंकाओं के समाधान के लिए मैंने इस संबंध में श्रद्धेय पंडितजी को एक पत्र लिखा। उत्तर न पाकर यद्यपि मुझे दुःख अवश्य हुआ, किंतु मेरे विवेक ने पंडितजी की व्यस्तता का ध्यान कर आंतरिक क्षोभ को शांत किया। इसी बीच अचानक मेरा बंबई प्रवास का कार्यक्रम बन गया। मैंने बंबई प्रवासी अपने अभिन्न मित्र प्रतिष्ठित कवि एवं लेखक श्री श्रीनाथ द्विवेदीको अपने कार्यक्रम की सूचना दी। पंडितजी के दर्शन एवं सानिध्य लाभ के लिए मैं बंबई पहुंच गया। किंतु श्री द्विवेदीजी के अपने गांव चले जाने से मैं अकेला ही अपने गंतव्यकी ओर चल पड़ा। पंडितजी के निवास स्थान पर पहुंचते ही उनसे भेंट हो गयी। मैंने प्रणाम के साथ ही ज्यों ही अपने नाम का उच्चारण कर अपना परिचय देना चाहा, उन्होंने मुझे अत्यंत स्नेह से हृदय से लगा लिया और मेरे पत्र का उत्तर न दे पाने के लिए स्नेहपूर्ण विनम्रता के साथ खेद व्यक्त किया। मैं उन्हें अविरल निर्निमिश नेत्रों से देखता रह गया। अपने साहित्यिक जीवन में ऐसे विनयशील महामानव के दर्शन प्रथम बार किये थे। उच्च शीर्षस्थ प्रतिष्ठा प्राप्त साहित्यकारों से मिलने का अवसर मुझे अवश्य मिला है, किंतु इतनी विनयशीलता तथा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार की कल्पना भी मैं नहीं कर सका था। अपने समीप बिठाते हुए सर्वप्रथम उन्होंने मेरी कुशलतादि के समाचार पूछे। संक्षिप्त परिचय के बाद मैंने अपनी साहित्यिक अभिरुचि तथा लेखकीय गतिविधियों का उल्लेख करते ही बड़ी आतुरता के साथ पंडितजी के समक्ष अपनी मूल जिज्ञासा प्रस्तुत कर दी।

"महाभारत" के नारी पात्रों की चारित्रिक विसंगतियां तथा दूरदर्शन के माध्यम से सामान्य जन–मानस के समक्ष उनकी प्रस्तुति पर चर्चा प्रारंभ हुई। मेरा प्रश्न यह था कि कहीं चारित्रिक विसंगतियों के कारण सत्यवती, कुंती तथा द्रौपदी के प्रति जनमानस में हमारी सांस्कृतिक चेतना का विकृत रूप न उत्पन्न हो जाये और हमारे ये ऐतिहासिक पात्र अपनी चारित्रिक गरिमा न खो बैठें ? पंडितजी मेरे इस प्रश्न को सुनकर कुछ क्षणों तक मौन रहे। शनैः–शनैः उनकी शांत गंभीर मुखमुद्रा चिंतन के दिव्य आलोक से दीप्तिमान हो मेरी और अपनी किरणें बिखेरने लगी। अपने मंद किन्तु गंभीर स्वर में वे कहने लगे, "अपने बाहरी आवरण तथा युगीन परिवेश के कारण ही महाभारत के नारी पात्रों में विसंगतियों का आभास होता है अन्यथा उनकी चारित्रिक उदात्तता असंदिग्ध है। यदि हम उनके जीवन संदर्भों को उनके युगीन परिवेश में रखकर प्राचीन वाङ्मय के मर्म के उद्घाटन की प्रासंगिकता को अपने अध्ययन का विषय बनायें, तो कोई विसंगति नहीं दिखाई देती और ये पात्र प्रेरणा के विन्दु बन जाते हैं। ये चरित्र जहां एक ओर उच्च बौद्धिक स्तर की अपेक्षा रखते हैं, वहीं उनके सहज किन्तु दिव्य जीवनकी उदात्तता के प्रति सामान्य जन–मानस में विरासत में प्राप्त संस्कारगत अगाध श्रद्धा तथा पूज्य भावना विद्यमान है। वे "दैवी शक्तियों" के प्रतीक के रूप में अपनी गरिमा को सुरक्षित रखने में पूर्ण समर्थ हैं।

"यह बात अवश्य सत्य है कि दूरदर्शन पर इन चरित्रों की प्रस्तुति में बड़ी सावधानी की अपेक्षा है, अन्यथा भ्रम उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है। हमने इस विषय पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। व्यासकृत महाभारत की पौराणिक कथा के अतिरिक्त हमने अन्य सूत्रों से प्राप्त होनेवाली महत्वपूर्ण सामग्री का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया है। इन चरित्रों की जीवन्त प्रस्तुति के लिए प्रतिभावान योग्य पात्रों का चयन तथा सशक्त संवाद रचना की ओर विशेष ध्यान रखा गया है। "महाभारत" की संपूर्ण पटकथा के गुम्फन को सजीव एवं प्रभावशाली दृश्यावलियों की सरंचना द्वारा तथा पात्रों के कुशल अभिनय एवं संवाद रचना में पात्रगत चरित्र को उद्घाटित करने की अद्भुत सामर्थ्य के कारण हम सामान्य जन मानस के विश्वास को प्राप्त करने में सफल हो सके हैं।" पंडितजी ने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा कि महाभारत के संवाद लेखन की शैली की विशेषता यह है कि उसमें घटनाओं–स्थितियों को सजीव चित्रांकित करने की

सामर्थ्य है। पात्रानुकूल शब्दों एवं वाक्यों की रचना में डॉ. राही मासूम रजा ने अथक परिश्रम किया है और अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। "महाभारत" के प्रदर्शन पर आप स्वयं इस सच्चाई से परिचित हो जायेंगे और तब आप अपनी प्रतिक्रिया हमें अवश्य लिखें"। मेरी जिज्ञासा शांत हो गई थी और मैं अपने बंबई प्रवास की सफलता पर आनंद-विभोर हो उठा।

पंडितजी के सान्निध्य का अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिए तथा उनकी अतिप्रिय महत्वपूर्ण काव्यकृतियों पर चर्चा करने के उद्देश्य से मैंने "द्रौपदी", "सुवर्णा" तथा "उत्तरजय" की कथावस्तु एवं रचना के विभिन्न पक्षों पर उनके विचारों से अवगत होने का प्रयास किया। लगभग दो घंटे का समय कैसे बीत गया, हम नहीं जान सके। आज जब मैं उन क्षणों का स्मरण करता हूं तो मेरे सम्मुख ऋषितुल्य श्रद्धेय पंडितजी का दिव्य आभा से मंडित साकार एवं मंदमुस्कान की प्रकाशमयी किरणोंवाला मुख मंडल साकार हो उठता है। आज जब उनकी प्रेरणा से बनने वाला 'महाभारत' अपनी सफलता के नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है, तो उस पर अपनी प्रतिक्रिया किसे लिखूं ?

साहित्य के विद्यार्थी के रूप में मैंने श्रद्धेय स्व. पंडित नरेन्द्र शर्मा के अधिकांश साहित्य का अध्ययन किया है। भारतीय संस्कृति तथा देश की माटी की सुगंध को आत्मसात कर उन्होंने जितना विपुल साहित्य हमें दिया है, वह कालजयी है तथा सुरसरि के समान सबका हितकांक्षी है। आधुनिक साहित्य में महाकवि जयशंकर प्रसाद तथा महाप्राण निराला के समान ही पंडितजी की काव्य कृतियों ने मुझे प्रभावित किया है। मैं ऐसे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न मनीषी एवं युगद्रष्टा कवि तथा महामानव को अपने शत्-शत् प्रणाम अर्पित करता हूं।

●

सुकवि श्री नरेंद्र शर्मा

● क्षेमचंद्र "सुमन"

वैसे तो मैं सुकवि श्री नरेन्द्र शर्मा के नाम और उनकी काव्य-प्रतिभा से उस समय से ही परिचित था, जब उनकी पहली कविता पुस्तक "शूलफूल" १९३४ में प्रकाशित हुई थी। श्री सुधीन्द्र (अब दिवंगत) ने "हिन्दी के कवि किधर ?" शीर्षक से एक लेख लिखकर हिन्दी-जगत का ध्यान खींचा था कि आगे जबकि सारा देश सदियों से लदी हुई दासता को दूर करने में प्रयत्नशील है, तब हमारे राष्ट्र के कवि दीन-दुखी लोगों के दुःख दूर करने और भारतमाता को पराधीनता के पाशविक पाश से मुक्ति दिलाने के बजाय शृंगार और प्रेम की रचनाएं कर रहे हैं।

अपने इसी लेख में श्री सुधीन्द्र ने हिन्दी में प्रचलित स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का सोदाहरण विवेचन करके बच्चन, अंचल और नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों के काव्य की अत्यन्त विध्वंसात्मक आलोचना की थी। उसे पढ़कर मेरे मन पर उस समय कुछ सौम्य प्रभाव नहीं पड़ा था। उन्हीं दिनों श्री नरेन्द्र शर्मा के नये काव्य-संकलन "प्रवासी के गीत" का प्रकाशन हुआ था और इससे पहले उनके "कर्णफूल" तथा "प्रभातफेरी" नामक संकलन प्रकाशित हो चुके थे। "प्रवासी के गीत" और "प्रभात फेरी" की रचनाओं से हिन्दी काव्य जगत में एक प्रकार की सर्वथा नई विचारधारा का सूत्रपात हुआ था।

शर्मा जी की हर कृति को पढ़कर मेरे मानस में कवि नरेन्द्र की रचनाओं के प्रति अनुराग बढ़ा था, वह अभी तक ज्यों का त्यों अक्षुण्ण है। मेरी यह मान्यता है कि शर्मा जी ने रहस्यवाद और छायावाद के इन्द्रजाल तथा कठिन कल्पनाओं से हटकर अपनी अनुभूतियों को मानव-सुलभ भावनाओं में अभिव्यक्त किया है। किसी भी कविता की यह सार्थकता है कि वह सहृदय हो और प्रत्येक उसमें अपनी ही पीड़ा की अनुभूति का चित्र देख सके। सुकवि नरेन्द्र की रचनाएं इस दिशा में पूर्णतः सक्षम, सफल और सटीक उतरती हैं।

जिस समय शर्मा जी ने काव्य-रचना प्रारंभ की थी, तब छायावादोत्तर स्वच्छंदतावादी भीष्मधारा का स्वर्णकाल था और धीरे-धीरे हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर नये काव्य-सूर्य का उदय हो रहा था। ऐसे समय में हिन्दी कविता की लोकप्रियता और सरसता को

आभरण पहनाने वाले कवियों में शर्मा जी का नाम सर्वथा अनन्य और अनुपम कहा जा सकता है।

एक समय था जब शर्मा जी के मादक और मनोहारी गीत हिन्दी की तरुण पीढ़ी में इतने लोकप्रिय हुए थे कि जब उनकी "पलाशवन" नामक रचना प्रकाश में आई तो सबने उसे अत्यन्त कौतूहल से पढ़ा। उसमें उनकी विचारधारा और भी सुंदर होकर हिन्दी पाठकों के समक्ष आई थी। "कामिनी" नामक उनके छोटे से प्रेम–काव्य में तो हमारी इस धारणा को पर्याप्त प्रमाण दिया था। वास्तव में बच्चन, अंचल और नरेन्द्र की इस "त्रयी" ने हिन्दी–काव्य में गीतात्मकता लाकर उसे जो माधुर्य प्रदान किया था, उससे वह लोकप्रियता के चरमशिखर पर पहुंच गये थे। किन्तु यह खेद की बात है कि हिन्दी–आलोचकों की अपेक्षा-वृत्ति या अपने संकोची स्वभाव के कारण शर्मा जी को उन दिनों उतनी ख्याति नहीं मिल सकी, जिसके वे वास्तविक अधिकारी थे।

इसके उपरान्त शर्मा जी के काव्य में परिस्थितिजन्य जो परिवर्तन हुए उनके प्रत्यक्ष दर्शन "मिट्टी और फूल" "हंसमाला", 'रक्त चन्दन", "अग्निशस्य" और "कदलीवन" आदि उनकी अन्य काव्य कृतियों में होते हैं। इन रचनाओं में देश के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का यथातथ्य चित्रण मिलता है। शर्मा जी का "द्रौपदी" नामक खंडकाव्य भी उनकी प्रकाण्ड प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण है।

शर्मा जी का कहना था कि उनके इस काव्य का हिन्दी जगत में यथेष्ट सम्मान नहीं हुआ। संक्षेप में शर्मा जी की रचनाओं में हमें जहां सौन्दर्य और यौवन के मादक चित्र देखने को मिलते हैं, वहां राष्ट्रीयता तथा क्रांति के स्तर भी प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। प्रगतिवाद और गांधीवाद के सफल चित्रण द्वारा उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में पूर्ण मानवतावाद की अवधारणा भी अत्यन्त सफलतापूर्वक की है।

अपने कवि–जीवन के प्रारंभ में शर्मा जी हिन्दी के छायावादी काव्य के ऊध्वर्यु कवि श्री सुमित्रानंदन पंत से विशेष प्रभावित हुए थे, जो उन दिनों इलाहाबाद में ही रहते थे। धीरे–धीरे शर्मा जी उनके निकट संपर्क में आये और बाद में उनका यह संपर्क प्रगाढ़ परिचय में परिवर्तित हो गया। इलाहाबाद में ही शर्मा जी महादेवी

वर्मा, भगवती चरण वर्मा और बच्चन आदि अनेक पुराने और समकालीन साहित्यकारों के सान्निध्य में आये थे।

अपनी साहित्य-संबंधी मान्यताओं के संबंध में शर्मा जी जहां पाठकों की एक नई विचार-सरणि का संकेत देते हैं, वहां वे पर्याप्त प्रेरक भी हैं। उनका कहना था, "मैं साहित्य में मूलत: हेतुवादी हूं। लेकिन व्यक्ति -स्वातंत्र्य और हृदय- स्वातंत्र्य को भी मैं उतना ही महत्व देता हूं जितना कि कल्याणपरक हेतु को।" यह सौभाग्य की बात है कि शर्मा जी यावज्जीवन अपनी इन्हीं धारणाओं के अनुसार साहित्य सृजन में संलग्न रहे।

शर्मा जी उन साहित्यकारों में थे, जो ज़ीवन में पूर्णनिष्ठा रखते हुए भी सर्वथा नवीन तथा उदात्त भाव-भूमि पर अपने साहित्य की सृष्टि करते हैं। इसी को लक्ष्य करके एक बार जब मैंने इनसे इसकी "कैफियत" चाही, तो वे जरा हिचके थे, किन्तु तुरन्त ही अपनी भावभीनी मुस्कराहट बिखेरते हुए उन्होंने कहा था- "जीवन में जिस एक विशेष धारणा से मुझे बल मिला है, वह है अपने को महत्व न देना। मैं आत्मनिरीक्षण का पक्षपाती हूं। दूसरों से प्रेरणा ग्रहण करना ही मेरा चरम लक्ष्य है।"

जब मैंने शर्मा जी से बातों ही बातों में "नये लेखन" के नाम पर प्रकाशित होने वाले साहित्य के विषय में एक बार उनके विचार जानने की उत्सुकता प्रकट की, तो वे थोड़ी देर के लिए बिलकुल मौन हो गये थे। किन्तु फिर अपने स्वाभाविक आवेश और आक्रोश को दबाते हुए किंचित् शालीन मुद्रा में उन्होंने कहा था- "आप इस पीढ़ी के जिन साहित्यकारों की बात करे रहे हैं, उनका कुण्ठित अहं और असफल काम (जो उपलब्धि तथा प्राप्ति के प्रति अत्यधिक व्यग्रता के कारण और भी तीव्र हो जाता है) इनकी रचनाओं को जन्म देता है। आत्मदान में अक्षम ये लोग अपना उदात्तीकरण नहीं कर सकते। सुख-सुविधाओं पर ही निर्भर रहे हैं। ये न अपने-आपको बदल सकते हैं, और न समाज को ही, न अपने प्रति दायित्व का निर्वाह करते हैं, न समाज के प्रति। इसलिए इनका जो भी साहित्य है, वह बनावटी है, टिकाऊ नहीं। समय के प्रवाह में यदि ये टिके रह सके, तो निश्चय ही एक दिन बदल जायेंगे।"

शर्मा जी के ये विचार हमारे लिए जहां प्रचुर प्रेरणा देने वाले

हैं, वहां हम इनसे यह भी जान सकते हैं कि हिन्दी काव्य का यह प्रबुद्ध प्रहरी अपने जीवन के अंतिम क्षण तक साहित्य और समाज के प्रति अपने कर्तव्य से बिलकुल विमुख नहीं था। काश, हम उनके इन विचारों को उतार सकने की शक्ति और सामर्थ्य अपने मानस में पैदा कर सकते। उनकी आत्मा तब ही पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करेगी।

सत्य, धीर, गंभीर साथी

● नीनू मजूमदार

स्व. पं. नरेन्द्र शर्मा और मेरा संबध १९४६–४७ से शुरू हुआ था। वे उत्तर प्रदेश से यहां आये थे, बाम्बे टॉकीज की नयी फिल्म के गीत लिखने। वे हिन्दी के विख्यात कवि थे और उनके गीतों की पुस्तक "प्रवासी के गीत" काफी लोकप्रिय हो चुकी थी। मैं उस समय राजलक्ष्मी पिक्चर्स में काम करता था। "पुल" नामक पिक्चर्स में संगीत दे रहा था। राजलक्ष्मी पिक्चर्स के प्रोड्यूसर पंडित युधिष्ठिर हिन्दी के साहित्य-प्रेमी थे। इसलिए उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि मुझे नरेन्द्र शर्मा की मुलाकात करनी चाहिए और हो सके तो अपनी फिल्म "पुल" के लिए कुछ गीत लिखने का उनसे निवेदन करना चाहिए।

उस समय बॉम्बे टॉकीज में काफी गर्मा-गर्मी हो गई थी। उसमें से उनका पुराना स्टाफ (जो प्रख्यात हो चुका था) बॉम्बे टॉकीज छोड़कर चला गया था। "फिल्मीस्तान" नाम की संस्था उन्होंने शुरू की थी। देविका रानी किसी भी तरह फिल्में बनाना चाहती थीं। इसलिए उन्होंने "हमारी बात" नामक फिल्म की घोषणा की और वे गीतकार के रूप में नरेन्द्र शर्मा को अपने यहां ले आयीं। पहले नरेन्द्र शर्मा स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े हुए थे और पं. जवाहरलाल नेहरू के काफी निकट रह चुके थे। फिल्मों से उनका कोई नाता नहीं था। मगर वे बहुत ही शीलवान और उत्तम स्वभाव के थे। उस फिल्म के गाने बहुत ही लोकप्रिय हुए।

"बादल-दल सा निकल चला ये दल मतवाला रे,
हम मस्तों से आन मिले, कोई हिम्मत वाला रे..'।

यह गीत बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। उनके जैसी शुद्ध हिन्दी लिखने वाला शायद ही कोई फिल्मों में हो। मगर उसी फिल्म के लिए लिखा उनका एक उर्दू गीत भी बहुत प्रसिद्ध हुआ था।

"ऐ बादे सबा, इठलाती न आ,
मेरा गुंच-ए दिल तो टूट गया..."।

मुझे याद आता है, वो शायद माटुंगा में कहीं रहते थे। अकेले ही थे। मैंने उनका घर खोज निकाला और पंडित युधिष्ठिर की

बात उन्हें सुनाई। मेरी बातें सुनते ही वे सोच में पड़ गये। बॉम्बे टॉकिज से बाहर काम करने की ये सबसे पहली ऑफर थी। मगर वे पहले से ही साहसी स्वभाव के और आदमी की परख रखने वालों में से थे। इसलिए उन्होंने मुझे कुछ इन्तजार करने और अगले हफ्ते मिलने को कहा। मैं उन्हें मिला। उनको गीतों के लिए प्रसंग सुनाये और प्रसंग लिख दिये। हमारी फिल्म "पुल" में सिर्फ उन्हीं के गीत अच्छे रहे। बाद में तो गजानन जागीरदार की फिल्म "जेलयात्रा" में भी उन्हींने गीत लिखे, जिसका संगीत मैंने ही दिया।

"मोरी रंग ना गयो रे चुनरी,
आयी होली, बहार आयी बनमें
जरे आग हमारे मन में,
ए जी फागुन महीना बीतो जाय,
मोरी रंग ना गयो रे चुनरी
उनको बुलाने मैंने बिंदिया रे भेजी,
भूल गये पिया बिंदिया न भेजी,
आये न मोरे द्वारे, उनको बुलाके हारे,
क्या बिचारूं मैं सगुन री, मोरी रंग ना गयो रे चुनरी...'

यह गीत मुझे अब भी याद है। नलिनी मुलगांवकर तो यह गीत और इसी फिल्मों का एक दूसरा गीत अपने हर जलसे में गाती थीं।

नरेन्द्र शर्माजी ने कई फिल्मों में गीत लिखे हैं उनमें से "भाभी की चूड़ियां" का "ज्योति कलश छलके" आज भी उतना ही सुन्दर लगता है। परन्तु नरेन्द्र शर्मा फिल्मों में स्थायी न हो सके। १९५२ में उन्होंने बंबई रेडियो पर हिन्दी सुगम संगीत के प्रोड्यूसर की नौकरी स्वीकार कर ली। हमारे स्वभाव एक-दूसरे से काफी मिलते थे और हमारा कार्य–क्षेत्र भी एक–जैसा ही था। दो साल बाद जब मुझे प्रमोशन मिला, तब वे भी "विविध भारती" (जो नया ही शुरू हुआ था और उन्होंने ही शुरू किया था), उसके चीफ प्रोड्यूसर बन गये। मुझे भी उन्होंने वहीं बुला भेजा और जब तक वे बंबई रहे, मैंनें वहीं काम किया। उस वक्त "जयमाला कार्यक्रम" बहुत ही प्रसिद्ध था, जिसे मैं और शब्बीर अब्बास सम्हालते थे। उस कार्यक्रम में अशोक कुमार, सचिन देव बर्मन, महमूद, के.एन. सिंह,

मुमताज, आशा भोंसले इत्यादि उच्च कोटि के कलाकार जो रेडियो में नहीं आये थे, उन्हें ले आये।

सारे विविध भारती का भार नरेन्द्र शर्मा के अकेले के कंधों पर ही था। उस वक्त रेडियो गोआ और रेडियो सिलोन बहुत ही लोकप्रिय थे। इसलिए लोगों को "विविध भारती" (आकाशवाणी) की ओर आकर्षित करने का भीष्म कार्य करने हेतु उन्होंने कई फिल्मी और गैर फिल्मी गीतों की सहायता ली और लिखे भी। एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि इस कार्य के लिए उन्हें अनेक गीत सुनने पड़ते थे, जिनमें से सिर्फ दस प्रतिशत काम में आते, बाकी सब फिजूल। मगर यह कार्य भी इन्होंने कई दिनों तक किया, यहां तक कि बाद में बीमार हो गये। मगर उन्होंने अच्छे-अच्छे गीतपसंद किये। नतीजा यह निकला कि लोगों को उन्होंने रेडियो सिलोन पर गोवा से, "विविध भारती" की ओर आकर्षित किया और इस तरह उनके लोकप्रिय कार्यक्रमों की शुरूआत हुई।

बाद में उनका तबादला दिल्ली हो गया और हमारा रेडियो का सम्बन्ध खत्म हुआ। मैं फिर से बंबई-स्टेशन के काम-काज में लग गया। वे मुझसे दो साल बड़े थे, इसलिए १९७१ में निवृत्त हुए और मैं १९७३ के नवम्बर में निवृत्त हुआ। उस समय तक नरेन्द्र शर्मा भी निवृत्त होकर बंबई आ गये थे।

श्री नरेन्द्र शर्मा जैसा सत्य, धीर और गंभीर व्यक्ति मैंने कोई नहीं देखा। उनसे जब भी मिला, एक ही स्वरूप में पाया। मेवाड़ के महाराणा के साथ का संबंध हो या कोई दरिद्र के साथ का संबंध, वे उसमें जरा भी भेद नहीं रखते थे। अब तो वे परमात्मा की शाश्वत शांति में विलीन हो गये हैं, जहां कोई रागद्वेष होता ही नहीं, इसलिए मेरे मन से तो वे परमात्मा में ही व्याप्त हो गये हैं।

मेरे नरेंद्र चाचाजी

● अचला नागर

जिनकी बातों की मिठास और पारदर्शी तरल-सरल व्यक्तित्व किसी के बचपन की यादों में पक्का छप चुका हो- तो अपना शरीर लेकर आखिर वह कहां जायेगा भला ?... ये थे मेरे नरेन्द्र चाचाजी...

यूं तो बाबूजी के सभी मित्र हम भाई-बहनों के "चाचाजी" ही होते थे- लेकिन प्रायः उनसे हमारा संबंध प्रणाम और आदर-सत्कार तक ही रहता था। कुछ ही नाम ऐसे हैं, जिन्हें हमने अपने परिवार के ही अंग के रूप में स्वीकार किया। शायद इसीलिए कि उनके और बाबूजी के व्यक्तित्व में हमें बहुत-सी समरूपता मिलती थी- मन की दुर्लभता से लेकर तन की सादगी तक- उन्हीं चंद "विशेष चाचाओं" में थे मेरे नरेन्द्र चाचाजी। उनसे बातें करते हुए मैंने बाबूजी को बेहद अंतरंग और सहज पाया है- हर विषय और हर स्तर की बातें- कभी लगता विद्वता की इस ऊंचाई की तरफ देखने की भी सामर्थ्य नहीं मुझमें। लेकिन दूसरे ही पल इनकी बाल-सुलभ बातें और मुक्त हँसी सुनकर लगता इस जमावड़े में हमारा प्रवेश निषिद्ध नहीं हो सकता।

देखा जाये तो प्रत्यक्ष रूप से चाचाजी का सान्निध्य मुझे बहुत कम मिला, लेकिन अपने बाबूजी और बा (माँ) की यादों की तकली से निकलते सूत में से नरेन्द्रजी के नाम का तार कभी नहीं टूटा और इस तरह सुनी-सुनाई बातें जीते-जागते बिंब बन गईं... सुप्रसिद्ध नृत्यकार श्री उदयशंकर की प्रयोगात्मक फिल्म "कल्पना" के लिए बाबूजी, बा, नरेन्द्रजी और पंतजी का दक्षिण भारत का लंबा प्रवास... नरेन्द्र चाचाजी का सुशीला काकी से प्रेम-विवाह और उसमें बा-बाबूजी का सक्रिय योगदान-सौ जलेबियों का उदरस्थ किया जाना... और भी जानें कितनी बातें हैं।

पहली बार चाचाजी को मैंने देखा शिवाजी स्थित "सेशविल्टा" में। मैं उस वक्त बहुत ही नन्हीं-मुन्नी थी। मुझे याद है बिल्डिंग के परिसर में शाम को कुर्सियां डाल दी जाती थीं, जहां बैठकर नरेन्द्रजी, बाबूजी, पंतजी, भगवती चरण वर्मा जी आदि अपनी लिखत-पढ़त का घंटों आदान-प्रदान करते थे। मेरी ड्यूटी तब इतनी होती थी कि बा पान लगा दें और मैं बाहर दे आऊं और सबसे जी भर के लाड़ लड़वा आऊं। एक की गोद से दूसरी

में आते मुझे इन विद्वानों की बातों के कुछ शब्द तो याद रह जाते, लेकिन उनका मतलब तो मेरी समझ से परे था। फिर भी बचपन से ही संवेदनशील होने के नाते– बाबूजी के उपन्यास "महाकाव्य" के पांचू की भूख मेरे पेट में भी कुलबुलाहट जगा देती थी और अपने जीवन के पहले गद्य के रूप में मैंने पांच–छः पंक्तियां लिखीं, जिनमें भगवान जी से पांचू को रोटी देने की विनती की थी।

मैं बहुत नटखट थी और बा को बहुत परेशान करती थी। एक दिन नरेन्द्र चाचाजी से वह मेरी शिकायत कर बैठीं, तो अपनी चिरपरिचित मुस्कान के साथ उन्होंने कहा, "प्रतिभाजी, आप तो बा हैं लेकिन अचला कस्तूरबा बनेगी– वैसे ही कर्मठ, दृढ़ निश्चयी और सहनशील... "कस्तूरबा" तो लगभग हर भेंट में मुझे कहते थे। बचपन के बाद लंबे अंतराल तक मुझे नरेन्द्र चाचाजी के दर्शन हो सके। मिलना हुआ तय सन् ८० में, जब बंबई में बसने के पूर्व मैं यहां की टोह लेने आयी थी। जब घर पहुंचने पर सुशीला काकी और नरेन्द्र चाचाजी ने उसी तरह गले लगाया, जैसे मायके जाने पर मां–बाप लगाते हैं, मुझे लगा ही नहीं कि मैं बीस साल से भी अधिक वर्षों के बाद यहां आयी हूं। काकी अपने हाथों से बनाये गर्म–गर्म फुलके खिलाती रहीं और सामने ही बैठे चाचाजी उन्हें निर्देश देते रहे, यह खिलाओ, वो खिलाओ। एक बात मुझे बड़ी रोचक लगी। पति–पत्नी के बच्चों से वार्तालाप में काकी निरंतर गुजराती बोले जातीं और चाचाजी हिन्दी।

चाचाजी बहुत अच्छे भी थे। मेरी कुछ अंतरंग समस्याओं को जानने के बाद उन्होंने वर्षों पहले बनायी मेरी कुंडली यूं की यूं दोहरा दी और बड़े आत्मविश्वास से कहा, "सहना तो तेरी कुंडली में ही है, लेकिन तू कभी हारेगी नहीं, जूझ–जूझ कर जीतेगी। तेरा लिया कोई भी निर्णय कभी तुझे शंका में न डालेगा। इधर निर्णय और उधर उसका कार्यान्वयन। यही तेरी सफलता की कुंजी है।" इन बातों ने बंबई आने के मेरे डगमगाते इरादे को दृढ़ता प्रदान की। बाद में जब श्री बी.आर. चोपड़ा के लिए 'निकाह' लिखने से मैंने एक नये कार्यक्षेत्र का श्रीगणेश किया तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। बोले, "यूं तो इस फिल्म महासागर में तेरे जैसे सरल स्वभावी का तैर पाना बहुत आसान नहीं होता, लेकिन एक

तेरी इच्छा–शक्ति, दूसरे चोपड़ाजी जैसे विद्वान, समझदार और बहुत ही अच्छे व्यक्ति का मार्गदर्शन, तुझे निश्चय ही सफल करेगा। भगवान ने तुझे बहुत ही अच्छे हाथों में पहुंचा दिया है"। समय के साथ उनकी बात एकदम सत्य निकलीं। आज मैं जो हूं, जहां हूं, वहां तक पहुंचने में आदरणीय चोपड़ाजी का बहुत बड़ा हाथ है।

नरेन्द्र चाचाजी किसी भी विषय पर धारा–प्रवाह बोल सकते थे। सोचने के लिए उन्हें पलभर की भी आवश्यकता नही होती थी। और चाल तो उनकी ऐसी कमाल की थी कि साथ चलने वाले की सांस फूल जाय। मुख पर संतोष की आभा, आंखों में स्नेह की चमक और होठों पर निश्छल मुस्कान। यह उनका स्थायी भाव था। होठों के किनारे से बहती पान की पीक, मुझे बा और बाबूजी की याद दिला देती थी।

उनमें हुई बहुत सारी सार्थक बातों में दो को मैंने जीवन में उतारने की पूरी कोशिश की है, और किसी हद तक सफलता भी पायी है। वह कहते थे- "प्रगति का अर्थ है आगे बढ़ना। लेकिन हम प्राय: प्रगति और बाह्य आधुनिकता, को एक-दूसरे का पर्याय मानने लगते हैं। समस्या यह है कि नई पीढ़ी आधुनिकता का सही अर्थ नहीं समझ पा रही है। मुझे रहन-सहन, परिवेशगत आधुनिकता, या अंग्रेजी के अधिकाधिक इस्तेमाल पर आपत्ति नहीं, क्योंकि यह सब बाह्य आवरण हैं। डर तो इस बात का है कि जिन बच्चों को अपने मूल्यों का, अपनी पृष्ठभूमि का ही ज्ञान नहीं, वो इस उधार ली हुई सभ्यता और खोखले मूल्यों के सहारे किसी लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकेंगे।"

एक और बात उनकी मुझे बहुत अच्छी लगी। उन दिनों मैं बंबई आ चुकी थी। फिल्मों से जुड़ चुकी थी और पहली फ़िल्म सफलता की ऊंचाईयां भी छू चुकी थी। फिर भी कई कारणों से मुझे लगता इस तेज रफ्तार जगह में क्या मैं दौड़ पाऊंगी? जिंदगी की जिद्दोजेहद में अपनी ऊर्जा और समय के अतीत में ही खो चुकने के बावजूद नरेंद्र चाचाजी ने उलझन के इस भंवर से चुटकियों में ही मुझे बाहर खींच निकाला- वह बोले, "बेटे, किस अतीत की बात कर रही है तू? अतीत है क्या? उसका अस्तित्व क्या

है? देख अगर कुछ होता है और सच होता है तो केवल वर्तमान, लेकिन वह बेचारा भी पल-पल अतीत बन जाता है। देख ये मैंने ताली बजाई... और ये वर्तमान हुआ अतीत... जो तू कर चुकी, खो चुकी वह अतीत है, जो करेगी वह भी अतीत बनेगा, फिर इन सब के बारे में सोचना क्या? अपना पूरा ध्यान वर्तमान की ओर केंद्रित कर अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिये।" मैं जब यह अनमोल मोती अपने आंचलों में गठिया रही थी, तब सोचा भी नहीं था कि एक दिन एक ऐसी ताली बजेगी जो मेरे प्यारे नरेंद्र चाचाजी को अतीत बना देगी।

नरेंद्र - बिखरी हुई यादें :

● पी. डी. टंडन

सबसे पहले मिले थे वह हमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रावास हालैंड हॉल में,जहां वह अपने मित्र प्रोफेसर रोनी देव से मिलने जाते थे। मेओ हॉस्टल में भी अक्सर निगाहें चार हो जाती थीं, क्योंकि नरेन्द्र शर्मा अपने खुर्जा नगर के निवासी जगदीशचंद्र माथुर के पास भी अक्सर जाते थे, जो बाद में एक बड़े लेखक और नामी आई.सी.एस. अफसर हुए। प्रोफेसर भवानी शंकर के घर तो हम दोनों एक-दूसरे को देख ही लेते थे, क्योंकि वह नरेन्द्र के दोस्त, और हमारे बड़े भाई श्री डी.डी. टंडन के मित्र थे और उन्होंने ही हमें उनके हवाले किया था जब हम प्रयाग में पढ़ते थे । मगर वहां भी हमारी नरेन्द्र से बातचीत नहीं होती थीं केवल मुस्कराहटों से मुलाकात होती थीं।

हिजाबे मोहब्बत, इसी को थे कहते,
न वह बोलते थे, न हम बोलते थे

सालों गुजर गये इसी तरह। वह थे कवि और कलाकार। हम कुछ नहीं थे। हमें मीठा बोलना नहीं आता था। झगड़ा करने में माहिर थे। हम केवल अपनी जिंदादिली और विद्यार्थियों की नेतागिरी के लिए जाने जाते थे। बरसों बाद हमारी और नरेन्द्र की धीरे-धीरे अच्छी बातचीत शुरू हो गई। हम दोनों दोस्ती के जाल में फंसते गये, जिसमें घनिष्ठता की छवि आने लगी। न जाने क्यों और कैसे नरेन्द्र ने एक दिन हमें अपने एलनगंज वाले घर में खाने को बुला लिया। समय की पाबंदी के कायल होने के कारण हम बिलकुल समय से पहुंच गये। दरवाजे पर लटक रहा ताला खिल्ली उड़ा रहा था। पांच मिनट तक हम नाराज खड़े रहे। क्रोधित होकर होटल गये, क्योंकि होस्टल के मेस में खाना मना कर दिया था।

इस घटना से हमारी उस जमाने की अंग्रेजियत को एक कसकर चोट लगी, मगर नरेन्द्र की कलाकारिता और कविता को एक भी झटका न लगा। दूसरे दिन जब हम दोनों मिले और हमने नाराजगी का इजहार किया, तो उन्होंने बड़े प्यार से कंधे पर हाथ रखकर कहा, "यार बिल्कुल भूल गया। सीनेट हाल में कला प्रदर्शिनी लगी थीं, वह देखने चला गया और उसी में बहुत समय लग गया। मित्र क्षमा कर देना और आज शाम को हमारे साथ खाना

खाना।" हम नाराज होते रहे वह प्रेमपूर्वक सफाई देते रहे। हम भूल गये कि ऐसी हरकत कवि और कलाकार के लिए कोई नई बात नहीं थी। यह लोग अपनी ही एक निराली दुनिया में निवास करते हैं। उनका जगत साधारण लोगों के संसार से बिल्कुल अलग होता है। यह सब जानते हुए भी हम इस घटना को अभी तक भुला नहीं पाए हैं। मगर नरेन्द्र को इसकी उस दिन के अलावा फिर कभी याद भी नहीं आई होगी। उनके बर्ताव में कोई फर्क नहीं पड़ा।

उनका बड़ा सरल स्वभाव था। वह बहुत गंभीर व्यक्ति थे, परन्तु जब दूसरे लोग मजाक करते थे तो वह भी बहुत मजा लेते थे। भवानीशंकर की तरह वह भी अमरनाथ झा के बड़े प्रशंसक थे और अक्सर उनके घर जाते थे; जहां अंग्रेजी साहित्य और इधर-उधर की बातों में काफी दिलचस्पी लेते थे। नरेन्द्र से करीब-करीब सभी लोग खुश रहते थे, क्योंकि वह सभी से प्यार से बोलते थे और दूसरों की सहायता करने को तत्पर रहते थे। जब से उन्होंने बंबई में बहुत ख्याति पाई, तब से हमारी उनसे मुलाकात कभी नहीं हुई, मगर हमने उनकी जवानी की उस धूप को चमचमाते देखा था, जब वह आने वाली बड़ी सफलता की प्रतीक्षा कर रहे थे। नरेन्द्र जवानी में दुबले, पतले, गोरे, छोटे कद वाले थे। बाद में कैसा दिखते थे, मुझे मालूम नहीं। मेरी आंखें तो उसी प्यारे नरेन्द्र को उसी हालत में अक्सर देखती हैं जैसे चालीस साल पहले देखा था। उन दिनों इधर-उधर वह भटकते थे। छोटी-मोटी चीजों की तलाश में। बाद में बड़ी-बड़ी बातों में लिप्त हो गये और बड़े-बड़े लोग उन्हें ढूढ़ने लगे। नरेन्द्र की मधुर वाणी अब भी कभी-कभी मुझे सुनाई पड़ती है- हो चाहे क़ेवल यह एक सपना ही!

एक संस्मरण : "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे"

● डॉ. सुशीला मित्तल

कविवर पंडित नरेन्द्र शर्मा की उपर्युक्त पंक्तियां जब कभी गुनगुनाती हूं तो मेरा अतीत सहसा बिजली की तरह कौंध उठता है। मैंने अपने पति स्व. वीरेन्द्रनाथ मित्तल के साथ शिवाजी पार्क स्थित उनके निवास पर ये पंक्तियां उन्हीं के मधुर कंठ से सुनी थीं। यदि मैं और पीछे मुड़ कर देखती हूं तो मुझे अपने श्वसुर और पंडितजी के पिता की याद ताजा हो उठती है। दोनों खुर्जा निवासी मित्रता के अटूट बंधन में बंधे थे। उसी डोर को पकड़ कर मैं पंडितजी से संपर्क कर सकी।

छायावादोत्तर काल के प्रमुख कवियों में पं. नरेन्द्र शर्मा का नाम काव्य जगत में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता रहा है। कविवर सुमित्रानंदन पंत इनकी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। "पंत" का आशीर्वाद और "बच्चन" का स्नेह-सम्बल पाकर कविता के अनेक सोपानों को इन्होंने पार किया। पंडितजी जब मूड में होते थे तो अतीत की ओर मुड़ जाते थे। एक बार खार स्थित अपने आवास में पंतजी के निधन के पश्चात् अश्रुपूरित नेत्रों से कहने लगे, "सुशीलाजी सन् १९३५ में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के अभिनंदन के संदर्भ में प्रयाग में कवि–दरबार का आयोजन किया गया था। उस समय मैंने सुमित्रानंदन पंत की भूमिका निभाई थी। कितने दिन कितनी रातें बीत गईं, लगता है अभी कल की ही बात है।"

शिवाजी पार्क में मैं भी रहती थी। मेरी शादी हो चुकी थी। किशोर मन की अल्हड़ता प्रणय गीतों की ओर बहुत भागती थी। एक दिन मेरे घर शर्माजी आये। साधारण चाय–पान के बाद शर्माजी से बहुत विनीत भाव से आग्रह किया कि अपनी कोई सरस रचना सुनाइये। उन्होंने भाव-विभोर होकर गाया––

"साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी
क्या किसी की याद आई ओ विरह व्याकुल प्रवासी ?"

दर्द और टीस से भरी इन पंक्तियों को सुनकर मैं विस्मय-विमुग्ध हो गई। कविता पाठ के बाद उन्होंने स्वयं बताया कि "प्रवासी के गीत' में मेरी किशोर–प्रणय भावना ने उन्मुक्त उड़ान भरी है,

जो संभवत: वियोगीजनों को विशेष भाती है।

कविता अनुभूति की कोख से पैदा होती है, इसे पंडितजी ने स्वयं आधुनिक कवि की भूमिका में लिखा है– "मेरी काव्यगत पूंजी मात्र भावावेश है, काव्य का दूसरा प्रमुख तत्व कामना है।" इस महत्व को स्वीकारते हुए वे कहते हैं, "जहां रवि की भी गति नहीं, वहां कवि की गति सहज संभव है।"

एक दिन सागर किनारे टहलते हुए शर्माजी मिल गये। स्वच्छ दूध–सी सफेद धोती और सिल्क का कुर्ता पहने मस्ती में घूम रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मंद मुस्कान के साथ आशीष दिया। हम लोग कुछ देर के लिए रेत पर बैठ गये और शर्माजी ने बालकों की भांति एक घरौंदा बनाया फिर उसे अपने हाथों गिरा दिया। मेरे पति मित्तल साहब ने पूछा, "शर्माजी आपने इतना सुन्दर घर क्यों गिरा दिया ?" इस पर शर्माजी ने मुस्कराते हुए कहा कि "मैं न गिराता तो कोई दूसरा गिरा देता, निर्माण और विनाश तो सृष्टि का नियम है।" मैंने जिज्ञासावश पूछा, "शर्माजी लगता है कि आप घोर नियतिवादी हैं।" इस पर उन्होंने गुरु-गंभीर होकर कहा कि "सारा विश्व नियति के चक्र में घूम रहा है, वह जिधर चाहती है, उधर ले जाती है और मनुष्य मूक पशु की तरह उसके पीछे–पीछे चला जाता है।"

सिनेमा में गीत लिखने वालों की कविता बहुधा मर जाती है, किन्तु शर्माजी की कविता मरी नहीं, "ज्योति कलश" के रूप में छलकती ही रही। सिनेमा के बंधन उन्हें बांध नहीं सके। वे १९५६ में "आकाशवाणी" बंबई में प्रोड्यूसर बन गये। उस समय की एक घटना मुझे याद है जब उन्होंने भागवत् के एक पात्र "राजा पुरंजन" के विषय में बोलने का आदेश दिया। प्रोग्राम पन्द्रह मिनट का था, उन्हें बहुत पसंद आया और उसी समय मुझे लगा कि शर्माजी किशोरावस्था की प्रणय की टेढ़ीमेढ़ी गलियों से निकलकर अध्यात्म के राजपथ पर चल रहे हैं और अपने छोटे–से परिवार के साथ अनेक कठिनाइयों के बीच कभी हारे नहीं, थके नहीं। उन्हें धन–संग्रह में कोई रुचि नहीं थी, उन्हें तो अपने देश और संस्कृति से विशेष मोह था, इसीलिए आजादी की लड़ाई में जेल–यातना भी सही। ज्योतिष–शास्त्र के वे प्रकांड विद्वान थे, फिर भी कभी किसी के

भविष्य के अप्रिय सत्य की ओर संकेत भले ही कर दिया हो, स्पष्ट नहीं बताया।

नरेन्द्र जी के काव्य-ग्रंथों का अवलोकन करने पर उनकी कविता के तीन प्रमुख पड़ाव दिखाई पड़ते हैं। प्रारम्भिक गीतों में अतृप्त प्रणय निवेदन, संयोग–वियोग के धूप–छांही खेल, और आशा–निराशा के दिवा–स्वप्न के अनेकानेक रूप देखने मिलते हैं।

इनकी कविता का दूसरा चरण देश और समाज की ओर बढ़ता है, जो इन्हें प्रगतिवादी रचना की ओर मोड़ देता है। इनकी कविता का तीसरा मोड़ इन्हें अध्यात्म की ओर ले जाकर दार्शनकि बना देता है। "प्यासा निर्झर" की अधिकांश रचनाएं दार्शनिक भाव-प्रत्ययों और प्रतीकों के साथ ही अभिव्यक्त की गई हैं।

नरेन्द्र शर्मा पर "रामायण" और "महाभारत" का बड़ा गहन प्रभाव पड़ा है। एक शोध छात्र की भांति इन महाकाव्यों के भीतर पैठ कर अपनी पैनी बुद्धि और कल्पना शक्ति से "महाभारत" के अनेक पात्रों को आध्यात्मिक दृष्टि से परख कर उसे एक नया रूप दिया है। "द्रौपदी" खंड काव्य में पौराणिक द्रौपदी को शर्माजी ने एक नया रूप दिया है। पांच पांडवों की कल्पना पांच तत्वों से की गई है। (पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु) और द्रौपदी पांचों की जीवनी शक्ति है। धृतराष्ट्र अंधे हैं और उनके सौ पुत्र मनुष्य की अतृप्त इच्छाएं हैं।

जीवन के अंतिम दो दशकों से शर्माजी विदेश का जीवन जी रहे थे, वे मौनमुखरसाधना में तल्लीन दिखाई पड़ते थे। युवावस्था का भौतिक प्रेम प्रौढ़ावस्था तक आते–आते प्रभु-भक्ति में बदल गया था। इसीलिए कभी–कभी जब उनका प्रवचन सुनने का मन होता था तो मैं "द्रौपदी", "सुवर्णा" अथवा "सुवीरा" का प्रसंग छेड़ देती थी।

पंडितजी का व्यक्तित्व बड़ा ही मोहक और प्रभावशाली था, उनके मुख पर कभी क्रोध की छाया मुझे दिखाई नहीं पड़ी। विनम्रता की प्रतिमूर्ति शर्माजी अपने से छोटों से भी भावभक्ति से मिलते थे।

अंत में दिवंगत निराला के प्रति उन्हीं की पंक्तियां उन्हीं को समर्पित कर उन्हें शतशः प्रणाम करती हूं।

"हे कविर्मनीषी यशः काय,
निःशब्द शब्द प्रति नमस्कार
हिन्दी की शिरा-धमनियों में,
तुम जगा गये फिर नया ज्वार,"

खारे किनारे, मीठे घूंट !

●शिवशंकर शर्मा "राकेश"

अक्तूबर १९६२ की बात है जब बंधुवर गोपाल कृष्ण कौल के साथ मैं आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र पर 'विविध भारती कार्यक्रम' के चीफ प्रोड्यूसर कविवर पं. नरेंद्र शर्मा के कक्ष में दर्शनार्थ गया था, पर वे कहीं गए थे। क्या पता था कि निकट भविष्य में ही नरेंद्र जी के आत्मीय बन जाने का दिन निर्धारित कर दिया था विधाता ने अर्थात २१-२-६५, जब कि मेरे साथ अपनी प्रिय भतीजी गायत्री का संबंध स्थिर करने के लिए वे मेरे जन्म-निवास जयगंज, अलीगढ़ पधारे थे ! मेरे परम पूज्य पिताजी स्व. आचार्य पं. राम स्वरूप शास्त्री जी ने उनका स्वागत-सत्कार किया। उन्होंने भेंट में ग्यारह रूपये दिए और अपनी दो बहुचर्चित काव्य-कृतियां- 'प्यासा निर्झर' तथा 'उत्तर जय' दीं। खाया कुछ नहीं यह कहते हुए- "पंडित जी, मैं बेटी दे रहा हूं, कैसे कुछ ग्रहण करूं?" आचार्यत्व और कवित्व का वह सुसंगम-दृश्य मेरे पहले घरौंदे का अंतिम अद्‌भुत परिदृश्य था। फिर ११-५.६५ को नेताजी नगर, दिल्ली में उभय भव्य व्यक्तित्व मिले और परिणय सविध सुसम्पन्न हुआ ! 'आकाशवाणी' ने अपने प्रमुख प्रतिनिधियों द्वारा विवाह की आहुतियों के आर्ष मंत्रों को आत्मसात् कर लिया। कुछ मूर्धन्य विभूतियों का शुभाशीर्वाद भी हमें प्राप्त हुआ यथा अपने समय के सूर्य कविवर रामधारी सिंह दिनकर, प्रतिभाशाली लेखक श्री जगदीश चंद्र माथुर और रसवादी विख्यात आलोचक डॉ. नगेंद्र। नेताजी नगर, दिल्ली के इस सुदृढ़ रागात्मक स्मृति-सूत्र में, अलीगढ़ के दो घरों की गहरी दोहरी यादों को पिरोकर, इसे फिर खार (बंबई) की देहरी से जोड़ने का प्रयास कितना पुलक भरा है !

खार बंबई की एक बाहरी बस्ती है, (जो जुहू और बरसोवा तक वेला से रेखांकित दिखाई देती है) जहां के वातावरण में सील भरी मत्स्यगंध तैरती है। वहीं स्व. नरेंद्र शर्मा का घर है, मेरी कुछ मीठी यादों का बसेरा है ! उनके परिवार से भतीज जामाता के रूप में जुड़ने के बाद वहां मैं पहली बार २४-६-७१ को सपत्नीक

पहुंचा था। भींगी आधी रात के समय हम घर पहुंचे थे। वर्णमाला के अक्षर व, ल, ब और प अर्थात् प्रिय वासवी, लावण्या, बांधवी और परितोष अपनी-अपनी चहक के साथ चौंक उठे कह कर- 'जीजी आ गई !' प्रिय लावण्या तो पल भर मेरी बांहों में झूल गई। पूज्य चाचाजी-चाचीजी के वरद हस्त आशीष-सुमन बरसाते हुए पुष्पित डालों की भांति लहरा गए। मुझे ठीक याद है, नरेंद्र जी ने तो मुझे हृदय से लगा लिया था !

हम जिस कमरे में ठहरे वह जैसे हमारी प्रतीक्षा में कपाट खोल कर अतिथेय बना हुआ था !

पहला प्रभात हुआ ! हुआ ही था कि यथानाम तथागुणवती सुशीला चाची जी मंगल आरती का-सा थाल सजाए- जिसमें चाय की केतली और हिसाब से तीन प्याले थे- कमरे में मृदु मुस्कान बिखेरती हुई आ गईं। प्रवास की प्रथम मधुर अनुभूति चाय के घूंट-घूंट में भीतर उतर गई। विदा के दिन तक उनका यही वात्सल्य अविरल रहा। नरेंद्रजी प्रायः सूरज के बाद ही सोकर उठते थे। तभी उठते थे जब कि ज्योति-कलश छलकने लगता था ! वे अध्ययन-मनन करके बहुत रात गए सोते थे !

दूसरे दिन मैंने चाचाजी से निवेदन किया कि एक सप्ताह के बाद हमारे अलीगढ़ लौटने का रेलवे आरक्षण करा देने की कृपा करें। तब वे बंबई में आकाशवाणी के विविध भारती कार्यक्रम के सर्वेसर्वा थे। कार्यालय जाते समय मुस्करा कर बोले- 'अच्छी बात है।' शाम को लौट कर प्रसन्न मुद्रा में कहा- "पंद्रह दिन बाद का आरक्षण हो गया है और पू. पंडित जी को भी इसी आशय का पत्र लिख दिया है कि वे निश्चिंत रहें !" उनका सहज सिंचित स्नेह नहीं चाहता था कि हम जल्दी ही चले जाएं।

वह पहली सांझ थी जब चाची जी, गायत्री और लावण्या के साथ खार का किनारा देखा। जुहू पर मौसमी फुहारों और सागर के अनाहत नाद ने नवागन्तुक की अगवानी की अपना-अपना स्नेह बरसा कर उछाल कर ! चाव भरी प्यास नारियल-पानी से बुझ गई। खारे किनारे की वह पहली मिठास थी ! काली कमली-सी घटाओं पर सांझ के सब रंग चढ़कर उतर जाते थे ! सूरज खिसिया

कर खिसक गया ! हम तब लौटे !

खाने की मेज जिस कमरे में थी उसके पूर्वी पार्श्व में कामिनी के कुछ गदराये पेड़ थे, जिन्हें गमलों के पौधों-बेलों ने मिलकर घेर रखा था। मैं दिन में कम-से-कम दो बार तो उन्हें देख-सूंघ लेता था। मैं रोज उसी एक कुर्सी पर बैठता था। नरेंद्रजी बीच में विराजते थे। कभी एक-दो सदस्यों की जगह छूट जाती थी। पर मेरे सामने वाले छोर पर अन्नपूर्णा-सी चाची जी मेजबानी करती थीं। भोजन की सरसता का बखान भी होता था। एक दिन की बात है। चाची जी ने रोज की तरह मुझसे यह पूछा- 'राकेश जी, थोड़ी-सी दाल लीजिए।' मैंने तृप्ति-सूचक निषेध कर दिया। पर उसी क्षण नरेंद्रजी ने कुछ तमक कर कहा- 'सुशीला, दाल कच्ची है, कोई कैसे खाये?' सुन कर चाची जी सहम गईं जैसे गर्मी पाकर नवनीत की पुतली ! वाशबेसिन पर पहले मुझे ही हाथ धोने देते थे चाचाजी, स्वयं पीछे खड़े हो जाते थे। कितना सुसंस्कृत व्यक्तित्व था उनका कि छोटों को छोटापन महसूस न होने देना ! वे अपना पान स्वयं लगाते थे। फिर कार्यालय जाते समय मुझसे हाथ जोड़ कर कहते जाते- 'अच्छा !' मेरी दृष्टि तब उनके चरणों में जैसे अनुमति अर्पित कर देती, कुछ दूर तक निहारती रहती थी उस प्रतिभा-पुंज को।

नरेंद्र जी की बगल में ही प्रख्यात अभिनेता श्री पी. जयराज का घर था। दोनों के बीच में भीतर-बाहर कोई दीवार न थी, जो कि पड़ोसियों के बीच अक्सर खिंची होती है, वह दिखाई दे-न-दे यह दूसरी बात है। उनका स्नेह भी सहज था। वे मुझे 'बैराग' फिल्म की कभी शूटिंग दिखाने ले जाते, कभी अपनी नीली डुसैट्‌ गाड़ी में घुमाने और कभी युग के मूर्धन्य कलाकार पृथ्वीराज कपूर से मिलाने। एक बड़े स्नेही समादरणीय मित्र की तरह वे नरेंद्र जी से जुड़े थे। नरेंद्रजी के सौजन्य -जन्य चुंबकीय आकर्षण में उनका अड़ोस-पड़ोस सिमट गया था और सभी ने मानों उन्हें सिर-आंखों पर बैठा लिया था। वह इसलिये कि उनमें स्नेह की ऊष्मा ही नहीं, ज्ञान का प्रकाश भी था जो जगह-जगह नहीं मिलता !

समय का स्वभाव चिर अस्थिर है। मादक दिन अलसाते नहीं, गुजर जाते हैं। बड़े उतावले होते हैं ! अलीगढ़ लौटने का दिन

भी निकट आ गया। नरेंद्रजी एक शाम घर में एकाकी थे। घर में घुसते ही अजीब दृश्य देखा। देखा कि वे भाव-विभोर होकर राम-स्तुति 'श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण-भव-भय-दारुणंम्' आदि का सस्वर पाठ कर रहे थे। उनके बंद नेत्र मन के साकेतवासी राम के दिव्य दर्शन में रमे थे। भिन्न वेश परिवेश में शायद गोस्वामी तुलसीदास की अनुभूति साकार थी? मैं चित्र बन गया उस विचित्र भाव- दशा को देख कर। नरेंद्रजी को सचमुच अपने राम पर बड़ा भरोसा था। वे इसीलिए भौतिक भ्रमों के भंवर में फंसे नहीं, राम के भरोसे भव-सागर में डूबे नहीं! पैसे-प्रतिष्ठा के लालच ने उन्हें छुआ भी नहीं! स्तुति-पाठ के उपरान्त नरेंद्रजी ने अपनी आंखें खोल दीं। भीतर से जैसे बाहर आ गए।

एक सांझ हम दोनों ही साथ बैठे थे। ऋतु की रसीली रिमझिम हो रही थी। कुछ साहस बटोर कर मैंने नरेंद्रजी से सविनय आग्रह किया कि वे अपना सुप्रसिद्ध रस-सिद्ध गीत 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?' सस्वर सुनानें की कृपा करें। साधु पुरुष अनाग्रहशील तो होते ही हैं, तुरंत सुनाने लगे। गीत की पंक्तियों में अतीत के कितने ही संदर्भ स्वरित हो गए। युग के प्रतिनिधि गीतकार की अप्रतिम गरिमा का संक्रमण अनुभव हो रहा था। हल्की सिंदूरी सांझ सहृदय सुकवि और श्रोता के बीच की दूरी को घनी सरस बुनावट से पूर गई। मेरा यह मिथकीय विश्वास फलित हो गया कि तह से सतह तक खारे समुद्र ने अपने भीतर 'अमृत-मधु कलश' सहेज रख होगा! तभी उन्होंने मुझसे मेरी कविता सुनी और अपनी एक ब्रजभाषा की सुललित रचना सुनाकर पुनः अनुग्रहीत किया। तभी दीपकों का राग मचल उठा, मेघों का राग मंद्र-अमंद्र स्वरों में बजता रहा!

गुरु-पूर्णिमा के पर्व पर पारावार का ज्वार तभी देखा था! नरेंद्रजी के पूजनार्थ उनके परम प्रिय पं. श्रीनाथ द्विवेदी आये थे। उनके वर्षा से आर्द्र वस्त्रों और श्रद्धार्द्र हृदय की संगति देखते ही बनती थी। प्रसाद मुझे भी मिला। कुछ अंतरंग संदर्भ छिड़ गये। दार्शनिक लहरें भी उठीं। नरेंद्र जी ने व्यास-रूप में अनेक विचार-सूत्रों का संकेत किया कि ईश्वर की व्यक्त लीला ही कुछ समझ में आती है, अव्यक्त के लिए अटकलें लगाना बेकार है और यह भी कहा किसी मार्मिक प्रसंग में कि वृक्ष की छाया और मनुष्य की माया

उसके साथ ही चली जाती है। हम दोनों ही समर्थन कर रहे थे। उनके इस कथन की सार्थकता आज कितनी चुभ रही है ? उसी रात देखा कि अर्णव आवेगों में उच्छलित था। उसकी उत्ताल तरंगें होड़ लगा रही थीं कि चांद को पहले कौन छूले। खारे जलधि का उत्कट मधुर अनुराग-राग पहले पढ़ा ही था, देखा-सुना नहीं था।

मैं जब तक बंबई में रहा, नरेंद्र जी ने मेरे बिना कभी भोजन नहीं किया। एक दिन चाचीजी, गायत्री और मोंघी के साथ मैं दादर खरीदारी के लिये चला गया। दिन ढलते-ढलते ही हम घर लौट सके। नरेंद्र जी मंगल का व्रत करते थे। उस दिन मंगल ही था, पर उन्होंने भोजन नहीं किया मेरे बिना। पश्चात्ताप के स्वर में मैंने पूछा, 'आपने अब तक भोजन क्यों नहीं कर लिया ?' तो वे मंदस्मितिपूर्वक बोले, 'लावण्या ने दो बिस्कुट चाय के साथ दे दिये थे। अब आपके साथ खाऊंगा।' अब कभी बंबई बुलाये, तो वहां स्नेहभरे नरेंद्रजी सांझ तक प्रतीक्षारत नहीं मिलेंगे और शायद अब नहीं मिलेंगी उस घर की हम दर्द दीवारें भी।

एक दिन मैंने उत्सुकतावश नरेंद्र जी से उनका आकाशवाणी का स्टूडियो देखने की बात कही जो कि चर्चगेट के निकट था। वे प्रसन्नतापूर्वक मुझे वहां ले गये। विशिष्ट व्यक्तियों से परिचय कराया, कुछ विशेष टेप भी सुनवाये। वहां के कलाकार उनकी भव्य भंगिमा से अनुशासित लगे जैसे नरेंद्र जी सब के मन टटोल चुके थे, थाह ले चुके थे उनकी। नरेंद्रजी के साथ न चल पाकर, उनका अनुगत होने में ही सुख मिल रहा था। उस कला-परिक्रमा के बाद वे मुझे फीरोजशाह मेहता रोड पर स्थित एमएमटी के रेकॉर्डिंग विभाग में ले गये। वहां जो भी मिले सब पर नरेंद्र जी को समुज्ज्वल छवि की छाप दिखाई दी। श्री सुधीर फड़के भी सादर-सस्नेह मिले, जिन्होंने नरेंद्रजी के सुरस-सिद्ध गीत 'ज्योति-कलश छलके' का उत्कृष्ट स्वर-संयोजन किया था। यह बड़ा सुखद संयोग हुआ कि तभी वहां स्वर-सम्राज्ञी सुश्री लता मंगेशकर के एक बंगला पूजा-गीत का श्री सलिल चौधरी के संगीत निर्देशन में ध्वन्यांकन का पूर्वाभ्यास चल रहा था। मैं संगीत-मातृका की श्रेष्ठ कला-पुत्री लता जी से मिलकर गद्‌गद हो गया। मैं इस अवधारणा से अभिभूत था कि सद्‌गुण व्यक्ति को पूज्य बना देते हैं। जिस कागज से वे गीत

पढ़कर गा रही थीं, उसके शीर्ष पर लिखा था 'श्रीकृष्ण।' मुझे यह देखकर विश्वास हो गया कि बिना इष्टबल के कला-यात्रा को शाश्वत संबल नहीं मिलता। बड़े पूज्य भाव के साथ नरेंद्रजी से विनम्र स्वर में लता जी ने कहा-'पंडितजी, मैं घर आना चाहती थी, आ नहीं पायी।' नरेंद्र जी ने कहा-'अरे, आयीं क्यों नहीं ? मुझे फोन कर दिया होता।' उनकी वात्सल्य-विमल वाणी की प्रतिक्रिया लता जी की मुख-मुद्रा पर स्पष्ट थी। एक अनिर्वचनीय मधुर अनुभूति लेकर मैं नरेंद्र जी के साथ उस विचित्र भाव-लोक से नीचे उतर आया बंबई की भीड़-भरी सड़क पर। उन्हें अपने ऑफिस में रुकना था। मुझे आवश्यक निर्देश देकर लोकल ट्रेन में यह कहते हुए चढ़ा दिया-'घर जाकर कहिये कि देखो मैं अकेला शान से लौट आया।' मन रखना, मन में बस जाना तो कोई उनसे सीखता।

१५.७.७१ का दिन बंबई-प्रवास का अंतिम दिन था। विदा का दिन मिलन के अनेक दिनों का प्रतिफलन होता है। बिछुड़ते समय सबके स्नेह से लबालब मन भारी था। गायत्री तो सुबह से ही सुबक रही थी। ट्रांसपोर्ट-स्ट्राइक का वह शायद आखिरी दिन था। एक स्नेही की कार में नरेंद्र जी के साथ हम दोनों रेलवे स्टेशन के लिये चल पड़े। वे बड़े चिंतित थे कि मार्ग में कहीं कोई बखेड़ा खड़ा न हो। सकुशल स्टेशन पहुंच गये। नरेंद्र जी तब निश्चिंत दिखाई दिये। उनके साथ में पत्तों में बंधे पान थे। तांबूलीय लाली में रची-बसी सहज मुस्कान नरेंद्रजी की एक पहचान बन गयी थी। प्लेटफार्म पर साथ चलते हुए मैंने कुछ सकुचा कर कहा-'आप पानों की डिबिया ले लें तो कैसा रहे ?' यदि मैं चांदी की डिबिया कहता तो उनकी सादगी को छेड़ना था। वे बोले-'उससे कुछ बनावटीपन लगता है।' मैंने सुनकर मन में ही कान उमेंठ लिये। वे तो नाम मात्र के जहांगीरपुरिया थे, महानगरीय सभ्यता-बनावट उन्हें छूने को ठिठकती रही। फिल्मी छलावा उनकी निश्छलता को कभी छल न पाया। हमारा सामान बर्थ पर सज गया था, कुली भी चला गया, गाड़ी चलने को थी, चल पड़ी। पूज्य नरेंद्र जी देर तक खड़े रहे-मौन शुभाशीष देते रहे। गाड़ी के रफ्तार पकड़ते-पकड़ते उनका छिपता बिंब ओझल हो गया। खारे किनारे पीछे छूट गये। मेरी आंखें तर हो गयीं और स्मृतियां मधुरतर होती गयीं।

नरेंद्र शर्मा एक विराट् व्यक्ति

● शिवशंकर वशिष्ठ

मृत्यु सनातन है। नश्वर शरीर एक न एक दिन पंचमहाभूतों में विलीन हो जाता है। भाई साहब (पं. नरेन्द्र शर्मा) आज हमारे बीच सशरीर नहीं रहे, किन्तु उनकी वाणी साहित्यकारों में हमेशा गूंजती रहेगी और उनका व्यक्तित्व स्मृति-पटल पर हमेशा अज़र–अमर रहेगा।

सन् १९५० में आगमन के कुछ कालोपरांत मेरे एक मित्र ने शिवाजी पार्क में मेरा परिचय कवि श्री नरेन्द्र शर्मा से कराया। सुयोग से कुछ महीने बाद बंबई आकाशवाणी में मेरी उनसे दुबारा भेंट हुई। मैं रेडियो के लिए एक नाटक लिख रहा था। शर्मा जी अपनी कविताओं का प्रसारण करने के लिए वहां पधारे थे। आज की तरह उस समय रेडियो में रेकार्डिंग की पद्धति ज्यादा प्रचलित नहीं थी। लाइव ब्रॉडकास्ट ही अधिकतर होते थे। स्टुडियो में शर्माजी के साथ व्यतीत की हुई सुखद घड़ियां मेरी स्मृति की अमूल्य निधि हैं। मेरे नाटक को पढ़ा, सराहा, मुझसे दो कविताएं भी सुनीं और मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा भी कीं। उनकी विनम्रता और उदारता की अमिट छाप मेरे हृदय पर अंकित हो गई। मैं दिल्ली में कई वर्ष रहा हूं। वहां उनके उच्च कोटि के साहित्यकारों का सामीप्य प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका हूं, पर जो सौजन्यता एवं शालीनता शर्मा जी में मिली वह कहीं नहीं मिली।

इसके बाद निरंतर श. ..जी से संपर्क बना रहा। सन् १९५६ में शर्मा जी आकाशवाणी के कार्यक्रम नियोजक नियुक्त हुए। उनसे पूर्व से ही मेरे रेडियो से संबंध रहे हैं। बंबई आने के बाद यह संबंध और भी पुख्ता हुए। बंबई रेडियो से नाटक, वार्ता, कविता, गीत आदि के कार्यक्रमों का आमंत्रण मिलता रहता था। इन आमंत्रणों को स्वीकार करने का एक प्रमुख आकर्षण था, शर्मा जी के सामीप्य का सुख लाभ ! जब भी रेडियो जाता, उनके साथ चायपान का, बातचीत का अपूर्व आनंद मिलता। ३१ जनवरी १९५४ में बंबई आकाशवाणी ने पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की अध्यक्षता में एक "अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन" का आयोजन किया। इसका पूरा भार शर्मा जी के कंधों पर था। जहां तक मुझे याद है, इतना सफल, सरस और वैविध्यपूर्ण कवि-सम्मेलन आकाशवाणी के किसी

केन्द्र से आज तक प्रसारित नहीं हुआ। मुझे और गीतकार इंदीवर को पहली बार अखिल भारतीय रेडियो कवि-सम्मेलन में भाग लेने का सुअवसर शर्मा जी की छत्रछाया में मिला।

शर्मा जी की छत्रछाया शीतल और आह्लादकारी थी, पर पक्षपातपूर्ण कतई नहीं ! जब मैं उनके बहुत निकट आ गया तो थोड़ा ढीठ भी हो गया। उन दिनों वह दिल्ली में थे। 'विविध भारती' के चीफ प्रोड्यूसर थे। मैं किसी कार्यवश दिल्ली गया हुआ था। दिल्ली रेडियो के एक प्रोड्यूसर मित्र ने मुझे बताया कि शर्मा जी यदि चाहें तो मैं भी उस कवि-सम्मेलन में कविता पाठ के लिए आमंत्रित किया जा सकता हूं। थोड़ा साहस बटोरकर मैंने यह बात शर्मा जी से कही। उनकी आंखों में सुर्खी आ गई और चेहरा गुस्से से तमतमा उठा, बोले, "बस तुमने मुझे इतना ही जाना है शिवशंकर ? मुझसे इस तरह की कोई आशा कभी मत रखना। तुम अपने बलबूते पर आगे बढ़ रहे हो और अपनी उसी आन्तरिक शक्ति पर आस्था रखो। तुम इसलिए मेरे प्रिय हो कि तुम आत्मनिर्भर हो, स्वाभिमानी हो।"

उनका वह रौद्ररूप मुझे भीतर तक हिला गया। कुछ महीने मैं उनसे नाराज भी रहा ! पर जैसे-जैसे समय बीतता गया उन्हें ज्यादा से ज्यादा समझता गया, जानता गया। "सिफारिश" शब्द उनकी जिंदगी के शब्दकोष में था ही नहीं। जब वह दिल्ली में थे, आर्थिक रूप से घनघोर कष्ट में थे। दो-दो घर चलाने पड़ते थे। बंबई में परिवार रहता था, खुद दिल्ली में रहते थे। दो-दो घरों का भार भारी पड़ रहा था। आकाशवाणी के डायरेक्टर जनरल श्री जगदीशचन्द्र माथुर उनके सहपाठी रह चुके थे। वह यदि उनके कान में बंबई रहने की बात डाल देते तो वह सहर्ष उनका तबादला बंबई कर देते। पर वह कहते कैसे ? नरेन्द्र शर्मा तो किसी और ही मिट्टी के बने थे। स्वाभिमान की डींग भरने वाले खोखले साहित्यकारों को मैंने नजदीक से देखा है। अपने फायदे के लिए मौके की नजाकत पर अपनी खुद्दारी को नंगा करने वाले अदीब और शायर मैंने देखे हैं, पर नरेन्द्र शर्मा जैसा अडिग हिमालय नहीं देखा। वह टूट सकते थे, झुक नहीं सकते थे। मैं जितना उनके करीब आता गया उनका विराट रूप मेरे सामने साकार होता गया। अब वह मेरे लिए शर्माजी नहीं 'भाई साहब' थे उतने ही दृढ़। रेडियों में वे जब तक रहे सब उन्हें शर्मा जी कहते थे। "विविध भारती" से पद-मुक्त होने के बाद लोग उन्हें "पंडित जी" कहने लगे।

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने मात्र से ही वह पंडित जी नहीं कहलाए, पांडित्य उनकी कुंडली में स्वयं आसन जमाकर बैठ गया था !

कवि, कहानीकार, नाटककार, कुशलवक्ता, दार्शनिक, ज्योतिषी, वैद्य, न जाने उनके कितने रूप, कितने गुण थे, पर इन सबसे अलग उनका एक अंतर्मुखी आलौकिक रूप था, उपासक का रूप ! वह समर्पित भक्त थे। पांडित्य गर्व से चमकता है, भक्ति निष्ठा से, निष्काम भावना से समर्पित होती है। कैसा विरोधाभास है, नरेन्द्र शर्मा पंडित भी थे और भक्त भी ! मेरी बड़ी पुत्री रचना बीमार थी। बीमारी चिंता को जन्म देती है। भाई साहब देखने आये, रचना से बोले, "बेटी ! एक महामंत्र बताता हूं। रामायण का मन लगाकर नियमित पाठ करो। सब संकट दूर हो जायेंगे।"

बहुत से पढ़े-लिखे लोग भाई साहब की इस बात को मजाक में उड़ा सकते हैं, पर नरेन्द्र शर्मा को जानने वाले इस बात के मर्म को समझेंगे। जो व्यक्ति कभी कम्युनिस्ट रह चुका हो, अनीश्वरवादी रह चुका हो, बुद्धि और तर्क में जिंदगी को बिता चुका हो, जिसने बहुत पढ़ा हो, बहुत गुना हो, दर्शन और शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की हो, चिंतन को जीवन में उतारकर परखा हो, वह जब यह कहता है कि "रामायण का मन लगाकर पाठ करने से संकट दूर हो जायेंगे," तो वह वाणी और मन की पूर्ण पवित्रता के साथ ऐसा कहता है। उसकी संकल्पशक्ति उसके शब्दों में बोलती है। जीवन के अंतिम मोड़ पर पंडित नरेन्द्र शर्मा पूर्ण आस्तिक और बहुत गहरे.. बहुत गहरे... उपासक थे, सिद्ध भक्त थे।

मेरी "वाइब्रेशन" उनसे बहुत मिली हुई थी। सन् १९७४ के आसपास मैं मानसिक तनाव का शिकार था। तरह-तरह की शंकाएं मन को दुर्बल करती थीं। एक दिन दोपहर में दरवाजे की घंटी बजी। मैंने दरवाजा खोला, सामने भाई साहब खड़े थे, अंदर आये, कहने लगे- "कुछ दिनों से बहुत परेशान हो, क्या बात है ?" मैंने सहजता से कहा, "कुछ भी तो नहीं।" बोले- "ऐसा कैसे हो सकता है ? बार-बार तुम्हारी ओर ध्यान खिंच रहा था।"

अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ मैं दिल्ली के रीगल होटल में ठहरा हुआ था। भाई साहब दिल्ली में थे। मैंने रेडियो स्टेशन फोन

किया। वह उस समय अपने कमरे में नहीं थे। मैंने संदेश दे दिया। कुछ समय बाद उनका फोन आया। कुशल-क्षेम पूछने के बाद बोले, "कल दिल्ली से बाहर जा रहा हूं। अच्छा हुआ तुमने आज फोन किया। मैं शाम को पांच बजे तुम्हारे होटल आ रहा हूं।" ठीक पांच बजे भाई साहब, श्री भगवतीचरण वर्मा के साथ मेरे कमरे में दाखिल हुए।

बातचीत के सिलसिले में बाबूजी (श्री भगवती चरण वर्मा) ने बताया कि मुश्किल से एक घंटे का समय निकालकर वह मुझसे मिलने आये हैं। "बार-बार कह रहे थे, शिवशंकर से अवश्य मिलना है। फिर न जाने कब मिलना हो? तुम्हारी इन्होंने इतनी तारीफ की कि तुमसे मिलने का लोभ मैं भी संवरण न कर सका।"

बाबू जी कुछ इस अंदाज में बोले कि हम सब जोर से हंस पड़े। दिल्ली की वह शाम, एक यादगार शाम बन कर रह गई है। सन् १९६० में मेरी शादी हुई। उस वर्ष दीवाली की शाम को निर्मला को लेकर जब उनके घर पहुंचा, तो वह खुशी से गद्गद् हो उठे। निर्मला के पांव देखकर सुशीला भाभी बोलीं, "बिछुवे नहीं पहने?" तो बड़े प्यार और अधिकार से भाई साहब सुशीला भाभी से बोले, "देख क्या रही हो? भीतर से लाकर बिछुए पहनाओ बहू को।"

बंबई में शिवशंकर के नाम से पुकारने वाले दो ही व्यक्ति थे, पंडित नरेन्द्र शर्मा और शंकर शैलेन्द्र। शैलेन्द्र तो बहुत वर्ष पूर्व ही बिछुड़ गये और अब भाई साहब भी छोड़ कर चले गये। स्मृतियों को मन में संजोये रखने के लिए शिवशंकर रह गये।

ऋषि-कल्प कवि नरेंद्र शर्मा :

● वीरेंद्र कुमार जैन

नरेन्द्र भाई अब नहीं हैं, यह सोचना मेरे लिए असंभव है। वे इतने जीवंत और अस्तित्ववान व्यक्तित्व थे कि मृत्यु के साथ उनको जोड़ना, मुझे असत्य प्रतीत होता है। वे बहुजन, आत्मीय और सर्वजन प्रेमी थे। हर समीप आने वाले व्यक्तित्व के वे मित्र हो जाते थे। इसी से वे अपने कार्यक्षेत्र में बहुत लोकप्रिय थे।

बरसों से वे बंबई में ही थे। कई बरसों पहले मैं जब उनके संपर्क में आया, तब वे शायद किराये के मकान में रहते थे।

तब नरेन्द्र भाई फिल्मों के गीत-संवाद लिखते थे। पूज्य पंतजी भी ऐसे ही किसी सिलसिले में बंबई आये थे। शायद वे पोंडीचेरी से लौटे थे। सभी जानते हैं कि नरेन्द्र जी पंतजी के अभिन्न अनुजवत् थे।

मगर मेरी सबसे ज्यादा स्मृतियां खार वाले वर्तमान बंगले से जुड़ी हैं। बंबई का यह समुद्र तट नरेन्द्र भाई को मानो एक सारस्वत आकर्षण या चुंबक से खींच लाया था। उस श्री-सरस्वती का सदेह-विग्रह थीं हमारी सुशीला भाभी। जहां तक मुझे याद है, यह प्रेम-विवाह था। इस परिणय में गुजरात और उत्तरावर्त का एक सुखद संयोग हुआ था।

सुशीला भाभी चित्रकार भी थीं। उनके द्वारा चित्रित कुछ चित्र अब भी खार के बंगले की बैठक में लगे हुए हैं। बैठक में सोफासॅट नहीं था। गलीचे के फर्श पर ही एक ऊंचा सा गद्दा और उस पर मसनद और तकियों तथा तोसक की सुखद बैठक। सामने लिखने की चौकी।

नरेन्द्र भाई आमूल-चूल भारतीय थे। वे हमारे साहित्य में और जीवन में भी भारतीय संस्कृति के एक जीवन्त प्रतीक थे। पान खाने का उन्हें बेहद शौक था और उसके साथ उम्दा सुगंधित तंबाकू। वह अंत तक बना रहा। सुशीला भाभी ने उन्हें गुजराती भोजन का शौकीन भी बना दिया था।

नरेन्द्र भाई मेरे जीवन में आने वाले कुछ विरल ऐसे व्यक्तियों में थे, जिनके सन्मुख मेरा अंतर-बाह्य खुली किताब की तरह था। मेरे जीवन में गोपनतम प्रसंगों को वे जानते थे। बंबई में

मेरे संघर्षित जीवन के सारे उतार-चढ़ावों के साक्षी और साथी रहे थे वे।

अग्रज थे, इसलिए प्रसंगवत वे मेरी बहुत कड़ी भर्त्सना भी कर देते थे। इसीलिए कि वे मुझे मन से प्यार करते थे, मेरे सर्जन और जीवन के लिए उनके मन में प्यार और आदर था। वे प्राय: मेरा परिचय देते हुए कहते थे- "कविर्मनीषी श्री वीरेन्द्र कुमार जैन..." अग्रजों ने इतना स्नेह शायद ही मुझे दिया।

केवल एक प्रसंग का जिक्र यहाँ करूंगा। उससे संबंधित व्यक्ति अभी विद्यमान है, इसलिए उसको संज्ञापित मैं न करना चाहूंगा। मेरी एक नौकरी में घोर पीड़न चल रहा था- प्राणांतक। प्राय: हर शाम काम से लौटते हुए मैं खार स्टेशन पर उतर पड़ता और नरेन्द्र भाई के पास पहुंच जाता, अपने प्रतिदिन के नित पीड़न की व्यथा-कथा सुनाने के लिए।

एक शाम जब पहुंचा तो सुशीला भाभी ने बताया कि "नरेन्द्र भाई, डाक-तार विभाग में गये हैं। आज ही तार आया है कि उनकी अम्माजी का देहान्त हो गया है। समाचार सुनकर मैं रो पड़ा। उनकी विधवा माँ ने ही उन्हें इस योग्य बनाया था। पिता तो बचपन में ही उन्हें अनाथ कर गये थे। इस घटना के समक्ष मुझे अपनी तकलीफ तुच्छ लगी। मैं सर झुकाये शोकार्त भाव से बैठा था कि कुछ ही देर में नरेन्द्र भाई आ गए । मैं उनके पैरों में गिरकर रो पड़ा मुझसे तो कुछ बोला ही न गया। उन्होंने अपने दोनों हाथों से उठाकर स्वस्थ भाव से कहा, "आप व्याकुल न हों। जो होना था सो हो गया। आप बैठिये आराम से और हाल सुनाइये।" मैंने कहा, "भैया मेरे, आपकी अम्मा आप से बिछुड़ गयीं और मैं अपना हाल सुनाऊं ?" मैं भर्राये गले से इतना ही कह सका। नरेन्द्र भाई नितान्त आत्मस्थ भाव से बोले, "देखिए जन्म-मरण तो एक जीवन-क्रम है। जीवन के ही दो पर्याय ! जो होना था वह हो गया। अब लौटकर उसे देखने की छुट्टी जीवन नहीं देता। मैं व्यग्र हूं आपकी तात्कालिक स्थिति जानने के लिए। मैं जानता हूं कि आप भयावह यातना से गुजर रहे हैं..."

उस दिन मैंने पं. नरेन्द्र शर्मा के रूप में गीता के स्थितप्रज्ञ

पुरुष को देखा। मुझे प्रतीति हुई कि यह व्यक्ति जो बोलता है और लिखता है, उसे जीता भी है। इसके सर्जन, चिंतन और जीवन में कोई भी अंतर नहीं है।

खैर थोड़े में अपना हाल मैंने उस दिन उन्हें कुछ बताया भी होगा, वह गौण बात है। महत्वपूर्ण यह है कि उस दिन मैंने हिन्दी के एक शीर्षस्थ कवि में गीता के "समत्व योग उच्यते" वाले योगी या युक्त पुरुष के प्रत्यक्ष दर्शन किये। मैंने अपने साहित्यिक जीवन के लंबे दौर में हिन्दी का दूसरा कोई ऐसा साहित्यकार नहीं देखा, सिवाय अक्षर-ऋषि जैनेन्द्र कुमार के, जिसमें ऐसी आत्मिक महिमा की ज्योति भास्वर हो। यादें और भी होंगी भाई नरेंन्द्र की। उन सबको यहां दोहराना प्रासंगिक न होगा।

"आगामी एक वर्ष आपके जीवन का श्रेष्ठ काल होगा। इसमें आपको कई चमत्कारिक अनुभव होंगे। आपकी सारी मनोकामनाएं पूरी हो जाएंगी..." मैं स्तब्ध रह गया। फिर मैंने कहा कि, "मेरी कुंडली तो आपने बरसों से नहीं देखी ।" नरेन्द्र भाई तपाक से बोले, "वह तो मेरी आंखों के सामने है।" और उन्होंने मेरी कुंडली का वर्णन कर दिया। उस दिन मुझे वे अपार मानसिक बल दे गये। वे प्रसंगात कहा करते थे, "आपकी कुंडली एक महापुरुषीय कुंडली है" लेकिन पंद्रह दिन बाद ही मेरे भविष्य का द्रष्टा स्वयं देहांत कर गया।

अंततः समापन में एक बात कहना चाहूंगा। पं. नरेन्द्र शर्मा भारतीय विद्याओं के गहनगामी विद्वान थे। वेद, उपनिषद्, भागवत, रामायण, महाभारत और भारत की सारी पौराणिक परंपरा के वे साक्षात्कारी थे। आयुर्वेद और ज्योतिष में भी उनकी अद्‌भुत अन्तर्दृष्टि थी। विश्व-इतिहास और विश्व साहित्य के इतिहास को भी उन्होंने गहराई से जाना था। अंग्रेजी के एम.ए. तो खैर वे थे ही, पर विश्वसाहित्य की 'क्लासिक' रूमानी परंपरा भी उनके लिए हस्तामलकवत् थी। इसी प्रकार हमारी काव्यनिधि को भी उन्होंने तमाम गहराइयों के साथ साक्षात्कृत किया था। ऐसा कोई विषय नहीं था, जिस पर वे बात न कर सकें। अंग्रेजी में भी वे धाराप्रवाह भाषण देते थे।

छायावादोत्तर काल के वे एक शिखरस्थ और ऊर्ध्व चेतस् कवि और मौलिक चिंतक थे। शब्द उनके भीतर सहस्रदल कमल की तरह अनेक भावों और अर्थेच्छाओं की तरह खुलता चला जाता था।

नरेन्द्र भाई को मैं उनकी युवावस्था से ही देखता आया था। उनकी मुखाकृति बहुत ही मृदु और सुंदर थी। उनकी आंखें बड़ी मादक और रसभीनी थीं। वे मानो आत्मा के सौंदर्य की सुरा पीकर ही जन्में थे। उम्र के निशान पड़ने पर भी उनकी मुखाकृति का माधुर्य और सौंदर्य अंत तक बना रहा। भारतीय कविता का यह सौंदर्यपुरुष अनंतों में जयवंत हो।

हिन्दी में वे हमारी ऋषि-परंपरा के एक महान कविर्मनीषी और द्रष्टा थे। उनकी इस स्मरणांजलि के प्रसंग पर मैं उन्हें साष्टांग प्रणाम करता हूं। नरेन्द्र भाई मेरे लेखे मरे नहीं, क्योंकि वे अमृत-पुत्र थे। इस देश की मृत्युंजयी परंपरा की एक महान संतान थे।

मृदु भाषी तथा सरल व्यक्तित्व के धनी : पंडित श्री नरेंद्र शर्मा

●पुरुषोत्तम रूइया 'मुस्कान'

श्री नरेंद्र जी शर्मा से मेरा परिचय बड़ा ही घनिष्ठ और करीब का रहा है। स्वर्गीय बाबा जी श्री बृजमोहन लक्ष्मीनारायण जी रुइया द्वारा स्थापित श्री बी. एल. रुइया हाई स्कूल, विले पार्ले (पूर्व) बंबई-४०००५७ के प्रांगण में हमेशा ही बडे-बड़े साहित्यिकों तथा विद्‌वानों का आदर - सत्कार होता आया है और इसी परंपरा के अनुसार आदरणीय पं. नरेंद्र शर्मा कई बार कवि- गोष्ठियों, सम्मेलनों, वाद-विवाद, अंत्याक्षरी- प्रतियोगिताओं में समय- समय पर पधारते रहे थे और इसीलिए उनसे बार- बार मिलने का, विचार-विमर्श करने और उनके नजदीक आने का सौभाग्य मुझे अंत तक मिलता रहा था। प्रातः स्मरणीय श्री नरेंद्र शर्मा ने सदा ही मुझे छोटे भाई की तरह स्नेह दिया। पंडित जी के एक मात्र पुत्र चि. परितोष ने मेरे ही हाथ के नीचे मेरे ही साथ अपनी व्यापारिक गतिविधियों को स्वरूप दिया। यह पंडित जी की मुझपर कृपा रही। पूज्यनीय भाभी जी ने भी मुझे हमेशा अपने घर का एक सदस्य माना और जब भी कभी खार स्थित उनके घर जाने का मौका मिला, आदरणीय भाभी जी श्रीमती सुशीला शर्मा ने अपने बच्चे की तरह ही मुझे अपना स्नेह प्रदान किया।

पंडित जी के सादे रहन- सहन, सरल स्वभाव, उनकी विद्‌वत्ता तथा मिलनसारिता के कारण जो व्यक्ति एक बार भी मिल लेता था, वह व्यक्ति उन्हें अपना ही मानकर हमेशा अपने सुख-दुख का हाल उन्हें जाकर बतलाता और उनसे परामर्श लेकर ही वह कोई निर्णय लेता था। जीवन के हर पहलू को अपने विशाल हृदय में समुद्र की तरह संजोकर रखना और बाद में समुद्र मंथन करके हर व्यक्ति की समस्या का हल प्रदान करना, यह कार्य केवल भगवान विष्णु कर सके थे। अपने संपर्क में आये हुए व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान सुझाने के साथ ही वे समय- समय पर अपना जीवन सुखी बनाने के लिए परामर्श दिया करते थे।

पंडित जी अनेक बड़े राजनेताओं के संपर्क में रहे थे। यदि वे चाहते तो अपने इस संपर्क का उपयोग करके कहीं पहुंच सकते थे और इस भौतिकवादी दुनियां में ढेर-सा-धन संग्रह कर सकते

थे, ऐश्वर्य का जीवन जी सकते थे, लेकिन आदरणीय पंडित जी ने कभी भी अपने परिचय और संपर्क का दुरुपयोग नहीं किया और अपना जीवन अनेक संघर्षों के बीच में भी बड़े शान से जिया। स्वर्गीय पं. जवाहरलाल, राजेंद्र प्रसाद जैसे अनेक महापुरुषों से परिचय और संपर्क होते हुए भी अपने कठिन परिश्रम संस्कार और भारतीय संस्कृति को अपने जीवन में पिरोये रखा और विदेह की भांति ही हमेशा जीते रहे।

आपकी रचनाओं में संघर्ष, दीन-दुखियों के क्लेश, समाज के साधारण व्यक्तियों के जीवन और अमीर- गरीब के अंतर की झलक हमेशा ही प्रस्फुटित होती रही है और मानव मात्र के प्रति उनकी संवेदनशीलता ने उन्हें महान बनाया। पंडित जी जनमानस के कवि थे, जनमानस के रचनाकार थे और उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा सारे संसार को सहयोग और सद्‌भावना से रहने का एक जीवन मर्म दिया। गुलामी के जीवन की उन्होंने भर्त्सना की और कष्टों में रहकर भी स्वतंत्र रहने को उन्होंने अपने जीवन का गौरव माना। आप रूस- क्रांति से बहुत प्रभावित थे। भारत में भी समाजवाद के जरिए हर भारतीय सुख और चैन का जीवन बिता सके, यही उनके जीवन का स्वप्न था और इसलिए 'लाल निशान' आदि पुस्तकों में उन्होंने कई जगह अपने इन विचारों को अभिव्यक्ति दी है। 'ज्योति क्लश छलके' की रचना भी इसी का द्‌योतक हैं।

पंडित जी ज्योतिष विद्‌या के भी अच्छे जानकार थे और ग्रह-नक्षत्र आदि का अध्ययन करके कुंडली का फल भी बताया करते थे। ज्योतिष उनका शौक था और किसी -किसी सौभाग्यशाली को ही यह फल प्राप्त होता था। बड़े- बड़े फिल्मवाले, सेठ- साहूकार, राजनीतिज्ञ पंडित जी के इर्द- गिर्द चक्कर लगाते रहते थे, लेकिन यदा- कदा ही उन्हें अपने जीवन के तत्व का ज्ञान पंडित जी देते थे। घटना घटित हो जाने के बाद ही वह व्यक्ति उस तंत्र को समझ पाता था और बाद में उसे मालूम होता था कि आदरणीय पंडित जी ने यह बात मुझे बहुत पहले ही बता दी थी और वह फिर से उनके पास एक बार पहुंच जाता था और अपने जीवन में बार-बार उनके पास कुछ और जानने के लिए पहुंचा करता था। एक योगी की भांति ध्यानस्थ होकर पंडित जी ने जो कुछ भी भविष्यवाणी की, वह कभी अकारथ नहीं गयी। नक्षत्रों को भेदकर सत्य तक पहुंचने की उनकी अंतदृष्टि अद्‌भुत थी।

पंडित जी कर्मनिष्ठ, सिद्धांतवादी, सादा और सरल जीवन जीने वाले व्यक्ति थे। सुख- दुख में समान भाव से स्थितप्रज्ञ पंडित जी भौतिक संसार में रहकर भी कमल पत्र की भांति सदा विकार मुक्त रहे। मृत्यु भी उन्हें इसी तटस्थ भाव से मिली। वे तो मृत्युंजय थे। उनका मरना कोई मरना नहीं कहा जा सकता, जो अमर हो उसका मरना क्या ? उनके संदर्भ में दद्दा की पंक्तियां याद आती है।

'वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे,
मरा नहीं वही कि, जो जिया न आपके लिए'

मनुष्यता की इस कसौटी पर पं. नरेंद्र शर्मा से बढ़कर शायद ही कुछ विरले खरे उतरते हों।

पंडित जी मृदु और अल्पभाषी थे। नाप- तौलकर बोलते थे। उनके शब्दों में 'गागर में सागर' वाली बात होती थी। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक गहन - गंभीर बात कहने की परम क्षमता थी उनमें। वे स्पष्टवादी थे, किंतु भाषा में कटुता नहीं थी। गलती करने वाले को टोके बिना नहीं रहते थे। यह मैंने उनके निकट होने के कारण अनुभव किया। उन्होंने अपनी पीड़ा सदा अपने तक ही सीमित रखी, मात्र अपने सुख वे स्वजनों के बीच बांटते रहे। लोगों को सुखी देखना उनकी मूल प्रवृत्ति थी। कई प्रकरण मुझे याद आते हैं, जब पंडित जी ने दूसरों का दु:ख इस तरह बांट लिया कि वे पलभर में हलके हो गए। अपनी तीक्ष्ण पीड़ा को हृदय में दबाये, वे दूसरों को ढाढ़स बंधाते रहते, वे परदु:खकातर थे, पोर-पोर में करुणा थी, इसीलिए तो कवि थे और इसीलिए वे ऋषि भी हुए। भौतिक संसार के मोहजाल से प्राणी को मुक्त करने में पंडित जी को महारत हासिल थी। संसार की क्षणभंगुरता को वे चुटकी बजा कर समझाते थे। संसार की नश्वरता और जीवन की अमरता का संदेश देने वाला यह ज्ञान-योगी कर्म की उपासना करता है। उनकी चित्तवृत्तियों में आए इस परिवर्तन का प्रभाव उनकी रचनाओं में भरपूर देखा जा सकता है।

पंडित जी अपने पीछे जो सद्भावना, प्रेम और सहृदयता छोड़ गये हैं, वह चिरस्मरणीय रहेगी और प्रात: स्मरणीय पंडित जी ऋषिकल्प नरेंद्र शर्मा हमारे बीच सत्त जीवंत ही रहेंगे।

पंडित नरेंद्र शर्मा

●धीरेन्द्र वर्मा

स्मृति के गलियारों में जो भव्य और दिव्य घटनाओं और महापुरुषों की चित्रावली है, उनमें पंडित नरेन्द्र शर्मा जी का व्यक्तित्व एक मणि के समान जगमगाता रहेगा। यह हमारी पीढ़ी का सौभाग्य था कि हमने हिन्दी के साहित्याकाश पर इतने सारे नक्षत्रों को एक साथ आभा बिखराते देखा। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के भारत के प्रेरणास्रोत इन साहित्यकारों और कवियों में पंडित नरेन्द्र शर्मा जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का यह प्रकाश वर्तमान और भविष्य को आलोकित करता हुआ आने वाले युग में दिशा–निर्देश देता रहेगा।

नरेन्द्र जी कवि थे। कविता केवल एक साहित्यिक विधा मात्र नहीं थी उनके लिए। वे जन्मजात कवि थे। कवि भावना का प्रतीक होता है और यह भावना उदात्त होती है। नरेन्द्र जी इसी उदात्त भावना का मानवीकरण थे। ममता, प्रेम, त्याग, करुणा और आनंद, ये सभी तो उदात्त भावना के मूल तत्व हैं और इन भावनाओं में जब आध्यात्मिक और आत्मिक विश्लेषण और अभिव्यक्ति सम्मिलित हो जाती है, तो कविता के छंद के माध्यम से मंत्र की सृष्टि होने लगती है। नरेन्द्र जी की कविता में यह मंत्र शक्ति कब और कैसे आई, यह तो साहित्यिक समालोचक ही बता सकेंगे, पर एक पाठक के रूप में मुझे उनकी इस शक्ति की झलक उनकी प्रारम्भिक कविताओं में ही देखने को मिली और धीरे–धीरे उनके प्रौढ़ होते–होते इस शक्ति में लगातार विकास और अभिवृद्धि होती गई।

नरेन्द्र जी की विशेषता थी कि वे प्रत्येक स्तर के पाठकों और श्रोताओं के लिए गीतों की रचना कर सकते थे। छायावादी कवियों के बीच विराट कवि- सम्मेलनों में उनके गीत वातावरण को रसमय बना देते और काव्य प्रेमियों के मन–मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ जाते। इसके पश्चात् प्रारंभ हुई उनकी जनवादी कविताओं की शृंखला, जिनके द्वारा नरेन्द्र जी प्रगतिवादी कविता के युगप्रवर्तकों में शामिल हो गये और इस बीच नरेन्द्र जी फिल्मों और आकाशवाणी से जुड़ गये जहां सामान्य जन के लिए उन्होंने सुरम्य गीत लिखे। ये गीत जहां एक ओर अपनी सरल भाषा और भावों के कारण जन–जन में लोकप्रिय हुए, वहीं दूसरी ओर इन गीतों के सुन्दर शब्दों तथा उच्च भावों ने जनमानस की भावगम्यता का विकास

करते हुए उनकी रुचि में परिष्कार किया और हिन्दी की सुगम साहित्यिक अभिव्यक्ति को सामान्य जन में लोकप्रिय बनाया।

आकाशवाणी और फिल्मों के लिए नरेन्द्र जी ने जो गीत लिखे, उनसे जहां एक ओर हिन्दी घर- घर में पहुंची, वहीं दूसरी ओर रेडियो और फिल्मों से प्रसारित होनेवाले गीतों का स्तर भी ऊंचा उठ गया। परंतु इस सारी कालावधि में साहित्यिक कविताओं के क्षेत्र में छायावाद, प्रगतिवाद को अपना योगदान देने के पश्चात नरेन्द्र जी ने अपनी कविताओं में आध्यात्मिक और दार्शनिक अभिव्यक्ति को प्रमुख आधार बनाया। नरेन्द्र जी की साठोत्तर कविताओं का आकलन आनेवाला युग करेगा, क्योंकि वर्तमान युग में कविता पर बौद्धिकता से बोझिल गद्य–साहित्य की धूल बैठती जा रही है, परन्तु यह निश्चित है कि जब यह धूल बैठ जायेगी और "आकाश साफ हो जायेगा" तब नरेन्द्र जी की ये कविताएं स्वर्णाक्षरों की भांति चमकने लगेंगी।

आज नरेन्द्र जी हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु नरेन्द्र जी जैसे लोग हमारे बीच पार्थिव रूप से कभी नहीं रहते हुए भी आत्मिक रूप से हमारे साथ सदैव रहेंगे। नरेन्द्र जी की काव्यधारा अनन्त काल तक हमें आनंद और निर्देश देती रहेगी। फिल्म उद्योग और आकाशवाणी को उनकी देन आने वाली पीढ़ियां उनके व्यक्तित्व की झलक पाने में असमर्थ रहेंगी और यही हमारी पीढ़ी का परम सौभाग्य है कि हमने उन्हें देखा, जाना।

पंडित नरेन्द्र शर्मा जी को मैं चाचाजी कहता था। बंबई के माटुंगा के उस फ्लैट के साथ चाचाजी की इतनी यादें जुड़ी हैं, जो जीवन का भाग बन गई हैं। मैं उन दिनों शायद दूसरे स्टैन्डर्ड में पढ़ता था, जब वह बंबई आये थे। उनके व्यक्तित्व का वह प्रभाव जो उस समय पड़ा था आज भी उतना ही सजीव है। अनेक बुरी आदतों को छुड़वाना और अनेक नई अच्छी आदतें डलवाना, उनकी आदत थी।

वह इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि थाली में परोसी कोई चीज हम छोड़ न दें। लगातार टोकने से यह आदत ऐसी पड़ी कि आज तक वह एक नित्य–क्रिया बन गई है। उनका कहना था कि खाना उतना ही परोसना या परोसवाना चाहिए जितना हम

खा सकें, अतिरिक्त ले कर उसे जबरदस्ती खाना या छोड़ देना वह बहुत गलत समझते थे। इस आदत के कई नुकसान भी थे जैसे किसी भोज में वह सब खाने की विवशता जो हमें नापसन्द हो। ऐसी ही एक घटना वह बताते थे तब घटी, जब वे दक्षिण भारत में अपने किसी परिचित के यहां भोज पर आमंत्रित किये गये। गृहणी ने सत्कारवश काफी परोस दिया था और इन खाद्य पदार्थों के साथ एक इमली और मिर्चे से बना हुआ तरल पदार्थ था जो चाचाजी के लिए काफी कडुआ और कष्टप्रद था पर उन्हें सारा भोजन समाप्त करना ही था। अतः इस पदार्थ की कडुवाहट और बदजायके को ध्यान में रख कर उन्होंने सबसे पहले उसे ही समाप्त करना उचित समझा और हिम्मत करके आंख मूंदकर वह कटोरा उठाकर उसे गटगटाकर पी गये। मगर ज्यों ही उन्होंने कटोरा खाली करके रखा, तभी गृहणी महिला ने प्रसन्न होकर उनके कटोरे में वही पदार्थ फिर से लबालब भर दिया यह सोचते हुए कि अतिथि को वह बहुत पसंद आया।

बंबई में बाबूजी, नरेन्द्र जी साथ ही स्टूडियो जाते, साथ ही आते और उनकी साहित्यिक गोष्ठियां भी साथ होतीं। पंतजी, बच्चनजी, दिनकरजी, मैथिलीबाबू, न जाने कितने महान साहित्यकार उस छोटे से फ्लैट में इकट्ठा हो जाते और वातावरण को उज्ज्वल कर देते थे। नरेन्द्र जी की उस काल की कविताओं में "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे", और 'चौमुख दिवला बाल धरूंगी" को उनके मुख से सस्वर सुनने के अनेक अवसर मिले थे।

बॉम्बे टाकीज के लिए जो गीत वे लिखते थे, उन्हें वे बाबूजी और मां को पहले सुनाते और हम बच्चे लोग भी उन गीतों का आनंद लेते। "मैं उनकी बन जाऊं रे", "ऐ बादेसबा इठलाती न आ", "बादल दल-सा निकल चला ये दल मतवाला रे" आदि गीत सर्वप्रथम उनके मुख से सुनने का सौभाग्य मिला। "हमारी बात" के इन गीतों के बाद तो गीतों का एक ऐसा सिलसिला चला, जो अंत तक चलता रहा।

फिर चाचाजी को शिवाजी पार्क में एक फ्लैट मिल गया, जो माटुंगा से पैदल चलने की दूरी पर स्थित था। हम लोग अक्सर शाम को वहां पहुंच जाते या स्वयं चाचाजी माटुंगा आ जाते। उनके घर के पास ही समुद्र तट था, जहां की सैर हम लोग साथ-साथ

करते और फिर वहीं चाचाजी का घर भी बस गया। उनके विवाह का एक-एक पल आज भी स्मृति में वैसा का वैसा अंकित है। पूज्यनीय सुशीला चाचीजी का जो स्नेह उस बाल्यकाल में मिला था, वह आज तक मिलता आ रहा है। फिल्म और साहित्य जगत का मानों संगम था उनकी बारात में।

उसके बाद फिर बाबूजी को बंबई छोड़ना पड़ा और चाचाजी बंबई में जम गये। पर मन उनका तब भी उत्तर भारत में रमता था और उनका बराबर संपर्क बना रहा उत्तर प्रदेश से। और फिर से उनका सानिध्य प्राप्त हुआ नई दिल्ली के साउथ एवेन्यू के छिहत्तर नंबर के फ्लैट में जब वे आकाशवाणी से जुड़कर नई दिल्ली आ गये और बाबूजी पहले से ही दिल्ली आकाशवाणी से जुड़े थे। साउथ एवेन्यू में जब उनके संपर्क में आया तब मैं उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा था और इस योग्य हो चुका था कि उनसे ज्ञान, अध्यात्म और दर्शन पर कुछ सीख सकूं और मुझे गर्व एवं संतोष है कि इसके बाद लगातार उनसे कुछ न कुछ पाता ही रहा, इतना कुछ कि कह पाना या बताना मुश्किल है।

नरेन्द्र जी का व्यक्तित्व अत्यन्त सुकुमार होते हुए भी सिद्धांतों और मूल्यों के लिए अत्यन्त कठोर था। समझौता, चाहे व्यक्ति से हो अथवा सिद्धातों से, उन्होंने कभी नहीं किया और यही कारण था कि उन्होंने जो कुछ भी रचा उस पर उनकी मौलिक छाप थी। लौकिक प्रोत्साहन उन्हें कभी भी डिगा नहीं पाए और वह अपने निर्धारित मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। नरेन्द्र जी कभी प्रसिद्धि की ओर स्वयं नहीं गये, प्रसिद्धि को ही उनके पास आना पड़ा। बड़े से बड़े निर्माता और निर्देशक उनके पास दौड़ते थे और शायद ही किसी को उन्होंने निराश किया हो।

नरेन्द्र जी एक मनीषी थे। वे जीवन के मर्म को जानते थे। वे एक ज्योतिषी, चिन्तक तथा विचारक साथ-साथ थे। अतीत, वर्तमान और अनागत की सीमा में उन्होंने कभी भी काल को बंदी नहीं बनाया। उनके लिए समय एक ठहरी हुई संज्ञा है। संभवतः यही कारण है कि वे हमारे बीच न होते हुए भी हम सबों के साथ अपने सनातन रूप में विद्यमान हैं। उनका अध्यात्म और उनका ज्ञान उनके व्यक्तित्व का अविच्छिन्न अंग था, परंतु उन्होंने कभी भी इन्हें किसी पर आरोपित नहीं किया। बहुत आग्रह पर

और श्रोता की सुपात्रता को परखने के बाद ही वे अपने अन्तर्मन को खोलते थे, पर उनकी अधिकांश अभिव्यक्ति केवल शब्दों के माध्यम से न होकर अक्सर शब्दों के बीच मौन संभाषण में होती थी, क्योंकि या तो शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं थी या श्रोताओं का शब्द- ज्ञान इतना अल्प होता था कि वे पूर्ण रूप से संप्रेषण नहीं कर पाते थे और ऐसी स्थिति में सिवाय मौन संभाषण (टेलीपेथी) के और कोई विधा नहीं होती।

मेरा परम सौभाग्य था कि अक्टूबर १९८८ में मैं बंबई में उनसे कई बार मिला और उनके साथ बातों के लंबे दौर चले । उनकी मधुरवाणी और उनके उच्च विचारों का संकलन स्मृति–पटल पर जन्म–जन्मान्तर तक रहेगा । सन् उन्नीस सौ चवालीस – पैंतालीस के बाल्यकाल से आरंभ हुए उनके स्नेह और संबंध की यह लगभग आधी शताब्दी जीवन की एक बहुमूल्य धरोहर बन गयी है। बंबई, दिल्ली और लखनऊ फैली हुई यह स्मृति पिछली अक्टूबर को एक वृत्त का रूप लेते हुए बंबई में संपूर्ण हो रही है , यह मैं नहीं समझता था पर शायद वह जानते थे, क्योंकि अब जब कभी उन बातों की यांद करता हूं तो लगता है कि उन्हें आभास हो गया था कि यह मुझसे उनकी अंतिम और समापन मुलाकात थी । इस बार उनसे बात करते हुए लगा कि वह हर चर्चा को पूर्ण करते जा रहे हैं और अब कोई भी बात स्थगित करने की बात नहीं थी । उनकी इस बार की भेंट से संबंधित सारी बातें, लगता है अक्षरशः याद आती जा रही हैं, परंतु शायद उनमें अनेक बातें व्यक्तिगत थीं अतः उनकी चर्चा शायद इतनी जल्दी गलत होगी ।

उनकी एक बात की चर्चा करना आवश्यक समझता हूं । जीवन और मृत्यु के बारे में उनकी धारणा बड़ी ही सुंदर थी और यह दृष्टिकोण हम सबके लिए उपयोगी और प्रेरणादायक रहेगा । उन्होंने कहा था कि यह जन्म एक दिन है और यह शरीर उस दिन की वेशभूषा है । जिस तरह स्नान करने के बाद वही कपड़े जो हमने इतने प्रेम से पहने थे, उन्हें हम छूना तो क्या, देखना भी नहीं पसंद करते, उसी प्रकार यह शरीर है, जिससे मोह या लगाव तभी तक है जब तक उसे हम धारण किये रहते हैं, पर एक बार उसे उतारने और स्नान करने के बाद उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है और फिर हम धुले और स्वच्छ वस्त्रों को धारण करते हैं ।

नरेन्द्रजी उन लोगों में थे जिनकी चादर मैली तो नहीं हुई थी, पर जिसका उपयोग वह करके उसे उतार कर ज्यों की त्यों छोड़ गये ।

आज के युग के व्यास

● किशनचंद शर्मा

नरेन्द्र शर्मा एक ऐसी जीवात्मा थे, जिन्हें प्रात: स्मरणीय मानकर वंदन किया जाना चाहिए। उन्हें याद करने से जीवन का हर क्षण आनंदमय हो जाएगा। वे आज के युग के व्यास थे। यानि सही माने में ब्राह्मण, जिन्हें चारों वर्णों से द्वेष या ईर्ष्या न हो। वे सबको समान दृष्टि से देखते थे। उनका हर व्यक्ति से संपर्क गीता के भाव का था, वे हर व्यक्ति में परमात्मा का भाव देखते थे। उनके द्वारा सृष्टि के रहस्य हमारे सामने खुल जाते थे। वे जीवन की हर जटिल से जटिल समस्या, या प्रकृति का कोई भी रहस्य हो, उसको सरल और मनोरंजक शब्दों में समझाते थे। पढ़ा-लिखा तो क्या, बिना पढ़ा-लिखा भी हर कोई उनकी बात को समझ सकता था और अपनी समस्या सुलझा सकता था। यह उनका सबसे बड़ा गुण था। ज्ञान की दृष्टि से उन्हें पूर्णज्ञान था। वैसे ही विज्ञान का भी उन्हें ज्ञान था। संसार के जितने भी विषय हों, शारीरिक, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, खगोल विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, हर एक में उनकी सूझबूझ बिलकुल पराकाष्ठा में थी। हर समस्या को वे बड़े सरल ढंग से सुलझाते थे। सबसे बड़ी उनमें विशेषता थी कि उनका चेहरा हमेशा मुस्कराता रहता था और जो भी उनके पास जाता, अपनी सारी समस्याएं भूलकर, उन्हें सुलझाकर, खुशी-खुशी वापस आता था। परमात्मा की भक्ति वे भक्तियोग से ही करते थे। एक वाक्य है- "भक्ति में कोई नियम या संयम नहीं होता, प्रेम होता है।" प्रेम में ही उनकी भक्ति की पराकाष्ठा थी। एक बार मैं जन्माष्टमी पर उनके दर्शनार्थ रात को ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे गया था। थोड़ी देर बाद जब प्रणाम करके निकलने लगा तो कहने लगे, "श्रीकृष्ण का प्रसाद लेते जाइए।" मैंने कहा, "अभी तो जन्म बारह बजे होगा।" तब बोले, "आप आ गये और उनका जन्म हो गया। प्रसाद ग्रहण करिए।" उनका इतना भक्तिभाव था जो यदा-कदा ही किसी महापुरुष में मिलता है। ऐसे महापुरुष के विषय में कुछ भी कहा जाये तो वो कहना कम ही होगा। उनके विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। मैं अपने को बहुत ही सौभाग्यशाली समझता हूं कि प्रिय अनुज की तरह वे मुझे चाहते थे और स्नेह देते थे। ऐसी आत्मा को कोटि-कोटि प्रणाम। ऐसे महापुरुष को प्रकृति कभी-कभी ही संसार को रास्ता दिखाने के लिए भेजती है। वे प्रतिदिन हम सबके बीच में ही हैं। केवल अंतर्ध्यान हो अपनी

समाधि में खो गये हैं। वही सब उनका आशीर्वाद और उनकी शक्तियां उनके परिवार में हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि उनकी देन को प्रगति के पथ वे चलाते रहेंगे। आदरणीय भाभी जी के विषय में क्या कहूं? वो भी साक्षात् सरस्वती की ही देन हैं। बहुत बुद्धिशाली, विवेकमयी। अब नरेन्द्र जी की छवि उन्हीं में देखी जा सकती है। पंडित जी कहीं नहीं गये। वे वही ममतामयी मां के रूप में भाभी में दिख सकते हैं।

ज्योति-पुरुष प. नरेंद्र शर्मा

● मोतीलाल मिश्र

पं. नरेन्द्र शर्मा से मेरा परिचय तीन दशक पूर्व हुआ था । खार, बंबई में एक दिन जब मैं अपने प्रतिष्ठान में बैठा हुआ था, पंडितजी धोती, कुरता और जाकिट पहने हुए अपनी साहित्यिक वेशभूषा में वहां से निकल रहे थे । उन्हें देखकर मेरे मन में उनके प्रति आकर्षण बढ़ा और मैंने उनके बारे में जानना चाहा । किसी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि आप पं. नरेन्द्र शर्मा हैं । नाम से प्रभावित हुआ और यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि वे भी यहाँ खार में उन्नीसवें रास्ते पर रहने के लिए आ गये हैं ।

इसके बाद मेरा उनसे मिलना-जुलना प्राय: होता रहता था । सन् १९६८ में जब मेरा प्रथम काव्य-संग्रह प्रकाशित होने जा रहा था, मैंने पंडित जी से आशीर्वाद के दो शब्द लिखने के लिए कहा । पंडित जी ने सहर्ष इसे स्वीकार कर उस पर अपनी सम्मति लिखी । पुस्तक का नाम "दीप से दीप जले" था और वह श्री सरस्वती कुमार दीपक को समर्पित थी । पंडित जी द्वारा लिखी गयी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं । "दीपक जी अपने अथक साहित्यिक परिश्रम और साहित्य सेवा के प्रति स्नेहार्पण के कारण अभिनंदनीय हैं । मोती आब के लिए प्रसिद्ध होता है और दीपक अपने प्रकाश के लिए । मोती द्वारा दीपक का अभिनंदन उचित ही है ।" अपनी, सहजता, सरलता एवं विनम्रता के प्रति पं. जी सदैव जागंरूक रहते थे । भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी । उनका अध्ययन और चिंतन अपने-आप में श्लाघनीय था । बंबई में "हिंदी भवन" बने, यह उनकी हार्दिक भावना थी । जब हम कुछ लोगों ने इस योजना की सूचना उन्हें दी, तो वे बड़े प्रसन्न हुए । अध्यक्षता का प्रस्ताव स्वीकार करते हुए अपना पूरा स्नेह, सहयोग देने का आश्वासन दिया । हमसब के मार्गदर्शक के रूप में हमारे साथ रहे ।

इस बीच बहुत सारे अवसरों पर पंडित जी का सानिध्य प्राप्त होता रहा । २८ फरवरी जो कि पं. जी का जन्मदिन है, उस दिन उनके निवास पर बड़ा ही मोहक आयोजन होता । कई बार उसमें शरीक होने का अवसर प्राप्त हुआ । उसमें सम्मिलित लोगों के प्रति एक-सा स्नेह-भाव देखते ही बनता था । एक घटना जिसने मुझे कृष्ण-कथा-काव्य 'कल्याणी' लिखने की प्रेरणा दी, उसके केंद्र

पं. जी ही थे । उन्हीं के आवाहन एवं प्रेरणा का ही परिणाम था कि "जीवन-बोध" कविता संग्रह प्राप्त कर उन्होंने मुझसे कहा 'काव्य-संग्रह तो कई हो चुके, अब कोई प्रबंध काव्य लिखिये' । मैंने पं. जी का अभिवादन करते हुए उनसे कोई विषय देने को कहा । उनका संकेत "कृष्ण" पर लिखने की ओर देख कर मैंने पं. जी से कहा आपके आशीर्वाद से मैं यह विषय स्वीकार करता हूं । मैंने मन में उस लीला-पुरुष वासुदेव पर भावना के शब्दों को समर्पित करने का संकल्प लिया । बंबई से प्रकाशित हिंदी पाक्षिक 'उत्तर-दर्शन' में क्रमिक रूप मे प्रकाशित होने लगी कृष्ण-कथा "कल्याणी": शीर्षक से । पं. जी उसे बराबर पढ़ते थे । बीच-बीच में मिलकर जहां कहीं कुछ निर्देश देना होता, संकेत कर देते । पुस्तकाकार रूप में "कल्याणी" बाद में छपी, उसके पूर्व ही उसका वीडियो कैसेट तैयार हुआ था । पं. जी से मुलाकात होने पर यह सूचना दी, तो बड़े प्रसन्न हुए और देखने के लिए स्वयं ही तैयार हो गये । मैंने गद्‌गद होकर दूसरे ही दिन कार्यक्रम रख दिया । संयोग से उसमें आदरणीय भाई प्रदीप जी भी सम्मिलित थे । शर्माजी के साथ भाभी सुशीला शर्मा भी उनके साथ आई थीं । मैं ऐसा सुखद संजोग पाकर "कल्याणी" के एक तरह से विमोचन समारोह जैसा अनुभव कर रहा था । पूरे डेढ़ घंटे का कार्यक्रम बड़ी तन्मयता से देखते रहे । सभी की प्रतिक्रिया मधुर रही । मैंने इस अहोभाग्यवश प्राप्त सुअवसर को सार्थक रूप में पुस्तक में संलग्न करने के लिए पं. जी से उनकी प्रतिक्रिया भी ली, जो पं. जी के विराट रूप का दर्शन कराती है ।

पंडितजी निश्चित रूप से बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । उनका चिंतन और अध्ययन भारतीय मनीषा के आत्म-गौरव का भावबोध जागृत करता था । जब भी वे किसी मंच पर बोलने के लिए खड़े होते, उनकी वाणी ओज से भर उठती थी । गर्व, गरिमा और गौरव का समन्वय देखते ही बनता था । रेडियो और दूरदर्शन के माध्यम से इधर पं. जी काफ़ी सक्रिय थे । उनकी षष्ठिपूर्ति पर प्रकाशित स्मारिका में उनके अभिनंदन में एक कविता जो मैंने पं. श्रीनाथजी द्विवेदी के आग्रह पर लिखी थी, शर्माजी को बड़ी पसंद आयी थी । यथा--

वाणी पुत्र तुम्हारा वन्दन ।
करते हम उर से अभिनंदन ।
शत् वसंत की उमर प्राप्त हो
बने तुम्हारा जीवन चन्दन ।
ज्योति-कलश छलके जीवन में
मधु-सौरभ महके
दिव्य भावना, मधुर कल्पना
मिले जगत को नई चेतना,
रहे उल्लसित तव अन्तरमन
परम शक्ति शिव महादेव से
यही हमारा सत्वर वंदन ।

इस षष्ठिपूर्ति के अवसर पर पं. जी के शुभचिन्तकों को देखते ही बनता था । स्वर-सम्राज्ञी लता मंगेशकर पंडितजी को बड़ा आदर देती थीं । उनके गीतों को अपनी स्वरधारा में पिरोकर जन-सामान्य में उन गीतों को अमरता प्रदान की । पंडित जी के जन्मदिन के शुभ अवसर पर लताजी अवश्य ही उनके घर आती थीं ।

भाई श्री शर्माजी जीवन के अंतिम क्षणों तक पूर्णरूप से सक्रिय रहे । यह उनकी कर्मठता का परिणाम था । पिछली २८ फरवरी को, जो कि उनका ७५ वां जन्मदिन था, मैंने उन्हें "बाल-कृष्ण" की एक छोटी-सी फ्रेम युक्त तस्वीर भेजी । उस चित्र पर पं. जी बड़े मुग्ध हुए । दूसरे ही दिन मुझे बधाई देने आ गये । मैंने कहा पं. जी यह आपकी सहृदयता हैं । आप जैसा व्यक्ति हम सबके बीच में है, यह हम सबके लिए गर्व की बात है । इधर काफी अरसे से पंडित जी "भरत" पर कोई काव्य लिख रहे थे, जिसके कुछ अंश किन्हीं कार्यक्रमों में सुनने को मिले थे। आज पंडित जी हम सब कें बीच में नहीं हैं। क्रूर काल ने ११ फरवरी १९८९ को उन्हें हमसे सदा सर्वदा के लिए छीन लिया । दुर्भाग्य से मैं उस समय प्रयाग कुंभ स्नान को गया हुआ था । वापसी में रास्ते में दैनिक "नवभारत" में पंडित जी के निधन के समाचार से स्तब्ध रह गया ।

गहन और विस्तृत ज्ञान के भंडार : पं. नरेंद्र शर्मा

●रामकृष्ण बजाज

पं. नरेन्द्र शर्मा के बारे में लिखना मेरे लिए बहुत आसान नहीं है, कारण कि एक लंबे अरसे से मैं उनका प्रशंसक जरूर रहा, लेकिन उनसे व्यक्तिगत संपर्क में बहुत कम रहा और उनके बहुत निकट के परिचय में नहीं आया।

बरसों पहले जब 'रामराज्य' फिल्म के गीत प्रसिद्ध हुए तो वे मुझे भी बहुत भाये। बल्कि आज भी अच्छे लगते हैं, कभी-कभी सुनता भी हूं। मधुर संगीत तो था ही, गीतों की शब्दावली और भाव-विचार भी बड़े माकूल थे। और अब "महाभारत" टी.वी. सीरियल के कथानक व गीत देखते-सुनते हैं तो पंडित नरेन्द्र शर्मा की इस लंबी गीत-साहित्य-यात्रा के प्रति प्रशंसा का भाव और अधिक बढ़ता है।

कुछ बरस पहले भाई कमलनयनजी की जीवनी किसी अच्छे लेखक से लिखवाने का प्रस्ताव था। दसियों नाम इस बारे में सुझाए गये। तमाम सोच-विचार के बाद हम लोगों की नजर नरेन्द्रजी पर ही ठहरी। सब तरफ से उनके साहित्यिक ज्ञान, लिखने की शैली आदि के बारे में प्रशंसा ही सुनने को मिली। सो यह काम उन्हें ही सौंपा गया। पंडितजी ने बहुत मेहनत व शोध करके जीवनी लिखने का काम किया। बिलकुल मौलिक दृष्टिकोण से उन्होंने भाई कमल नयन जी के जीवन वृत्त का अध्ययन किया, उनके जीवन-काल को आंका और उसे एक कथानक में बांधने का काम किया। लेकिन अफसोस कि वह इस कार्य को पूरा कर सकने के पहले ही हमारे बीच से चले गए।

पूज्य पिताजी जमनालालजी के संबंध में भी उनका अध्ययन विस्तृत और गहरा था। उनके जीवन से वह इतने प्रभावित हुए थे कि उन पर वह एक उपन्यास की रचना करना चाहते थे। पिताजी की पुण्यतिथि के अवसर पर एक आयोजन में पंडितजी मुख्य अतिथि व मुख्य वक्ता के रूप में आए थे। पिताजी के संबंध में जिस तरह धाराप्रवाह व ओजस्विता से वह बोले और जो नए दृष्टिकोण

उन्होंने रखे उससे सभी उपस्थित श्रोतागण प्रभावित, बल्कि यों कहूं कि मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रह सके।

दरअसल नरेन्द्र जी गांधी युग के एक ऐसे साहित्यिक थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। गांधी विचारदर्शन से वे न केवल प्रभावित थे, बल्कि उसकी व्याख्या भी उन्होंने अपने लेखन में की थी। उस पीढ़ी के गिने-चुने साहित्यिकों में उनकी गणना थी। माखनलालजी चतुर्वेदी, 'दिनकर', भवानी प्रसाद मिश्र के बाद अब पंडित नरेन्द्र शर्मा भी हमारे बीच नहीं रहे। जाना तो एक दिन सबको ही है, किंतु ऐसी विभूतियों के रिक्त स्थानों की पूर्ति नहीं हो रही- इसी का खेद स्मृति में बना रहता है।

मैं नरेन्द्र की स्मृति को नमन करता हूं।

जन्म-पत्री विश्लेषण : एक शिष्य द्वारा...

● सुकेतु देसाई

स्नेही स्वजनो,

प्रणाम !

"परम् पूज्यम् पुनीतम् पुण्यात्मा पितामह" के नाते एक-दूसरे से आत्मीय संबंध रहते हैं। इसी नाते मैं आपको अपना स्वजन संबोधित करता हूं। जैसे हर रास्ते का मोड़ एक चौराहे पर पहुंचता है, जिस तरह एक ही पेड़ की सभी डालियां भी एक ही वृक्ष से मिलती हैं, हम सब भी एक ही नरों में इन्द्र जैसे सार्थक नाम सहित पैदा हुए पंडित नरेन्द्रजी, जो ऋषि हैं, "पुनर्वसु" में पुलकित हुए।

पंडित नरेन्द्र शर्मा, हमारे प्यारे दुलारे पापाजी पांचों वासनाओं–काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद जैसे शत्रुओं को अपने वश में कर, अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व और सादे सरल जीवन की सुवास सब में बांटते थे।

प्यारे दुलारे पापाजी, पांचों पंचों जैसी अलग–अलग सलाह को एकमत करके, सबको एक राह दिखलाते थे। उनकी वाणी से एक अनोखा माहौल पैदा हो जाता था। मां सरस्वती शीतल गंगा की भांति उनकी मधुर वाणी से बहने लगती थी। समुद्र–मंथन में भी निकल न पाये, उतने ज्ञान का भंडार थे पापाजी !

श्रीराम के सीताजी के त्याग के पश्चात् उनके उच्च आचार–विचार के बारे में अगर उस धोबी को लिखने बिठायें वो क्या लिखे ? इसी मनोद्विधा सहित हाथ में कलम लिए सोचता हूं कि, जिनको जानना, और समझना हमारे बस में नहीं, और कुछ ही क्षणों में दूसरों को अपना बनाने वाले उन पापाजी के बारे में लिखूं तो क्या लिखूं ?

पंडित नरेन्द्र शर्मा उच्च कोटि के कविश्री और तत्वचिंतक होने के उपरान्त पौराणिक और आध्यात्मिक ज्ञान की परम सीमा थे। वे आयुर्वेद और आयुर्वेद औषधियों के धन्वन्तरि थे। ज्योतिष विद्या के भी प्रखर ज्ञाता थे। उनके जितना दूसरों के मन को समझना और मन में छुपी हुई बातों को बिना पूछे ही हल मिल जाना, कोई परमेश्वर की परम् शक्ति के बिना थोड़े ही संभव था ?

पंडित जी का कथन था, "जिसकी वाणी में मिठास नहीं, वह

कभी अच्छा ज्योतिषी नहीं बन सकता। अच्छा, ज्योतिषी वह है, जो सही बात इतनी आसानी से कह दे कि कष्टदायक समय भी आसानी से निकल जाये "। इन्हीं खूबियों के कारण वे अपनी अंत: ज्योति से अपनी वाणी–ज्योति को जगाकर हमारे जीवन के अंधकार को उज्वलित करते थे।

पापाजी के ज्योतिष ज्ञान का मुझे बहुत लाभ मिला। उनसे जो सीखा, किताबों के बस में कहां ? मैं उनसे कई बार अनुरोध करता, "आप बोलें और मैं लिखूं, जिसकी हम एक पुस्तक छपवायें।" वे हंस देते। कहते "लोग सगझेंगे यह तो ज्ञान का नहीं, अज्ञान का प्रचार होगा।" आज मुझे लगता है कि वे जो बोलते, क्या मैं उसका सही अर्थ निकालकर लिख पाता ?

आज उनके बारे में लिखने का जो दु:साहस कर रहा हूं, इसके लिए मेरी मन:स्थिति को समझ कर मेरी क्षतियों को माफ कर दें तो पापाजी के संग हुए ज्योतिषज्ञान के सत्संग का सुमन बटोरकर आप तक पहुंचाने का साहस कर दूं।

वृषभ लग्न में उच्च स्वग्रही सूर्य सहित पैदा हुए "वासुदेव कृष्ण"।

"कर्क लग्न में गुरुचन्द्र योग और सप्तम् स्वग्रहि शनि सहित पैदा हुए "श्रीरामचंद्र जी।"

ये दोनों भी जीवन के उतार–चढ़ाव से कहां बच पाये थे ? हम सब को भी, कुदरत के करिश्मे को मानकर, इस जीवन की धूप–छांव में प्रभु जिस हाल में रखे, खुश रहना चाहिए। पापाजी भी ऐसी हर एक परिस्थिति में भी अच्छाई को ही ढूंढ़ते थे।

पापाजी हमेशा ग्रहों को सन्मानसे बुलाते थे। जैसे कि "गुरु महाराज", "शनि महाराज"। गुरु को वे "जीव" कहते थे और शनि को "पहरेदार"। चंद्र, बुध, और शुक्र को "सौम्य" कहते थे और सूर्य, मंगल और राहु जैसे क्रूर ग्रहों को "क्रूर" न बताकर उनकी अच्छाइयों का बोध देते थे। पापाजी वृहस्पति (गुरु) को बहुत ही आदर और महत्व देते थे। गुरु से ही कुंडली के लाभदायी

समय को बताते थे। शनि महाराज का समय शनैः शनैः भाग्योदय देता है, परन्तु गुरु कायमी फल देता है, ऐसा उनका तर्क सदा सिद्ध हुआ है।

पिता अपने पुत्र को अपनी संपत्ति से ज्ञात कराए, इसी तरह पापाजी भी कई बार अपनी जन्मकुंडली की मेरे साथ चर्चा करते थे। इस महान व्यक्तित्व की कुंडली के लिए कुछ लिखे बिना नहीं रह जाता।

: अर्थ जन्मागम् :

जन्म तारीख २८ फवरी सन् १९१३

लग्न कन्या (६) में केतु से अलौकिक और आकर्षक व्यक्तित्व, मध्यम कद। लग्नेश बुध के सप्तम स्थान से लग्न पर दृष्टि। उत्तम बुद्धि और विद्वत्ता। राहु, कन्या में स्वगृही होने से उसकी दृष्टि फलदायी। द्वितीय स्थान में तुला राशि को उसके स्वामी शुक्र की अष्टम् स्थान से दृष्टि अपने ही धन स्थान, और कुटुंब को अच्छा बनाया।

तृतीय में वृश्चिक के चन्द्रमा। अपनी राशि कर्क से नव–पंचम स्थिति और भाग्य स्थान से पंचमेश शक्ति की सप्तम् दृष्टि।

चतुर्थ स्थान में स्वगृही में बिराजे गुरुमहाराज। जमीन जायदाद का लाभ। अति पवित्र और निर्मल हृदय, उत्तम मातृसुख और एक मंदिर समान घर। पापाजी कहते, 'यह घर तो बृहस्पति की देन है, वरना हम कहां इसके काबिल थे ?'' अपनी मेहनत, लगन और कमाई से खुद बनाने के पश्चात्, अपने घर का श्रेय व गुरु महाराज को देते थे।

पंचम स्थान में मकर राशि के उच्च मंगल से उत्तम संतानसुख। विद्या और पूर्व–पुण्य की प्राप्ति।

षष्ठ में कुंभ के सूर्य देवता ने राग, द्वेष शत्रु से परे बनाया। पर इस सूर्य की स्थिति ने उनकी प्रतिभा को प्रकाश में आने से रोका।

सप्तम् स्थान में पत्नी सुख में, अति उत्तम ''सुशीला'' अपना

नाम सार्थक किये मिलीं। सुशीला जी ने इनको इतना करीब से जाना और समझा कि गुरु पूर्णिमा के दिन इस गुरु पत्नी के आशीर्वाद लेकर पापाजी की कमी महसूस नहीं हुई। ऐसा लगता था कि पापाजी अब भी उसी घर में बसे हुए हैं। सप्तम स्थान में मीन राशि के बुध और राहु के कारण अंतर्जातीय लग्न हुआ।

अष्टम स्थान में राशि में शुक्र, जो हमेशा भूमि में छिपा हुआ धन देता है। परन्तु पापाजी ने उसके बदले गूढ़ भाग्य स्थान में वृषभ राशि के शनि महाराज ने पूर्व जीवन में संघर्ष और वानप्रस्थाश्रम में भाग्योदय दिया।

दशमः स्थान में मिथुन राशि और उसका मालिक बुध, मीन में नीच राशि में राहु का साथ था, जिससे उनके हाथों से बड़े-बड़े काम पूरे नहीं हुए।

लाभ स्थान में कर्क राशि का मालिक चंद्र, अपने से नव पंचम।

व्यय (द्वादस) स्थान में सिंह राशि के स्वामी सूर्य की अपने स्थान पर दृष्टि-मोक्ष।

इस प्रकार नव ग्रहों की स्थिति है। इस जन्मकुंडली की प्रथम विशेषता यह है कि ग्रहों के राजा सूर्यदेवता कुंडली में तराजू की तरह मध्य में रह कर, अपनी दोनों और चार-चार मित्र ग्रहों और शत्रु ग्रहों को बांटे हुए स्थिति मे हैं। यानी कि सूर्य के एक तरफ चंद्र, गुरु मंगल और केतु दूसरी तरफ बुध, शुक्र, शनि और राहु।

इन्हीं ग्रहों की स्थिति से पापाजी अपने और परायों को एक-सा गिनकर सटीक सलाह देते थे। सभी पर एक समान प्यार और आत्मीयता की वर्षा होती थी। पापा जब भी अपनी आंखें मूंदकर (बंदकर) ग्रहों की दुनिया में पहुंच जाते, तो उसके पश्चात् निकला एक-एक शब्द पत्थर की लकीर-सा बन जाता। उनकी दी हुई शिक्षा का एक-चौथाई हिस्सा भी अगर कोई अपने जीवन में ग्रहण करे, तो जीवन सार्थक हो जाये। काश ! प्रभु हमें उनकी बातों

की स्मृति और उसे समझकर अपनाने की सद्‌बुद्धि दें।

मेरी शादी से लेकर उनके दिये हर एक फैसले से ही मेरे जीवन का सूर्य उदित होता था। जब एक गुड़ीपाड़वा की शाम को, एक जन्मकुंडली लिए मैं उनके पास पहुंचा तो वे कुंडली को देख मुस्कराये और बोले, "वाह यह तो हीरा है। सुशीला शक्कर लाओ। तुम्हारे सप्तम् स्थान के स्वगृही मीन राशि के गुरु महाराज ने तुम्हें स्थान उच्च के कर्क के गुरु और उच्च के तुला के शनि–महाराज वाली कुंडली लाके सामने रखी दी।" उनके ही कहे हुए शब्दों की सार्थकता और आशीर्वादों का इतना ऋणी हूं कि मेरे पास कोई शब्द नहीं। मेरे आज तक सारे महत्वपूर्ण निर्णयों की सफलता का श्रेय भी मैं पापाजी को ही देता हूं।

हमारे जीवन के महाभारत के सारथी, हमारे रथ को मझधार में छोड़कर चल निकले। जाते–जाते जाने यूं समझा गये, "बेटो ! बस हो गया, अब अपनी–अपनी संभालो।"

इस धरा-वसुंधरा पर अपना जीवन सार्थक करके सूर्य सप्तमी की संध्या के विविध रंगों में, एक और सितारा बनकर नभ में विलीन हो गया। न जाने यूं लग रहा है, अब भी यह सितारा ओजस से हमें अपना आशीर्वाद दे रहा है।
शुभम् भवतु–

पंडित नरेंद्र शर्मा - एक प्रेरणास्रोत साहित्यिक गीतकार

● डॉ. वीरेंद्रलाल मिश्र 'वीर'

२४ फरवरी १९५९ का वह दिन, समय मध्यान्ह, आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित है, जिसमें एक उन्नत ललाट, सौम्य गौरवर्ण मुखमंडल में शांत, गंभीर नेत्रों से झांकती हुई दिव्य मूर्ति, श्वेत मसृण खादी का कुरता, धोती में; आल इंडिया रेडियो केंद्र, बंबई के कार्यक्रम नियोजक, हिंदी विभागाध्यक्ष की आसंदी में विराजित स्वर्गीय श्री नरेन्द्र शर्मा का दर्शन प्राप्त हुआ। श्री शर्मा जी के साहित्यिक होने के नाते मैं उनके दर्शनों का लोभ संवरण न कर सका। यों तो मैं एक दुर्दम्य बीमारी की चिकित्सा के बहाने बंबई पहुंचा था और अपनी एक मुंह बोली मां, श्रीमती दुलारीबाई अग्रवाल को उनके पुत्र-सखा श्री वीरभद्र गुलवे के यहां छोड़ने भी खार गया था, किंतु मैंने यह उचित समझा कि पं. नरेन्द्र शर्मा जी का दर्शन-लाभ पहले करूं। लक्ष्मी और सरस्वती के द्वन्द्व में पड़ा साहित्यिक प्राय: सरस्वती की ही शरण में जा पाता है और वहीं पाता है मानसिक शांति। इसलिए 'नया साहित्यिक' के 'निराला अंक़' के संपादक के रूप में श्री नरेन्द्र शर्मा का नाम पढ़ उनके दर्शन हेतु आतुर हो गया और अपने 'शारीरिक स्वास्थ्य की अनेदखी' करके ''मानसिक स्वास्थ्य' का लाभ उठाने श्री शर्मा जी के पास पहुंच गया।

अभिवादन के पश्चात् मैंने अपना परिचय दिया और उन तक आने का अपना प्रयोजन कहा। उनको यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आगंतुक युवक स्वयं एक कवि और लेखक है और आकाशवाणी के ''विविध भारती'' कार्यक्रम से प्रभावित हो उसमें अपना गीत प्रसारित कराने का इच्छुक है। ''समान शील व्यसनेसु मैत्री'' के अनुसार श्री शर्मा जी ने बड़े स्नेहपूर्वक, मुझे अपनी कविताएं सुनाने को कहा। उन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक मेरी कविता की डायरी उलट-पुलट कर देखी और अपनी सहज प्रसन्नता भी प्रकट की। जब मैं उनसे विदा लेने को तैयार हुआ तो कुछ देर और रुकने का आग्रह किया। उनके अमूल्य समय का दुरुपयोग करने की अपनी धृष्टता के बावजूद, स्नेह भाव से अपना आटोग्राफ (हस्ताक्षर) मेरी कविता-डायरी में अंकित कर दिया इस पंक्ति के साथ- 'ऐसा सुपथ कर मन ग्रहण, प्रत्येक पद बरसे सुमन' जब-जब भी मैं अपनी कविता डायरी किसी ''कवि सम्मेलन'' या ''गोष्ठी'' में ले जाता

हूँ, तब-तब पंडित जी की इस 'प्रसाद-पंक्ति' को पढ़ काव्य पाठ करता हूं। यह तो मेरा सौभाग्य है कि सर्व श्री डॉ. रामकुमार वर्मा, बच्चन जी, नेपाली जी, नीरज जी एवं श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, बख्शी जी, जैसे प्रभृति लब्धप्रतिष्ठ कवियों के साथ कवि-सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर मिला है। अस्तु। पंडित जी की उक्त पंक्ति 'ऐसा सुपथ..." मेरे समग्र जीवन का आदर्श बन चुकी है और साहित्यिक के संघर्षमय जीवन के लिए प्रकाशस्तम्भ भी। अपने जीवन की इन महत्वपूर्ण घड़ियों के उपरांत बंबई प्रवास से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर मैंने अपने गृहनगर दुर्ग, म.प्र. को प्रस्थान किया-- पूज्य शर्मा जी के उपदेश वचन- "साहित्य-सेवा समाज की सच्ची सेवा है, प्रतिष्ठा और अर्थलाभ के पीछे न पड़ना, "निराला" का आदर्श सामने रख आगे बढ़ते जाओ"- पर विचार करते हुए।

मैंने दुर्ग आकर पुन: श्री शर्मा जी को पंडित जवाहरलाल नेहरू की देश और विदेश में सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक विजय पर स्वरचित अंग्रेजी कविता (Victory) प्रेषित की और उसकी एक प्रति श्री नेहरू जी को भी भेज दी। श्री शर्मा ने पत्र-प्राप्ति की सूचना दी और मेरी साहित्य क्षेत्र में उत्तरोत्तर उन्नति की कामना की।

अकस्मात् जब १३.२.८९ के समाचार पत्रों में श्री शर्मा जी के आकस्मिक निधन का समाचार पढ़ा तब मैं स्तब्ध रह गया, पुरानी स्मृति बिजली-सी कौंध गई। मैं भगवान से मनाने लगा कि वह मृत्यु संदेश उसी तरह असत्य प्रमाणित हो जाए जिस तरह स्वर्गीय जयप्रकाश नारायण जी की मृत्यु का समाचार हुआ था।

खेद है उनके मरणोपरान्त उन पर श्रद्धांजलि के लिए कुछ नहीं किया गया। उनके साहित्य प्रकाशक, नेतागण और फिल्मी संसार के लोग तथा दूरदर्शन, आकाशवाणी और समाचार पत्र कुछ ऐसे ठोस कार्य की शृंखला रखते, जिससे पंडित जी का आदर्श साहित्य-संसार में अमर हो जाता। सरस्वती-पुत्रों का "शोषण" और ऐसी उपेक्षा लक्ष्मी-पुत्रों द्वारा कब तक होती रहेगी ? लेखक को इस बात की कल्पना मात्र से बड़ी पीड़ा होती है। वह कोई बड़ा साहित्यिक नहीं जो स्वर्गीय शर्मा जी के अनन्य मित्र सर्व श्री गिरिजा

कुमार माथुर, विष्णु प्रभाकर माचवे, डॉ. नामवरसिंह, श्री शमशेर बहादुर सिंह जी तथा बच्चन जी जैसे प्रभृति साहित्य प्रतिष्ठायक हस्तियों के द्वारा की गई श्रद्धांजलि में अपना भी एक श्रद्धा-सुमन स्वर्गीय शर्मा जी के चरणों में चढ़ा सके।

अंत में अर्पित हैं ये पंक्तियां–

"ऐसा सुपथ कर मन ग्रहण,
प्रत्येक पद बरसे सुमन,
सुरभि मग में मंद शीतल
बहकरे गति सहज उन्मन"

'हंसमाला, चल, बुलाता है तुझे फिर मानसर

विश्वनाथ सचदेव

बंबई में प्रातः के दस बजे भी धूपभरी दोपहरी जैसी लगती है और इस समय उपनगरों की गलियां कुछ और सुनसान होती हैं। पुरुष घर से बाहर कामकाज पर और गृहणियां घरों के भीतर। ऐसी ही एक सुनसान सुबह को मैं बंबई के एक उपनगर खार की १९ वीं गली में एक मकान खोज रहा था। अनायास एक मकान के सामने जाकर खड़ा हुआ। पूछा और पाया, सही जगह पहुंच गया हूं।

"जी नरेन्द्र शर्मा यहीं रहते हैं।" शायद उनकी पुत्री थीं, जिन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया, "आइये, बैठिये।" और इससे पहले कि मैं ड्राइंग रूप में जाकर बैठ पाता, नरेन्द्रजी "कौन है ?" पूछते हुए बाहर आ गये थे। चेहरे और आंखों की मुस्कान ने मेरा स्वागत किया।

"पहचाना आपने" मैंने नमस्कार करते पूछा, "मैं विश्वनाथ..." "अरे क्यों नहीं पहचाना ? बैठो न।" और मुझे कुर्सी पर बिठा कर वे नीचे गद्दे पर बैठ गये।

"कहिये, क्या हाल है ?" उन्होंने पूछा और उत्तर में अपना हाल बताने की बजाय मैंने कहा, "आपको बधाई देने आया था (वे जरा चौंके), सोचा २८ फरवरी को तो बहुत लोग शुभकामनाएं लेकर पहुंच जायेंगे।" (अब वे हंसने लगे थे।)

(२८ फवरी १९७३ को नरेन्द्र शर्मा जीवन के ६० वर्ष पूरे करके ६१ वें में प्रवेश कर रहे थे)

"साठ साल का होने पर आपको कैसा लग रहा है ?"

"कुछ विशेष नहीं", उन्होंने बड़ी सादगी से जवाब दे दिया, "सच पूछो तो मैंने कभी स्वयं को 'सीरयसली' लिया ही नहीं और इसीलिए जीवन हल्के-फुल्के बीतता जा रहा है। बहुत कुछ बीत गया है। बड़ी सुगमता से जिया है मैंने।"

"पर आपकी कविताओं की भाषा तो उतनी सुगम नहीं होती," मैंने नोट बुक निकालते हुए कहा।

"तो, पूरी तैयारी करके आये हो," उन्होंने मुझे नोटबुक खोलते हुए देख कर कहा। तब मैंने उन्हें बताया कि मैं 'नवभारत टाइम्स' के लिए उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर विशेष भेंट-वार्ता के लिए आया हूं। यदि अभी समय न हो तो फिर आ सकता हूं।

"अरे, फिर क्यों आ सकते हो ? बंबई में आना-जाना आसान थोड़े ही है। अभी बात कर लेते हैं। पर पहले यह बताओ, चाय लोगे या कॉफी ?"

बातचीत की भूमिका तैयार हो गई थी। मैंने फिर अपना प्रश्न दुहराया "आपकी कविताओं पर बोझिलता का आरोप लगाया जाता है ?"

"हां कुछ लोग लगाते हैं। वैसे मैं तो नहीं समझता कि मैं बहुत कठिन भाषा लिखता हूं..."

"अपेक्षाकृत कठिन होती है," मैंने कहा।

"हां, पर मेरे लिए यह स्वाभाविक है। सच बात तो यह है विश्वनाथ कि सहज-सुगम गीत मैंने बहुत लिखे। पर इनमें से अधिकांश मेरे भीतर की नहीं, बाहर की मांग पर लिखे गये। शायद यह उसी की प्रतिक्रिया है कि जब मैंने अपनी बात कहनी चाही तो सहज ढंग से नहीं कह सका। अपनी और दूसरों की बात कहने में कुछ तो अंतर होना चाहिए ?" उन्होंने मुस्कराते मेरी ओर देखा। उनकी आंखें पूछ रही थीं, "सच कह रहा हूं न ?" फिर थोड़ा गंभीर होते हुए वे बोले, "दूसरी बात यह है कि सहजता से हुआ काम, काम को पूरा नहीं करता। बहुत कुछ रह जाता है। सहज जीवन की अभिव्यक्ति के बाद बहुत-सी जटिलताएं रह गयी थीं। मैंने उन जटिलताओं को छूने का प्रयास किया। मैंने अनजाने में एक प्रयोग किया- कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने का। शायद यही कारण होगा कि पाठकों को कुछ बोझिलता लगती है।"

"आपका रहस्यवाद भी तो साधारण पाठक सहज ही नहीं समझ सकता ?"

"रहस्यवाद नहीं, नवरहस्यवाद," उन्होंने सुझाया और फिर कहा कि रहस्य या रहस्यवाद जैसी कोई बात वे अपनी कविता में नहीं समझाते। "हां, मैंने प्रतीकों में बात जरूर की है और ये प्रतीक प्राचीन वांग्मय से लिये हैं।

"जैसे आपके खंडकाव्य 'द्रौपदी' में", मैंने कहा।

"हां, 'द्रौपदी' जीवनी शक्ति है, जो उन पांचों को जोड़ती है।"

"महाभारत" से प्रतीक उठाने के बारे में जब मैंने पूछा तो नरेन्द्र जी ने अपनी मान्यता बतायी। वे बोले, "हमारे अवचेतन में पुराना वांग्मय ही है। इस अवचेतन के पास जाये बिना चेतन मन समग्रता को नहीं समझ सकता।"

फिर अनायास ही बात युगबोध पर आ गयी। नरेन्द्र जी के अनुसार हमारे युगबोध के 'कांसेप्ट' में एक बड़ी भूल है। हमने युग को सिर्फ काल ही मान लिया। जबकि युग, देश व काल दोनों होता है। सच तो यह है कि काल देश के माध्यम से ही प्रकट हो सकता है। जब हम समकालीन की बात करते हैं तो वह स्वदेश के संदर्भ में ही होता है। देश के बिना काल की चेतना संदर्भविहीन हो जाती है।

"तो क्या सार्वयुगीन या सार्वकालिक कुछ नहीं होता? स्वेदश के संदर्भ में विश्व-चेतना को आप कैसे समझायेंगे ?

"होता क्या नहीं ? लेकिन विश्वचेतना का मतलब यह तो नहीं कि हम यूरोप को अपने ऊपर ओढ़ लें।"

मैं समझ रहा था कि नरेन्द्र जी का संकेत उन कवियों-लेखकों की ओर था, जो अपनी भूमि और अपने काल से कट कर विश्व-चेतना के नाम पर यूरोपीय चेतना को स्वयं पर आरोपित करने के अपने प्रयास पर गर्व अनुभव करते हैं।

नरेन्द्र जी ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा, "इसीलिए मेरी कविता तथाकथित समकालीन से हट कर स्वदेशी ज्यादा होती गयी है। मेरी तो मान्यता है कि स्वदेश से ही हम सही प्रेरणा पा सकते हैं। और मैं तो लिखना भी उनके लिए चाहता हूं, जो स्वेदश से जुड़े हुए हैं।"

"कौन हैं ऐसे लोग ?"

"कम पढ़े-लिखे। मैं सुशिक्षित वर्ग के लिए कहना उतना जरूरी नहीं समझता, जितना कि नवसाक्षरों के लिए। वे ही स्वदेश से अधिक जुड़े हुए हैं। सच तो यह है कि तथाकथित पढ़े-लिखे लोग विदेशी बन गये। मैंने इस धारा के विपरीत प्रवृत्ति को अपनाया। मैं देसी बनता चला गया। अंग्रेजी में कहावत है न, "रिटर्न टू नेटिव"...

"आपके रहस्यवाद का रहस्य भी शायद यही देसीपन है ?"

"तुम चाहो तो ऐसा ही समझ लो। पर सही बात यह है कि लोकप्रियता मुझे प्रिय नहीं। इससे कवि बहिर्मुखी हो जाता है। ४३ के बाद ही मैं लोकप्रियता की भूमि से हट गया। ४४ से मेरे अंतर्मुखी काव्य की शुरुआत हुई..." हंसमाला चल, बुलाता है तुझे फिर मानसर, शून्य है तेरे लिए मधुमास के नव की डगर।"

"इसे जरा फिर से दुहराइये।" मैंने कहा और ये दोनों पंक्तियां नोट कर लीं। मुझे लगा यहीं से असली नरेन्द्र शर्मा शुरू होता है।

नरेन्द्र जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी भाग लिया था। जब वे हाईस्कूल में ही पढ़ते थे तो नौजवान भारत सभा, खुर्जा के मंत्री बन गये थे। भगतसिंह भी नौजवान भारत सभा के ही सदस्य थे। नरेन्द्र जी स्वराज्य भवन, इलाहाबाद में भी रहे। फिर दो साल जेल में अंग्रेजों के मेहमान भी थे। इसी पृष्ठभूमि में मैंने उनकी अंतर्मुखी प्रवृत्ति को स्वततंत्रता आंदोलन से जोड़ना चाहा। कविता और मानव मूल्यों की बात हुई तो वे बोले, "स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम चरण में हमारे सारे आदर्श एक-एक करके टूटते चले

गये। फिर १९४८ में जब गांधीजी की हत्या हुई तो मुझे लगा मानव-मूल्यों के मूल की ओर जाना है। मेरी कविता का तथाकथित अध्यात्म ओर नवरहस्यवाद यहीं से शुरू होता है।"

अब वे अपनी कविता-यात्रा बताने लगे थे। १९३१ में उन्होंने लिखना शुरू किया था। प्रेरणा पंत और महादेवी से मिली थी– पंत से सौंदर्य-बोध और महादेवी से भावभूमि। फिर निराला और प्रसाद से भी प्रभावित हुए। पर यह प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। नरेन्द्र और उनके समकालीन कवियों का सौंदर्यबोध व्यक्ति और वस्तुवाचक बनता गया। यह १९३८ के बाद की बात है। उन्होंने बताया, "अब हम अपने पांव पर खड़े होने लगे थे। 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल' आदि कृतियां इसी काल की देन हैं।"

"४२ से ४७ तक का काल हमारे आदर्शों के टूटने का काल है। ऐसे में मैं पुराने गीत कैसे गाता? सहजता कहां रहती? यदि उपवन के बजाय ज्वालामुखी देखना गुनाह है तो मुझे कुछ नहीं कहना।"

इस सारे घटनाचक्र ने उन्हें भारतीय मानस के अवचेतन की ओर जाने की प्रेरणा दी। प्रकृति-पुरुष की लीला की ओर मन की व्यापक शक्तियों की ओर उनका ध्यान गया।

बातचीत को फिर आज की हिन्दी कविता से जोड़ने के प्रयास में मैंने पूछा, "आज का कवि भी तो उसी 'स्व' की बात कहता है जो भारतीय मानस का मूल बिंदु है?"

"लेकिन कितना छिछला होता जा रहा है यह 'स्व'?" नरेन्द्र जी के स्वर में पीड़ा छलक आयी थी, "जिसका 'स्व' जितना गहरा, व्यापक हुआ वह हमारे युग का उतना ही बड़ा कवि हुआ। इस 'स्व' को छोटा बनाने से हमारा दायित्व पूरा नहीं होगा, और न ही मध्यवर्गीय चेतना से कविता नवीन श्रेयस्कर है। ये मध्यवर्गीय सीमाएं मध्ययुगीन से नवीन बनने की प्रवृत्ति में बाधक हैं। आज के कवियों के 'स्व' का अधिक गहरा और व्यापक होना जरूरी है।

"तो क्या आपका तात्पर्य यह है कि आज का कवि अपना दायित्व पूरा नहीं कर पा रहा ?"

नरेन्द्र जी ने 'हां' या 'ना' में उत्तर नहीं दिया, बोले, "आज के हिन्दी कवियों में प्रतिभा की कमी नहीं। उनकी अभिव्यक्ति भी सुंदर है। पर उनका 'स्व' संकुचित है। वे काल की चेतना को देश के संदर्भ से अलग करके देखते हैं। मध्यवर्गीय मनीषा का एक बहुत बड़ा संकट है। यह व्यापक होती है तो बिखरने का भय है। नहीं होती, तो स्वत्व खो देगी। इसलिए आज के यथार्थ को जोड़ना जरूरी है।"

"यथार्थ जो यहां उपयोगी है और तथार्थ जो तत्व रूप में अविनाशी है। इन दोनों को जोड़ना जरूरी है। और यह कार्य आज की हिंदी कविता कर रही है। वह एकांगी है। वर्गगत है। आज के कवियों में अलगाव की प्रवृत्ति है। और यह प्रवृत्ति कविता की दुश्मन है।"

नरेन्द्र जी ने मेरे प्रश्न का उत्तर दे दिया था। उनका मंतव्य स्पष्ट था- आज के हिन्दी कवि अपना दायित्व पूरा नहीं कर पा रहे। ऐसी स्थिति में रास्ता क्या है, मैंने पूछा।

समस्या कविता को सहृदय पाठक तक पहुंचाने की है। एक ओर अशिक्षित नवसाक्षरों का बहुमत है और दूसरी ओर छोटा-सा शिक्षित वर्ग! इन दोनों के बीच के अंतर को पाटना जरूरी है। यह कार्य सार्वजनिक अभिव्यक्ति के माध्यमों से किया जा सकता है। रेडियो, सिनेमा, पत्र-पत्रिकाएं इस काम में सहायक हो सकती हैं, पर अभी इन लोगों पर कुछ लोगों का कब्जा है। इस 'कुछ' में व्यवसायी और अफसर दोनों शमिल हैं। इनके अधिकार-स्वामित्व में यह कार्य नहीं हो सकता।

"तो फिर कैसे होगा," मैंने पूछा।

"साहित्यकारों और कलाकारों के सहयोग से। हिन्दी क्षेत्रों में तो यह आपसी सहयोग है ही नहीं। यह जरूरी है। तभी इन 'कुछ' के चंगुल से निकला जा सकता है। केरल के लेखकों ने इसका उदाहरण प्रस्तुत किया है।"

नरेन्द्र जी ने रेडियो और सिनेमा की बात की तो मुझे याद आया इन दोनों माध्यमों से उनका निकट का सम्पर्क रहा है। सन् १९४३ में जब नरेन्द्र जी बम्बई आये तो सिनेमा में गीत लिखने ही आये थे और दस वर्ष तक वे इस क्षेत्र से जुड़े रहे। फिर १९५३ से वे आकाशवाणी में थे। "विविध भारती" कार्यक्रम और नाम दोनों उनकी कल्पना की उपज है।

पहले मैंने सिनेमा की बात की, जब मैंने हिन्दी गीतकारों की असफलता का संकेत किया तो नरेन्द्र जी ने बताया कि "जिन लोगों के हाथ में सिनेमा है, वे उसे साहित्य और जीवन से नहीं जोड़ना चाहते। फिर हिन्दी और सिनेमा में तो शुरू से ही दूरी रही। हिन्दी भाषियों ने इसे माध्यम की संभावनाओं पर विचार ही नहीं किया था। लेकिन अब हिन्दी वाले इसमें जा रहे हैं। अब युग आरंभ होगा। इस क्षेत्र की संभावनाएं अपार हैं।"

"सिनेमा के गीतों के बारे में आपका क्या विचार है ?"

"मेरी मान्यता है कि लोग अच्छी भाषा और अच्छे गीत पसंद करते हैं।" उन्होंने अपने ही दो गीतों, 'ज्योति कलश छलके' और 'मैं उनकी बन जाऊं' का उदाहरण दिया। प्रदीपजी की बात कही।

"और "विविध भारती" के गीत ?" मैंने पूछा।

मुझे आश्चर्य हुआ जब १४ साल तक "विविध भारती" के निदेशक रहने वाले नरेंद्र जी ने विविध भारती के कार्यक्रमों के प्रति असंतोष प्रकट किया। "यही असंतोष उन्होंने नौकरी में रहते हुए क्यों नहीं व्यक्त किया ? सुधारने की कोशिश क्यों नहीं की ?"

"यह असंतोष मैंने तब भी व्यक्त किया था। कार्यक्रम सुधारने की भी कोशिश की थी। पर साधनों की कमी और सरकारी ढांचे ने मेरे प्रयास सफल नहीं होने दिये। मेरे नोट फाइलों में दबे रहे। मेरे सुझाव साधनों की कमी की बलि चढ़ गये।"

नरेन्द्रजी ने बताया कि आकाशवाणी के सबसे अधिक लोकप्रिय

कार्यक्रम पर सरकार सबसे कम प्रसार-व्यय करती है। 'विविध भारती' का प्रति मिनट प्रसारण व्यय आकाशवाणी के अन्य सभी कार्यक्रमों से कम है।

मैंने घड़ी देखी, समय तेजी से भागता जा रहा था। नरेन्द्रजी को बोलते हुए दो घंटे के लगभग हो गये थे। बातचीत समेटते हुए मैंने पूछा, 'आजकल क्या कर रहे हैं ?"

"अभी जब तुम आये तो कविता-संग्रह तैयार कर रहा था- 'दर्शक का दर्पण।' यह मेरी १८ वीं पुस्तक है और इसमें मैंने पिछले चार साल की कविताएं संकलित की हैं।"

"इसके अतिरिक्त कोई बड़ी योजना..."

"हां, एक महाकाव्य भी लिख रहा हूं। कहानी राम की है। मैं वाल्मीकी की वेदना को वैदेही मानता हूं। वह वेदना सबके लिए थी। राम कवि के सहृदय ही नहीं, ज्ञान के जमाता भी हैं। मैं, मानता हूं कि राम किसी भी सद्गृहस्थ के घर पैदा हो सकते हैं- पर इसके लिए ग्राहस्थिक संबंधों का मर्यादाशील और आस्थावान होना जरूरी है। तभी राम पैदा होंगे।"

मैंने नोटबुक बंद की। कामना की कि वे शतायु हों। ऐसे ही जीवन जीयें। वे हँस पड़े। दो घंटे की थकान हल्की हो गयी।



तृतीय पुष्प



"एक हसीन शख़्सियत"

●दिलीप कुमार

"ऐ दोस्त किसी हमदर्में दरीना का मिलना बेहतर है मुलाकातें मसीहा और फिजार से... " जब कोई पुराना दोस्त मिलता है, तो उसका मिलाप हमारी किसी मसीहे के मिलाप से बेहतर होता है।

यह है नरेन भैया की अहमियत हमारी जिंदगी में, जो हमारी जिंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा है, बड़ा भरपूर 'चैप्टर' है । I remember him with feelings, with warmth, with comforts and with the optimism. All these things, oriented with the values of the rights, proper and improper. यह मेरी खुशनसीबी थी कि नरेन भैया से जब मुलाकात हुई, तब ऐसे नये-अनोखे मोड़ पर हुई कि उस मोड़ पर आगे क्या है और वह रास्ता कहां जाता है, उससे हम बिलकुल नावाकिफ थे।

'बॉम्बे टॉकिज' में जब मैं गया, नरेन भैया भी वहाँ थे। वहाँ से जो हमारा साथ शुरू हुआ वह अब तक है, हालांकि अब नरेन भैया खुद यहाँ पर नहीं हैं। फिल्म इन्ड्स्ट्री उनके लिये भी उतनी ही अनोखी थी, जितनी कि मेरे लिये। क्योंकि वे मुझसे कुछ ही दिनों पहले वहाँ दाखिल हुए थे। उनके पास बहुत कुछ था, जो वे फिल्मी दुनिया को देने आये थे, या दे रहे थे और उन्हें देना था। जिंदगी के जो जरूरी फ़ैसले हैं, उन्हें वे मन ही मन कर चुके थे। In the sense that he had very evolved mind. हम लोग थे, नआज़मुदा और न तजुर्बेकार। जो हमने सीखा था, वह भी था not tested or tried at the anvil of time. इसलिये खास तौर से उन्हीं के पास हमें sense of comfort मिलता था। He tried to infuse his spirit of confidence in us. खुद मैं भी ऐसा नहीं था कि literature से नाआशना था। उर्दू मेरा base था और अंग्रेजी मैंने adopt की थी। classical literature जो है, उस भाषा से मैं वाकिफ़ था about the values of life, about the desperate need to transplant these literary values in Indian cinema. खुद हिन्दुस्तानी सिनेमा भी 'promising' दौर से गुज़र रहा था। अच्छी फिल्मों के लिये एक अच्छा माहौल भी बहुत जरूरी होता है। इसलिये नरेन भैया और उन जैसे साथियों के साथ हम यह महसूस नहीं करते थे कि हम किसी Pedestrian किस्म के profession में हैं। बल्कि ऐसा

महसूस होता था, जैसे किसी Academy में आये हैं। बड़ा सेहतनुमा 'कोम्युनिकेशन' होता था। हँसी-मज़ाक भी होता था। बड़ा मक़्सूस किस्म का माहौल था, कोई छिछोरी बात न होती थी। दोस्ताने के जो अंदाज हैं, उठने-बैठने के जो सलीके हैं, उसे पूरी अहेमियत दी जाती थी। Due importance was given to the general deportment. 'हुस्न' उर्दूमें beauty को कहते हैं। शायराना अंदाज में वह किसी महबूब से मुताल्लिक किया जाता है, लेकिन 'हुस्न' फूलोमें भी होता है, इन्सान की शख़्सियत में भी होता है। इसी लिहाज़ से नरेन भैया हम लोगों के लिए बहुत ही हसीन शख़्सियत थे। सिर्फ़ पसंद के लिए ही नहीं, बल्कि अदब और ऐतराम के लिए भी ! सिर्फ़ इन्हीं के लिए ही नहीं, बल्कि दोस्ताने के लिए भी !

He was a true Gandhian and an ascetic pure soul and I saw him as a person who had withdrawn all his energies inward. In the outer world he gave love, compassion, understanding and good will to all that he came in contact with.

फिल्मों का जो माध्यम है, वह बड़ा militant है। हम लोग इस बात से आगाह हैं कि नरेन भैया was a very profound patriot, also a profound humanist. फिल्मों के लिए जो छोटे-छोटे आपस के टंटे, 'गॉसीप' और किसीकी कामयाबी या नाकामयाबी का जब कभी भी जिक्र करते, तो वह सदा दायम मुस्कराते रहते थे। एक बार जब किसीने पूछा कि, "कल ही तो किसीने यह बात मुझे आपके सामने कही थी।" उन्होंने फौरन उत्तर दिया, "मैं तो इस तरह की हर बात एक कानसे सुनकर, दूसरे कान से निकाल देता हूं।" इंडस्ट्री की बेकार बातों से दामन बचाकर किस तरह निकला जाता है, यह हमने उन्हीं से सीखा है।

मैं अक्सर कहता था कि मुझे ऐसा लगता है कि "मैं इस कामके लिए मौजू नहीं हूं।" तब उन्होंने बड़ा अच्छा कहा था कि, "हमें इस प्रोफ़ेशन में पढ़े-लिखे नौजवानों की सख्त जरूरत है। मैं तुम्हारी अदाकारी के बारे में तो ज्यादह नहीं बोल सकता, पर तुम्हारा अहसास, Your acting has not been currupted by other factors of life. तुम्हारा अहसास जब इतना lucid है,

तब तुम अपने अहसासों को भी articulate कर पाओगे । तुम देख लेना ! तुम देख लेना ।" वे पूछते "तुम्हे क्या पसंद नहीं?" मैं कहता, "environment." वे कहते, "कैसे?" मैं जवाब देता, "डाइरेक्टर शूटिंग के दौरान रेस की किताब देखते रहते हैं, या बेतुकी बातें करते रहते हैं । काम, या काम की बातें करके, काम को खत्म करने की नहीं सोचते ।" मैं पूछता, "ये सारी चीजों को अलग कैसे करें? एक ओर लाइट वाला शोर मचाता है, तो दूसरी ओर कोई जोर-जोर से हँसता है । आप तो कागज- कलम की दुनिया में जाकर दुनिया भर को भुला बैठते हैं । हम क्या करें?" इस बात पर वे जोर से खिलखिला कर हँस कर कहते "ये तो साधना की बात है ।"

जब बॉम्बे टॉकिज छोड़कर हम लोग अलग-अलग जगह काम करने लगे, तब हमारी मुलाकातों का फासला बढ़ने लगा । लेकिन जब हम मिलते थे, बातें वहीं से शुरू होती थीं, जहां हमने छोड़ी थीं । इसीलिए मैंने शुरू में यह शेर कहा है कि पुराना दोस्त जब कभी मिल जाये तो उसका मिलना मसीहा के मिलने से भी ज्यादा कीमती है । मसीहा या तो हमें रास्ता बताता है, या उससे हमारा परिचय करवाता है । हम क्या ?, खुदसे अपना परिचय या तो हमें खुद करना पड़ता है या तो सच्चा दोस्त करवाता है । इन्सान जो भी है, जैसा भी है और जहां भी हैं वह इस कायनात की एक बेहतरीन गुत्थी है । ऐसे में एक ऐसे साथी की जरूरत है, जिसकी सारी खूबियाँ नरेन भैया में थीं, जिसे मैं बयान कर चुका हूं ।

यह सब होने के बावजूद he could take very quick decisions and often strong ones and stand by them; thereby revealing very little of mind and character. He had very strong character.

हिन्दुस्तान की 'freedom' की 'struggle' में कैसी-कैसी तारीखें आयीं, movement ने कैसे-कैसे मोड़ लिये; अंग्रेजी की मुख्तलिक उनकी क्या-क्या strategies थीं? इन सारी बातों की उन्हें exhaustive मालूमात थीं । वे मुझे अक्सर बताया करते थे कि उस movement की 'जेनेसिस' में provincial autonomy किन-किन collective movements का परिणाम थीं, उनमें

क्या–क्या international pressures थे.... वगैरह ये सारी बातें उन्हें मालूम थीं । उदाहरण के तौर पे –"दूसरा विश्वयुद्ध ब्रिटन के लिए जीतना बड़ा मुश्किल है । अगर वे जीतेंगे तो भी उन्हें बहुत कुछ हारना पड़ेगा ।" और हुआ भी वही । ये उनके कुछ opinions थे – वे भी उन्हीं में से थे He once gave me a book on "Lenin and Trotsky" which was on letters exchanged between Lenin and Trotsky. उसमें मराठा, टीपू सुल्तान, डेक्कन के राजा, भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन, वगैरह का उल्लेख था । These are some of the inner vibrations of our relationship. These were the academic vibrations.

हम जब–जब मिलते थे गालिब, मीर–तकी के शेर कहते और सुनते थे । मीर–तकी ने एक शेर में कहा है–

"यह पूछा गुल ने कि क्या है सबात ? कली ने मुस्कराकर तब्बस्सुम किया ।" (फूल ने कली से कहा कि इस संसार में Constant, eternity क्या है? सुनकर कली जोरसे मुस्कराई, और मुस्कराते ही वह कली से फूल बन गयी; जो चंद क्षणों का मेहमान होता है और मुरझा जाता है ।)

गालिब मुश्किल–पसंद शायर माने जाते हैं। उसका उदाहरण है –

"सादगी में भी आयना आफ़रीनी है –? दूसरा है –"नक्शे नाज़े बुते तन्नाज़ व आगोशे रक़ीब पताउस पैमाना मानी मांगे ।"

(My beloved deity is in the arms of my rival, Mani is a well-known writer. He says that he has asked for the legs of peacock (which are ugly) to make a pen to describe the beauty of his beloved. He wants to use the ink for writing from the feathers of a peacock which are the most beautiful).

इस तरह नरेन भैया भी हमें उनके गीत व कविताएं सुनाते थे –"रुक कहां चली, ओ चंद्र वदन, चंपे की कली, गोकुल की लली । रुक कहां चली?"

गालिब का एक और शेर याद आया –

"दामें हर मौज में है हलक एक सद्काम निहंग
जाने क्या गुजरी है शम्मा पे सहर होने तक"

इस तरह की सारी, कई तरह चर्चाएं होती रहती थीं और समय कहां चला जाता, पता हीं ही चलता था।

This is not end. जो भी मैंने यहां कहा है वह तो सिर्फ़ इब्तिदा है, उसकी इन्तहा नहीं । यानी आप ऐसा न समझ लें कि बात मैंने खत्म की । बाते बहुत हैं, लेकिन मैं उन्हें अनकही ही छोड़ रहा हूं।

"वह पान भरी मुस्कान"

● डॉ. राही मासूम रजा

वह पान भरी मुस्कान न जाने कहां गई ?
जो दफ्तर में,
इक लाल गदेली कुर्सी पर,
धोती बांधे,
इक सभ्य सिल्क के कुरते पर,
मर्यादा की बंडी पहने,
आराम से बैठा करती थी।
वह पान भरी मुस्कान तो उठकर चली गई,
पर दफ्तर में,
वो लाल गदेली कुरसी अब तक रक्खी है,
जिस पर हर दिन,
अब कोई न कोई आकर बैठ जाता है।
खुद मैं भी अक्सर बैठा हूं।
कुछ मुझसे बड़े भी बैठे हैं।
मुझसे छोटे भी बैठे हैं।
पर मुझको ऐसा लगता है,
वह कुरसी लगभग एक बरस से खाली है।

पंडित नरेंद्र शर्मा : मुस्कराती हुई यादें

● अमीन सयानी

सुना है कि जानकार घमंडी होता है, मगर ज्ञानी विनम्र है। ज्ञान का प्रकाश पाकर इंसान हर तल्खी त्याग देता है। प्रेम की मिठास फैल जाती है उसके व्यक्तित्व में।

वही मिठास मैंने पंडित नरेन्द्र शर्मा में पाई। मिला तो मैं बहुत कम उनसे, पर जब भी मिला यूं लगा जैसे किसी ने अपने प्यार से सर पर हाथ रख दिया हो, या पीठ थपथपा दी हो।

पंडित जी विविध भारती के प्रथम चीफ प्रोड्यूसर हुआ करते थे और मैं हमेशा से रेडियो के सुधार के मुट्ठी भर सर- फिरे साधकों में शामिल रहा हूं। इसलिए दो-तीन बार रेडियो, टी.वी. से संबंधित हमारी संस्था ('रा.पा.') के सुझावों के विषय में राय लेने मैं उनके घर गया था।

आकाशवाणी से पुरानी मान्यताओं के जाले हटाकर उसमें नया उत्साह जगाने की मेरी बेताबी पंडित जी ने देखी। परिवर्तन की राहों पर हठधर्मी की दीवारों से मेरा टकराना उन्होंने देखा और देखकर मुस्कराये। मैंने उनसे कहा, "पंडित जी, मैं तो थक गया हूं, कोशिशें करते-करते। आप ही बताइये- क्या हमारे सुझाव खोटे हैं ? क्या हम सुधार की धुन छोड़ दें ?"

तो वो फिर मुस्कराकर कुछ इस तरह से बोले, "बिल्कुल मत छोड़ना। रुको नहीं, डिगो नहीं। जो तुम लोग कर रहे हो, सब उचित है। इसे अपना मिशन समझ कर बस लगे रहो। एक न एक दिन तुम लोगों की बातें सच भी साबित होंगी और स्वीकार भी कर ली जायेंगी।"

पंडित जी की इसी राय के सहारे हम लोगों ने अपने प्रयत्न जारी रखे हैं। अभी मंजिल मिली नहीं, मगर रास्ता जरूर साफ होने लगा है। और जब कभी कदम थकने लगते हैं, तो पंडित जी की वही प्यार भरी मुस्कराहट याद आती है, और हौसले फिर बढ़ जाते हैं।

●

हिंदी भाषा की आत्मा 'पंडितजी'

● अनूप जलोटा

पंडित जी से मेरा बहुत सुन्दर सम्पर्क रहा है। स्नेह से मिलना, हर एक को गले से लगाना, सबकी मदद करना, ये उनका स्वभाव था।

"सूर-रामायण" की रेकार्डिंग के दौरान उनसे लगभग तीस दिन रोज मिला और हर दिन उन्हें एक जैसा पाया।

पंडित जी ज्ञान, सरलता, मधुरता और नम्रता की मिसाल थे। किसी एक व्यक्ति में इतने गुण मैंने पहले कभी नहीं देखे और पता नहीं कभी देखने को मिलेंगे भी ?

जब तक हिन्दी भाषा जीवित रहेगी, पंडित नरेन्द्र शर्मा जीवित रहेंगे।

●

चिरंतन नाता

● भीमसेन जोशी

मेरा और पंडित नरेन्द्र जी का ज्यादा परिचय एच. एम. वी. में हुआ। उसके पहले मैंने उन्हें संगीत सभाओं में भी देखा था। लेकिन नजदीक से जानने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। लताजी और मैंने मिलकर उनके गाने गाये थे। इन गानों की रेकार्डिंग चल रही थी। शर्माजी वहां आते थे। इतने ज्ञानी और बड़े व्यक्ति होने पर भी वे अत्यंत सरल व मृदु स्वभाव के थे। हर एक के साथ प्रेम से बात करते थे। कभी गाने का अर्थ पूछा, तो इतनी अच्छी तरह से समझाते थे कि आंखों के सामने एक चित्र-सा उभर आता था।

मेरा और उनका सहवास बहुत कम हुआ है, इसका मुझे दु:ख है, लेकिन उनके गीत गाकर उनके साथ जो मेरा नाता जुड़ा है, वो चिरंतन है।

आज़ शर्माजी नहीं हैं, फिर भी उनके जो गीत मैंने गाये हैं, उनकी वजह से वे हमेशा ही मेरे हृदय में रहेंगे। "राम, श्याम गुणगान" हमेशा ही मेरे मन में गूंजता रहेगा।

●

एक आदर्श पड़ोसी

● पं. हरिप्रसाद चौरसिया

पं. नरेन्द्र शर्मा हिन्दी साहित्य का एक आदरणीय नाम है । उनका लेखन उनकी पूजा थी । महाकवि निराला और महादेवी वर्मा के युग के पश्चात् हिन्दी–काव्य–साहित्य की नवीन दिशाएं पंडित जी के नाम से सदा जुड़ी रहेंगी ।

वह कवि, आलोचक एवं दार्शनिक ही नहीं थे, बल्कि एक आदर्श पुरुष भी थे। मुझे उन्हें, एक पड़ोसी के नाते, निकट से देखने व जानने का अवसर प्राप्त हुआ । उनका प्यार सदा ही मुझे प्रेरणा देता रहा ।

वह वास्तव में हमारी संस्कृति तथा सभ्यता का जीता–जागता रूप थे, जो अब केवल पुस्तकों के पृष्ठों में ही दिखाई देता है ।

मेरे लिए पं. नरेन्द्र जी एक गुरु समान व्यक्ति थे । उनके निधन ने मुझसे मेरे रचनात्मक कार्यों पर आशीर्वाद देने वाला हाथ छीन लिया, जिसका मुझे सदैव दुःख रहेगा । प्रभु उनकी आत्मा को शांति दे– यही प्रार्थना है ।

●

सर्वगुण संपन्न महापंडित

●गूफी पेंटल

बड़ों ने कहा है कि पेड़ पर फल जितने ही लगें, वह उतना ही झुकता है । सो पं. नरेन्द्र शर्मा एक ऐसे पेड़ थे जो ज्ञान के फलों से लदे हुए थे । ऐसा सहृदय और महान व्यक्तित्व तो कभी-कभार ही संसार में जन्म लेता है ।

पंडित जी महाभारत सीरियल के मुख्य प्रेरणा-स्रोत थे । उन्हीं दिनों मैं भी उनके संपर्क में आया । वे जब भी 'महाभारत' की कथा सुनाते थे, तो सुननेवाला मंत्र-मुग्ध-सा उनको निहारता रहता और चाहता कि पंडित जी यूं ही बोलते रहें और हम सब सुनते रहें। उनका बयान इस कदर खूबसूरत होता कि यूं लगता मानों वो आंखों देखा हाल सुना रहे हैं । वाह ! क्या सादगी थी, क्या प्रवाह, क्या प्रभाव !

वे कला के क्षेत्र में एक महानतम गुरु थे, फिर भी इतनी विनम्रता कि क्या कहें ! इतनी विनम्रता मैंने किसी इंसान में नहीं देखी । कई बार ऐसा हुआ कि हम किसी बात पर अटक जाते, तो पंडित जी को फोन करते और अपनी परेशानी बताते तो वो फौरन अपने घर बुला लेते और बड़े ही स्नेह से हमारा मार्गदर्शन करते । कृष्ण हो, दुर्योधन, भीष्म, या फिर शकुनी, हम सब अपना किरदार जानने के लिए पंडित जी की शरण में पहुंच जाते और वो बड़े प्यार से सबको समझा देते । एक बार जब मेरे वस्त्र कैसे होने चाहिए और मुकट के बदले सुलताननुमा पगड़ी होनी चाहिये पंडित जी ने कहा तो मेरे मुंह से अचानक निकल आया कि "पंडित जी यदि इस किरदार को काले वस्त्र दे दिये तो?" पंडित जी बड़े प्यार से बोले, "वाह भाई गुफ़ी साहब आप तो सही कैरक्टर में डूब गये ।" तो यहां से हुई शकुनी की शुरुआत, पंडित जी के आशीर्वाद से । अलग-अलग पात्रों के चयन के लिए भी उन्होंने बड़ी सराहना की थी मेरी ! सदैव मुझे कहते थे, "भगवान श्री कृष्ण तुम्हारे साथ हैं, तुम अच्छा ही काम करोगे" ये था मेरे लिए उनका विश्वास जो मैं समझाता हूं, मेरे लिए जीवन का सर्वोत्तम पुरस्कार है, आशीर्वाद है । उनकी इतनी विशेषताएं थीं, बयान करें तो सारी उम्र भी कम पड़े ।

उन्हें मैं आज का सर्वगुण-संपन्न और अनेक शास्त्रों का महापंडित

कहूंगा और मैं तो ये मानता हूं कि वे भगवान के स्वरूप थे और उन्हीं में लीन हो गये। श्री कृष्ण शरणम्।

एक स्वर में छिपे भाव

● हरीश भिमानी

अगर मैं कहूं कि पंडितजी का और मेरा नाता, प्रत्यक्ष से अधिक परोक्ष का था, तो उस में एकलव्य–द्रोणाचार्य के संबंध का आभास होने की संभावना है। लेकिन उसमें एक अंतर था। गुरु–दक्षिणा की भांति दिशा–निर्देश पहले मिला, बाद में शिक्षा में उत्तेजना आई।

सालों पहले एक विशाल सरकारी प्रतिष्ठान में, जो कि जन–माध्यम की भूमिका निभाता है– मेरी आवाज को सर्वोच्च श्रेणी में रखने के लिए आवेदन पर विचार हो रहा था।

बाद में सुनने में आया कि उस समिति के अध्यक्ष पंडितजी के यह कहने पर कि "हरीश अभी इस स्थान के लिए युवा है", आवेदन खारिज कर दिया गया।

आयु में युवा मैं, हतप्रभ रह गया, आक्रोश कहा जा सकने वाला क्लेश हुआ, निराशा हुई, घोर पराजय–सी दीनता का अनुभव हुआ।

पराजय की स्थिति में तर्क से बेहतर आश्रय कहां ? सो, सोचा–समझा, माना कि युवा अनुभव में होऊंगा, प्रतिभा में होऊंगा। बस, उस टिप्पणी को आशीष मान कर, व्यावसायिक परिपक्वता की ओर ध्यान केंद्रित किया।

कुछ साल बीत गए। टी.वी. सीरियल 'महाभारत' में 'समय' की भूमिका का दायित्व मुझे सौंपा गया। वहां भी पंडितजी अध्यक्ष थे। पहली रेकार्डिंग के बाद, पंडितजी ने मुझे बधाई देकर मेरे सशंक मनको ढाढ़स बंधाया।

प्रशंसा में शब्दजाल नहीं बिछाया। यथार्थ के धरातल पर रह कर केवल यह कहा कि "इस उम्र में इतनी परिपक्वता की आशा नहीं थी,बहुत सुंदर।"

वे शायद जानते थे कि मैं कुछ कलम तोड़–मोड़ लिया करता हूं। एक बार जब भेंट हुई तो कहा, "तुम आवाज तो हो ही, लेकिन केवल आवाज नहीं, शब्दों से खेलना भी जानते हो। तुम्हारे लिखे टी.वी. सीरियल पर मेरा ध्यान है। और भी लिखो। लिखना,

तुम्हारी आवाज के प्रसारण जैसा चकाचौंध वाला काम तो नहीं, न ही वैसा तेज रफ्तार है, पर है शाश्वत। अपनी प्रतिभा को रोको मत, जितनी इस्तेमाल करोगे उतनी ही बढ़ेगी। लेखक तो अपने–आप से ही सीखता है।

पंडितजी से परोक्ष रूप में सीखना ही शायद मेरे नसीब में बदा था।

दूरदर्शी, महान विद्वान पंडित जी

● गिरिजाशंकर

जब कोई छोटा आदमी अचानक ही किसी बड़े आदमी से मिलता है तो उसे अनायास ही सीखने के लिए कोई न कोई बात मिल जाती है। और "महाजनों येन गतः स पंथाः' की पुरातन कहावत के अनुसार वह कब और कैसे उस बड़े आदमी का अनुयायी बन जाता है छोटा आदमी स्वयं नहीं जान पाता। मेरी पंडित नरेन्द्र शर्मा जी से पहली भेंट हुई तब मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ।

बात तब की है जब "महाभारत' में धृतराष्ट्र का अभिनय करने के लिए मेरा चुनाव किया गया था। अभिनेताओं का चुनाव करने के उपरांत श्री बी.आर. चोपड़ा और श्री रवि चोपड़ा का यह नियम था कि वे महाभारत की कथा को लिखने वाले अपने लेखकों की राय भी उन प्रधान अभिनेताओं के बारे में जानना आवश्यक मानते थे। स्वाभाविक था कि मेरा परिचय पंडित जी और डॉ. राही साहब से कराया गया। यद्यपि मैं डॉ. साहेब को पहले से ही जानता था, किन्तु पंडित जी से मेरी यह पहली ही भेंट थी।

उस पहली भेंट में जब चोपड़ा जी ने मेरे बारे में कहा तो पंडित जी अपने चश्मे के भीतर अपनी चमचमाती आंखों से बिलकुल खामोश मुझे थोड़ी देर देखते रहे और फिर अचानक ही मुस्करा दिये। मुझे लगा, पता नहीं पंडित जी को मैं धृतराष्ट्र के अनुकूल लगा या नहीं। पंडित जी चुप रहे। बाकी लोग मेरे विषय में कुछ कहने लगे तो अचानक ही बोले- "हां, मैं जानता हूं। इन्होंने "बुनियाद" में रलिया राम का अभिनय किया है और मैं आप लोगों के चुनाव की प्रशंसा करना चाहता हूं। ये इस पात्र के लिए बिलकुल उपयुक्त अभिनेता हैं।" फिर मुझसे उन्होंने कभी मिलने की बात कहकर बातों का रुख बदल दिया। उन्होंने मुझसे बिना कुछ पूछे ही इस प्रकार कहा कि मैं चिन्तित हो गया। पता नहीं पंडित जी ने जो कुछ कहा है, वो वास्तव में ठीक है या उन्होंने केवल मेरी मुंह-देखी बात करने के लिए ऐसा कहकर मुझे टालना चाहा है ?

किन्तु निर्देशक चोपड़ा जी ने जब दूसरे दिन मुझे बताया कि पंडित जी ने तुम्हें बहुत पसंद किया है और तुम निश्चिंत होकर काम करने लग जाओ और इस चरित्र को समझने के लिए पंडितजी

को मिल लेना''। फिर जब एक दिन उनसे श्री बी.आर. ऑफिस में मिला तो धृतराष्ट्र के चरित्र और उसके अन्तर्द्वन्द्व को समझाते हुए पंडित जी ने कहा – ''देखो गिरिजा, यह पात्र तुम्हे श्रेय नहीं देगा, किन्तु तुम इसे अपना श्रेय समझना।''

मेरी समझ में उस समय उनकी बात नहीं आयी और मैं जब भी अवसर मिलता, उसे समझने का प्रयत्न करता और अब... उनकी वह बात साफ होती रही है कि पूरा मन लगा कर बारीक से बारीक बात का ध्यान रखकर उस चरित्र का निर्वाह करते हुए भी वास्तव में मुझे अपने दर्शकों का ''प्रिय'' बनने में कठिनाई हो रही है।

परन्तु उनकी इस बात में एक बात और छुपी हुई लगी कि चाहे अपने दर्शकों का प्रिय बनूं या न बनूं,परंतु मेरे दर्शक मुझे बहुत प्रिय हैं और उन्हीं को अपने ध्यान में रखते हुए मुझे अपने चरित्र का निर्वाह अपनी योग्यतानुसार अच्छे से अच्छा करना है। फिर क्यों नहीं मैं अपने दर्शकों का प्रिय बनूंगा? इसी बारे में एक बार जब मैंने प्रिय राही साहब से बात की ''मैं अपना चरित्र ठीक से निभा रहा हूं या नहीं? अगर कहीं कोई कमी है तो मुझे बताइये।'' मेरी बात सुन कर वे हंस पड़े और उन्होंने कहा– गिरिजा, यही दरअसल तुम्हारी कामयाबी है। तुम इस चरित्र को जितनी अच्छी तरह निभा रहे हो, उतने ही अधिक देखने वालों की नजर में खटकते जा रहे हो। पंडित जी ने बड़ी दूरन्देशी की बात तुमसे उस वक्त कही थी।

उस प्रकाण्ड विद्वान की दूरन्देशी को मैं शतशत नमन न करूं तो और क्या करूं?

ज्ञान और गुणों के संगम थे पं. नरेंद्र शर्मा

● भृंग 'तुपकरी'

"शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत,
अंत यही ले जाएगा, कुरुक्षेत्र पर्यंत !!

यह दोहा उन चार दोहों में अंतिम हैं, जिनका उपयोग दूरदर्शन पर प्रसारित हो रहे 'महाभारत' रूपक माला की चौबीसवीं कड़ी में किया जायेगा और पंडित नरेन्द्र शर्मा ने ९ फरवरी की दोपहर में ही इसे लिखा था। इस अभागे दोहे को ही वह सौभाग्य प्राप्त होगा, जिसने पंडित जी के जीवन समारोह के अंतिम चरण के अंतिम उद्‌गार का महत्व प्राप्त किया है। जब यह लिखा गया था, तब पंडित जी ने भी नहीं सोचा था कि यही उनके जीवन-समारोह के अंत का शंखनाद बननेवाला है। पंडित सुमित्रानंदन पंत ने आधुनिक हिन्दी की जिस काव्य शैली का संगठन और विकास किया, उनके पट्‌शिष्य के रूप में पंडित नरेन्द्र शर्मा ने उसी शैली का संवर्धन करते हुए अनेक समृद्ध रचनाओं का सृजन किया। चाहे साहित्य हो, या सिनेमा, या आकाशवाणी हर जगह अपने कार्यक्षेत्र में इन्होंने हिन्दी के इसी रूप को संवारकर समृद्ध बनाने का अविरत और संकल्पबद्‌ध प्रयास किया है। वे किसी एक के शब्द लादने के बजाय, अपने-अपने दायरे में हर भाषा के समुचित विकास के पक्षधर रहे। यही कारण था कि फिल्म-जगत में प्रवेश करने के बाद उन्होंने जहां एक ओर "ऐ बादेसबा इठलाती ना आ, मेरा गुंच-ए-दिल तो सूख गया / मेरे प्यासे लबों को छुये बिना, पैमाना खुशी का टूट गया /" और "यह दिल में घर किये थे और दिल ने भी न जाना / कोई दिलरुबा से सीखे, यों दिल में समा जाना /" जैसी उर्दू की लोकिप्रय गजलें ही नहीं, वरन् "ज्योतिकलश छलके" और "नाचरे मयूरा" जैसे हिन्दी के गीत भी लिखे। वे जो कुछ करते थे, पूरी निष्ठा के साथ करते थे और जो नहीं करना चाहते थे, उससे साफ इन्कार कर देते थे। यही कारण था कि जब उन्होंने सन् १९५७ में "विविध भारती" कार्यक्रम आकाशवाणी पर शुरू करने के लिए अपने सहयोगी के रूप में मुझे आकाशवाणी नागपूर केन्द्र से बंबई बुलवाया था, तब बड़ी नम्रता से किंतु बिलकुल साफ शब्दों में कहा था, "यह विविध भारती कार्यक्रम आकाशवाणी का पहला कार्यक्रम होगा, जो पूरी तरह कलाकारों पर ही आधारित या आश्रित होगा। इसके लिए इसमें के हर कलाकार को इस बात का पूरा अवसर मिल सकता है कि वह जो कुछ कर सकता है,

कर दिखाये। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि तुम जो न कर सको, उसे भी करने का प्रयास करो, क्योंकि ऐसे प्रयास यदि निष्फल नहीं, तो निष्प्राण अवश्य होते है। किन्तु जो कुछ कर सकते हो, उसे पूरे मन से और पूरी लगन से करो, ताकि उसे अच्छा रूप मिल सके।"

वे जितने नम्र और मधुर भाषी थे, अपने उत्तरदायित्व और कार्यों के संपादन में उतने ही कठोर भी रहते थे। ढुलमुल नीति न उन्हें पसंद थी और न अपने किसी सहयोगी से वे ऐसी अपेक्षा रखते थे। भाषा के संबंध में उनकी स्पष्ट राय होती थी कि "जिस भाषा पर तुम्हारा अधिकार नहीं है, उसे तोड़ने–मरोड़ने का भी तुम्हें कोई अधिकार नहीं। यदि संवार सको तो भाषा को संवारो, उसे तोड़–मरोड़कर खराब न करो।"

उनकी इस बात ने मुझ पर इतना प्रभाव डाला है कि जन्म से एक मराठी भाषी होते हुए भी मैंने कभी मराठी में कुछ लिखने का प्रयास नहीं किया, क्योंकि मैं नहीं समझता कि मराठी पर मेरा अधिकार है।

कहना नहीं होगा कि उनकी हिन्दी, हिन्दी ही होती थी, उनकी उर्दू, उर्दू ही होती थी और उनकी अंग्रेजी, अंग्रेजी ही होती थी। इन तीनों भाषाओं पर उनका पूरा अधिकार था और साथ ही संस्कृत पर भी, किन्तु संस्कृत में उन्होंने लेखन बहुत कम किया है। भारतीयता तथा भारतीय आयुर्वेद में उनकी विशेष रुचि और गति थी। भारत–भारती से सम्बद्ध विषयों के वे चलते–फिरते "विश्वकोष", "एनसायक्लोपीडिया" माने जाते थे। हमारी कोई भी, कैसी भी जिज्ञासा होती, वे तुरन्त उसका समाधान बता देते। अधिक से अधिक, यदि तुरन्त न बता पाते तो कुछ समय बाद जरूरी छानबीन करके बता देते। हम पूछकर निश्चिंत हो जाते, वे बताकर भी निश्चिंत न होते, बल्कि अधिक से अधिक जानकारी दे देने की चिंता में जुटे रहते। वे ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे कि अब ऐसा लगता है कि जैसे हमने अपने प्रकाश का ऐसा आधारस्तंभ खो दिया है, जो हमारे अज्ञान को छूते ही दूर कर देता था।

यही कारण है कि लगभग एक वर्ष पहले जब उन्होंने मुझे महाभारत

में सहयोग करने के लिए बुलवाया तो मुझसे साफ शब्दों में कहा कि मुझे जो ठीक लगे, ठीक कहूं, और जहां कुछ गलत लगे, उसे स्पष्ट रूप से गलत कहूं। यदि त्रुटि दूर न की जाए तो चिंता न करूं, क्योंकि गलती बता देना मेरा काम है और उसे दूर करना या न करना दूसरों का, यानी प्रोडक्शन वालों का काम होगा।

और मैं अपनी ओर से त्रुटियां दिखाने और यत्र-तत्र भाषा या कथा- संबंधी सुधार सुझाने में लगा रहा कि अचानक ही श्री बी.आर. चोपड़ा ने मुझसे कहा, "पंडित जी अपनी गैर- हाजिरी में आप से पूछने-ताछने को कहा करते थे, इसलिए अब उनकी गैरहाजिरी में आप ही उनका काम संभालिए।"... तो सोचने लगा हूं कि यह उत्तरदायित्व बन आया है, तो मैं उसे पंडित जी की आज्ञानुसार निष्प्राण न होने देने के लिए पूरे मन से पूरा करूंगा और पंडित जी की आत्मा को, उनकी आज्ञा का पालन करते हुए, संतोष देने का प्राणपण प्रयत्न करूंगा।

नरेन्द्र शर्मा- एक महान व्यक्तित्व

● इन्दीवर

हिन्दी–साहित्य को लोकप्रिय बनाने में हरिवंशराय बच्चन जितना ही नरेन्द्र जी का योगदान रहा है। जहां तक फिल्म–क्षेत्र, आकाशवाणी और दूरदर्शन का सवाल है, नरेन्द्र जी ने हिन्दी–साहित्य को लोकप्रिय बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। साहित्य के संबंध में सिने गीतकार शैलेन्द्र जी की एक बात अक्सर याद आती है। मैं उन्हें उर्दू के महान शायरों के जब शेर सुनाया करता था, तो वे मुझे डॉ. हरिवंशराय बच्चन और पंडित नरेन्द्र शर्मा की किताबों से चुने हुए कुछ गीत, जो उन्हें जबानी याद थे, अक्सर सुनाया करते और कहते थे, "इन्दीवर तुमने इनको नहीं पढ़ा।" मैं कहता था, "मैंने इन्हें पढ़ा है और मुझे ये सब बहुत पसंद भी हैं।" जो कविताएं शैलेन्द्र जी ने पंडित नरेन्द्र शर्मा की सुनायीं, वे मुझे पहले भी याद थीं और आज तक याद हैं।

नरेन्द्र जी के "प्रवासी के गीत" नामक गीत–संग्रह में–

'आज के बिछड़े न जाने कब मिलेंगे
आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे,
पर सदा को दूर होंगे ज्यों नदी के दो किनारे
सिन्धु तट पर भी न जो मिल सकेंगे तब, न मिलेंगे...
आज..."

पंडित नरेन्द्र शर्मा जी के गीतों की जब ये पंक्तियां साहिर लुधियानवी ने सुनीं तो वो बाजिद हो गये कि उन्हें उसी रोज नरेन्द्र जी के घर ले जाया जाये। मैं नरेन्द्र जी से बिना समय लिए साहिर लुधियानवी को अपने साथ उन्हें मिलाने उनके घर ले गया। मैं तो उनके पांव छूता ही था और साहिर लुधियानवी ने भी उनके पांव छूए। बातचीत के दौरान साहिर ने जो मुझे इकबाल का पर्शियन शेर सुनाया था, मैंने किसी बात पर उदारहण के तौर पर उसे सुनाया। उसी दौरान, हिन्दी के महान साहित्यकार नरेन्द्र जी ने जैसे कि वे पर्शियन के महान साहित्यकार भी हों, ये शेर सुनाया।

"कज अजा आई तये चीनी शिकस्त।

खूब शुद, असबाबे खुद बीनी शिकस्त।"

इससे जाहिर होता है कि उनको उर्दू के लिटरेचर के साथ पर्शियन लिटरेचर का भी ज्ञान था। संस्कृति साहित्य का तो उनके लिखे और देख-रेख में बने "महाभारत" नामक धारावाहिक से पता चल ही जाता है।

उनके ज्योतिष-ज्ञान की लता जी भी कायल थीं। यहां एक बात कहना जरूरी है। आधुनिक मार्क्सवादी साहित्य से प्रेरित नवयुवक साहित्यकारों के नरेन्द्र जी अपनी तरुण अवस्था से ही मार्गदर्शक रहे हैं। अगर मेरा कोई साहित्यिक रूप या स्थान है, तो उसका श्रेय नरेन्द्र जी को ही जाता है। उन्होंने ही आकाशवाणी बंबई से अखिल भारतीय स्तर के कवि-सम्मेलन में, जिसमें महान् साहित्यकार और कवि भाग लेते हैं, नवोदित साहित्यकारों को उत्साहित किया और उन्हें कविता पाठ के अवसर साहित्यिक कवि-सम्मेलनों में दिलवाये।

नरेन्द्र जी ने आकाशवाणी द्वारा हिन्दी की अपार सेवा की। फिल्म क्षेत्र में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री भगवतीचरण वर्मा, जो उस समय बाँबे टाकीज में थे, उन्होंने गीत लिखने के लिए नरेन्द्र जी को बंबई बुलाया। फिल्म "हमारी बात" के गीत आज तक लोकप्रिय हैं--

१) "मैं उनकी बन जाऊं रे,
आयें वो चंदा के रथ में
मैं मन ही मन अंग लगाऊं।
दूर खड़ी शरमाऊं... मैं उनकी...
आज सोलह सिंगार करूंगी,
ए री सखी मैं पी को वरूंगी,
भोले मन के अरमानों की
जयमाला पहनाऊं... दूर खड़ी शरमाऊं..."

२) "इंसान क्या ? ठोकरें
नसीब की न सह सके,
वे कश्ती क्या, जो साथ में

तूफान में न रह सके।"

३) "ऐ बादे सबा इठलाती न आ
मेरा गुंचए दिल तो टूट गया।"
और अभी हाल ही में रिलीज हुई राजकपूर की फिल्म "सत्यम् शिवम्
सुंदरम्" के ये दो गीत साहित्य की भी अमूल्य निधि हैं;
"यशोमति मैया से बोले नंदलाला,
राधा क्यों गोरी, मैं क्यों काला ?"
और
ईश्वर सत्य है, सत्य ही शिव है
शिव ही सुंदर है, जागो उठकर देखो,
जीवन ज्योत, उजागर है...
सत्यम् शिवम् सुंदरम्..."

भारतीय दर्शन में जो स्थान-सम्मान बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी और ऋषियों का है, वही स्थान नरेन्द्र शर्मा जी का हिन्दी और हिन्दुस्तान के साहित्य और अदबपसंद लोगों के दिलों में है। जो कोई भी उनसे मिला, उनकी छाप अपने हृदय में लिये रहा। पंडित नरेन्द्र शर्मा साहित्यकारों के हृदय में हमेशा ध्रुव तारे की तरह अटल रहेंगे।

.... एक सूरज

● खैयाम

"हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा !"

और यह सच है कि अब भारत की गंगा–जमुनी तहज़ीब को, साहित्य और संस्कृति को, तथा बुद्धिजीवी कला–प्रेमी, "सर्वधर्म समभाव" को ही अपने जीवन का लक्ष्य मानने वाले, भारत के जन–मानस को फिर न जाने कितने वर्षों तक तरसना पड़ेगा पंडित नरेन्द्र शर्मा जैसे एक महापुरुष के लिए।

मैं तो पंडित् जी को सूरज समान मानता था। जिधर से निकलते थे, ज्ञान, बुद्धि भाईचारे और सद्भाव की रोशनी लुटाते चलते थे। जीवन का अर्थ और रहस्य समझाते थे।

पंडित जी का और मेरा पैंतीस बरसों का मेल–जोल था। वो मेरे बड़े भाई समान थे। मैं अल्लाह से दुआ करता हूं कि उनकी आत्मा को शांति दे।

मौत से किसको रुस्तगी

● मजरूह सुल्तानपुरी

ये सन १९४२ का जमाना है, जब मैं इलाहाबाद में उर्दू के मशहूर शायर फ़िराक गोरखपुरी के यहां बैठा हुआ था कि साहब पान खाये हुए तशरीफ़ लाये और थोड़ी देर फ़िराक़ साहब से दो चार बातें करके चले गये । मैंने फ़िराक साहब से पूछा कि ये कौन साहब थे। उन्होंने कहा कि ये हिंदी के बहुत माने हुए शायर पंडित नरेंद्र शर्मा हैं । फ़िराक़ साहब ने बताया कि नरेन्द्र शर्मा की 'लिरिकल पोयम्स' अपनी मिसाल आप हैं ।

फिर साल गुजर गये । जब मैंने बंबई में म्यूजिक डायरेक्टर अनिल विस्वास के यहां पंडितजी को देखा तो देखते ही पहचान गया । मैंने उनसे कहा कि १९४२ में मैं एक बार फ़िराक़ साहब के यहां उनसे मिल चुका हूं, तो उन्होंने जैसे कुछ याद करते हुए, कह दिया, अच्छा ! अच्छा !! और वो पहला दिन था जब मैंने शर्माजी के मुंह से उनकी कुछ कविताएं सुनीं । उनकी ज़बान हिंदी की अदबी ज़बान थी । इस लिए जहां - जहां मैं लफ्जों के मानी नहीं समझ सका, कविता खत्म होने के बाद उनसे उनके मानी पूछे । पंडितजी ने बड़ी ही खूबसूरती से उनका मतलब इस तरह समझाया कि मुझे मानना पड़ा कि यह कोई मामूली शायरी नहीं है ।

फिर तो मैं जब-जब पंडितजी से मिला, हर बार मैंने उनमें एक नयीं गहराई, एक नयी बुलंदी महसूस की । वाक़ई वो जितने अच्छे शायर थे, उतने ही भले इन्सान थे।

उनकी मृत्यु से आठ-दस महीने पहले तक या तो कहीं मेरी मुलाकात हुई या टीवी पर कोई प्रोग्राम देखने और उनकी आलिमान बातें सुनकर मुझसे न रहा गया, तो मैंन फोन ही पर बातें कर ली और उन्होंने मोहब्बत से मेरी बातों को सुना और कभी-कभी मिलने की ताकीद की । मगर मेरी बदकिस्मती कि फिर मेरी मुलाकात उनसे आवाजों की हद से आगे न बढ़ सकी और एक दिन वो होशो-हवास उड़ा देने वाली खबर सुनी की पंडितजी इस दुनिया

में नहीं रहे । "मौत से किसको रुस्तगी (छुटकारा) है? आज वो, तो कल हमारी बारी है।"

हमारे भीष्म पितामह

● मुकेश खन्ना

जिस तरह से महाभारत युग के भीष्म पितामह कुरुवंश के ज्येष्ठ थे और कुरुवंश का भार उनके चौड़े कंधों पर था, वैसे ही द्वापर युग के उस महाभारत को आज़ के इस कलियुग में टी. वी. के परदे पर लानेवाले महारथियों में अगर किसी को भीष्म पितामह की उपाधि दी जा सकती है, तो वे थे हमारे स्वर्गीय पंडित नरेन्द्र शर्माजी । जिस तरह द्वापर युग के भीष्म पितामह को धर्म का पूरा ज्ञान था, वैसे ही पंडितजी को महाभारत का पूरा ज्ञान था और महाभारत बनाने का कोई कदम उनसे पूछे बगैर नहीं उठाया जाता था । टीका कैसी होनी चाहिये (किसी किरदार के माथे पर) इस छोटी–सी बात से लेकर, आयु, रूपरंग, वेशभूषा– ये सभी बातें पंडितजी ऐसे बताते थे, जैसे वे वहाँ मौजूद थे । चोपड़ा साहब से लेकर डॉ. राही मासूम रजा, सतीश भटनागर, भृंग तुपकरी सब उन पर ही निर्भर थे, हम सभी कलाकार भी, चाहे शकुनी मामा, या अर्जुन, या कर्ण, या विकर्ण, सभी उनका मुँह छोटी–छोटी बातों के लिये यूँ ताकते थे, जैसे किसी शब्द के अर्थ के लिए शब्दकोष की ओर लपकते हैं ।

वैसे तो पंडितजी हिन्दी–साहित्य– सागर के एक बहुत ही कीमती रत्न थे, जिनकी प्रसिद्धि देश–विदेश तक फैली थी । मैंने भी स्कूल में हिन्दी की किताबों में उनके अक्सर दर्शन किये थे । पर सही मानों में मेरा साक्षात्कार उनसे 'महाभारत' के निर्माण के दौरान चोपड़ा साहब के आफ़िस में ही हुआ । मैंने सही मानों में उन्हें वहीं देखा और वहीं पहचाना और जैसा सुना था, उससे कहीं अधिक गुना विशाल व्यक्तित्व मैंने पाया । हिन्दी साहित्य के प्रति उनका क्या योगदान था, ये तो सभी जानते हैं, पर महाभारत सीरियल जो आज़ हिन्दुस्तान ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लोगों को हमारी भूली हुई संस्कृति का दर्शन करा रहा है – उसको उसके रंग, रूप और आकार में लाने का बहुत बड़ा श्रेय पंडितजी को ही जाता है ।

मैंने जब बी. आर. आफिस में पहली बार उनके बारे में सुना तो कोई कह रहा था ''जब 'महाभारत' की स्टोरी सिटिंग में पंडितजी

'महाभारत' का कोई दृश्य सुनाते हैं, तो वो अक्सर इतने तन्मय हो जाते हैं कि खड़े होकर सुनाने लगते हैं. . . "तब श्री कृष्ण चाबुक लेकर दौड़े. . ." ऐसे लगता है जैसे वो खुद 'महाभारत' के मैदान में हों । इतना सजीव चित्रण वो करते हैं कि हम सबके रोंगटें खड़े हो जाते हैं । वो जो कुछ कहते हैं, उनके एक-एक शब्द कीमती होते हैं और कुछ छूट न जाये, इसका हमने उपाय किया है । एक छोटा टेप रिकार्डर रख दिया जाता है और उनके हर शब्द रेकार्ड कर लिये जाते हैं ।

इतना सुनने के बाद मेरे मन में उनका एक व्यक्तित्व बन चुका था, लेकिन 'महाभारत' की शूटिंग शुरू होने के बावजूद मैं उनसे मिल नहीं सका था । सिर्फ उनके बारे में औरों से सुना था कि आज उन्होंने ये 'सीन' सुनाया, वो 'सीन' सुनाया । स्टोरी सिटिंग सुबह होती थी और मैं शहर के दूसरे कोने में रहने की वजह से वहाँ अक्सर दोपहर को ही जाता था । इसलिये कभी उनसे मिल नहीं पाया । फिर एक दिन जब मैं ऑफिस में उसी समय गया जब स्टोरी सिटिंग चल रही थी, तो वहाँ पहली बार उनके दर्शन किये और पहले ही दर्शन में उनसे पूरी तरह प्रभावित हो गया । मुस्कराता चेहरा, हँसती आँखें, पानकी लालीसे रंगे होंठ, और उनके पूरे चेहरे से ज्ञान दमकता था । वो उस समय महाभारत का कोई दृश्य सुना रहे थे । मैं पीछे बैठकर सुनता रहा, बिना उन्हें डिस्टर्ब किये । जो कुछ सुना था वही पाया, या उससे कहीं अधिक ही । वो पूरी तरह आत्मविभोर होकर सुना रहे थे और सब उनकी ओर ताकते बैठे थे । कुछ देर बाद जब दृश्य पूरा हुआ, तो वे पीछे मुड़े । मैंने उठकर अपना परिचय दिया तो बड़ी आत्मीयता से मिले और बोले कि "You are doing great job". मैं पहली ही मीटिंग में उनका कायल हो गया ।

फिर इसके बाद कई बार उनका और मेरा सामना ऑफिस में हुआ और हर बार वे ऐसे मिलते जैसे पिता पुत्र से मिल रहा हो और सचमुच उस ऑफिस में उनका स्वागत ऐसे होता था जैसे वो सबके पितामह हों ! मेरे काम से वे संतुष्ट थे, इसकी खबर मुझे किसी न किसी के द्वारा मिल ही जाती थी । "आज पंडितजी ने ये कहा... आज पंडितजी ने वो कहा ।" एक बहुत ही बड़ा काम्पलीमेंट जो उन्होंने मेरे काम के बारे में दिया, मैं जिंदगी भर

भूल न पाऊंगा । मुझे किसी ने आकर कहा कि पंडितजी आज ऑफिस में कह रहे थे कि "मुकेश भीष्म के किरदार को जी रहा है । और बाकी सब तो अच्छी एक्टिंग कर ही रहे है । (शेक्सपीरियन टाइप की) मगर, भीष्म 'महाभारत' को सजीव कर रहे हैं" मुझे इतना अच्छा काम्पलीमेंट आज तक नहीं मिला, और वो भी मेरी पीठ पीछे ! ये सुनकर मेरी छाती फूल कर दुगनी हो गयी थी ।

जिस रोज टीवी पर महाभारत प्रदर्शित हुआ, उसके तीसरे हफ्ते जब मेरा प्रवेश 'महाभारत' में हुआ (बड़े देवव्रत के रूप में) तो इत्तफाक से दूसरे दिन मेरी मुलाकात उनसे बी. आर. ऑफिस के दरवाजे पर ही हुई । वे जा रहे थे और मैं आ रहा था । मैंने उनसे आशीर्वाद लिया और कहा, "कल आपने मुझे 'महाभारत' में land (प्रवेश) करवा ही दिया" । तो मुस्कराते हुए, मुझे सुधारते हुए बोले, 'लैंड' नहीं हुए तुम, तुम्हारा 'टेक-ऑफ' हुआ है and now you wait for a terrific boost in coming weeks" मैंने उनसे कहा कि मुझे "आशीर्वाद दीजिए कि इस किरदार को मैं पूरी तरह जी सकूं ।" उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया । यह उन्हीं के आशीर्वाद का फल है कि मैं भीष्म पितामह हुआ हूं ।

वैसे तो चोपड़ा साहब और रवि जी का निर्देशन ही है, जिसने मुझे सही मार्ग पर डाला और मुझे वो गलतियां करने से रोका, जो हर किरदार कहीं न कहीं कर बैठता है । यह डायरेक्टर का काम होता है कि हर कलाकार की खामियां छुपाये और उसके 'प्लस पॉइंट' को उभारे । भीष्म के किरदार को जीने में उन्होंने मेरा बहुत मार्गदर्शन किया । इसके अलावा डॉ. राहीमासूम रजा साहब ने इस किरदार की वाणी को इतने भारी-भरकम और जोरदार संवाद दिये कि उनकी वजह से आज यह भीष्मपितामह का व्यक्ति लोगों को इतना विशाल लग रहा है । इसका सारा श्रेय राही साहब को ही जाता है । लेकिन भीष्म पितामह की आत्मा से अगर मुझे किसीने मिलाया तो वे पंडित नरेन्द्र शर्मा ही थे । उनके पास मैं जितनी बार बैठा, कुछ ज्ञान-अर्जित करके ही उठा । वैसे तो इत्तफाकन मैंने 'महाभारत' बचपन से ही पढ़ी है, जिसकी वजह से मुझे 'महाभारत' के सभी किरदारों के बारे में काफी कुछ पता है, लेकिन जब पंडितजी बोलते, तो मुझे पता चलता कि 'महाभारत' कितना विशाल है, उसमें जानने जैसा कितना कुछ है । कई बार वे कुछ ऐसी गूढ़

बातें बोल जाते कि मैं उसे समझना छोड़कर उनका मुंह ताकता रह जाता और मेरे दिमाग में उस वक्त सिर्फ यही बात टेप की तरह चलती रहती कि कितना ज्ञान है इनमें ! जैसे एक बार वे मुझे कालिया – मर्दन का तत्व समझा रहे थे और दस मिनट तक मैं उनके मुंह को ताकता रह गया । बातें इतनी गूढ़ थीं कि मेरे तुच्छ दिमाग को क्या समझ आतीं । लेकिन मैं पूरी तरह आत्मविभोर होकर उनका दिया ज्ञानग्रहण करने की कोशिश करता रहा । भले वह बात पूरी तरह मेरे भेजे में नहीं गयी, लेकिन एक बात का मुझे उस दिन एहसास हुआ कि ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती, उस वक्त मुझे पता चला कि पढ़ने और समझने में क्या फर्क है ।

उनकी भविष्य वाणी अक्षरशः सत्य हुई । उन्होंने कहा कि "Wait for the terrific boost in the coming weeks. और सचमुच ही कुछ ही हफ्तों में भीष्म पितामह का किरदार पूरे भारत वर्ष में छा गया । यह सारा श्रेय मैं उन्हें ही देता हूं, जिन्होंने मुझे भीष्मपितामह की आत्मा के दर्शन कराये । इस तरह से महाभारत बनती रही और हर कदम पर हम अपने मार्गदर्शन लेते रहे । हर कलाकार उनसे मिलकर एक बार अपना किरदार जान लेना, समझना जरूरी समझता था । अक्सर लोग उनके घर भी पहुंच जाते थे, उनसे सलाह लेने और मार्गदर्शन लेने । पता नहीं, यह संयोग था कि मैं चाहकर भी उनके घर नहीं जा पाया ! और जब आखिरकार एक दिन मैं उनके घर पहुंचा भी तो उनसे मिल नहीं पाया । उनकी तबीयत उस दिन कुछ ठीक नहीं थी । उनकी धर्मपत्नी मुझसे बड़ी आत्मीयता से मिलीं और मुझसे कहा, 'बेटे ! उनकी तबीयत कुछ खराब थी इसलिए अभी लेटे हैं । कहो तो उन्हें उठा दूं ।" मैंने कहा, "नहीं मैं तो सिर्फ मिठाई देने आया हूं ।" मैंने नयी मारुती गाड़ी ली थी और उसी की मिठाई देने गया था पंडितजी को । उन्हें ये जानकर बहुत बड़ी खुशी हुई । वे बोलीं, "पंडितजी अक्सर तुम्हें याद करते हैं । तुम्हें बहुत चाहते हैं वो ।" जब मुझे बाहर छोड़ने आयीं तो बोलीं, "तुम और भी तरक्की करो और अगली बार इससे भी बड़ी गाड़ी में आओ ।"

लेकिन विधाता का खेल कि मैं पंडितजी को उनके घर पर कभी नहीं मिल पाया । और अगली बार जब उनसे उनके घर

मिला भी तो उनके पार्थिव शरीर से। मुझे जब फोन पर गुंफी ने उनके निधन की खबर दी तो मैं चकरा गया कि अरे ! यह कैसे हो गया ? ऐसे लगा कि जैसे सर पर से पिता का साया चला गया हो। कुछ पल फोन पकड़कर यूं ही सुन्न बैठा रहा। ऐसा लगा जैसे हम अनाथ हो गये हैं। मुझे यकीन है कि 'महाभारत' से जुड़े, मैं हीं नहीं, सभी के मन में ये पहला प्रश्न उठा होगा कि अब 'महाभारत' कैसे बनेगी ? उनके घर वालों के लिए तो यह बहुत बड़ा नुकसान है ही, पर हम महाभारत के कलाकारों और उनसे जुड़े सभी लोगों के लिए तो यह ऐसा हुआ कि जैसे रेगिस्तान में कोई हमें अकेला छोड़ जाये जहां मीलों कहीं पानी ही न हो ! हम सबके सर से एक बुजर्ग का हाथ उठ गया था, वह हाथ जो हर कदम पर सहारा देने के लिए तत्पर था। एक ज्ञानी पुरुष जो सदा ज्ञान बांटने के लिए तैयार खड़ा था, वह आज हमारे सामने से अचानक चला गया था, हमें अज्ञान के मरुस्थल में अकेला छोड़कर।

मैं जब उनके घर पहुंचा तो वहां सारा समा शोक में डूबा हुआ था। हर कोने में लोग स्तब्ध खड़े थे। मुझे उनकी बेटी उनके पार्थिव शरीर की ओर ले गई। मैंने वहां उनके अंतिम दर्शन किये और उनके चरण छुए। मुझसे उनकी बेटी बोली, "आपको बहुत याद करते थे और पिछले तीन दिनों से आपके ही बारे में पूछ रहे थे।" मैं जब अंदर उनकी पत्नी के पास उनका शोक बांटने, उन्हें सांत्वना देने गया तो वो भी आंखों में अश्रु भर कर बोलीं, "वे कल से तुम्हारे ही बारे में परेशान थे कि मुकेश कैसा है ? वो तो मैसूर गया होगा। फिर मैंने बताया कि ठीक ही है और परसों ही मिठाई देने आया था नई गाड़ी की।"

मुझे "टीपू सुल्तान" की शूटिंग के लिए मैसूर जाना था। भगवान की कृपा से मेरा जाना टल गया। और मैं उस भयानक हादसे में शामिल होते-होते बच गया। ये उन्हें पता नहीं था। उन्हें यही पता था कि मैं शूटिंग में मैसूर जानेवाला था। जब से उन्होंने इस भीषण आग की खबर पढ़ी थी, वे मेरी चिंता में पड़ गये थे। उनकी बेटी ने मुझे बताया कि तीन दिनों से उनकी तबीयत कुछ ठीक नहीं थी, फिर भी वे मेरे बारे में चिंतित थे। मेरी आंखों में आंसू उमड़ आये। मेरे मन में यह टीस और भी जोर से उभरी

कि तीन दिन पहले उनके घर गया था फिर भी आखिरी पलों में उनसे न मिल पाया। काश, वे जागे होते तो उनसे मिल पाता ! मुझे पता है कि जिंदगी भर मुझे इस बात का अफसोस रहेगा।

प्रभु के खेल निराले हैं। जिस आत्मीयता और तन्मयता से पंडितजी "महाभारत" के इस प्रोजेक्ट से जुड़े हुए थे और कमाल का योगदान था उसमें उनका, उसी प्रोजेक्ट को भगवान ने उन्हें पूरा करने नहीं दिया । इसके पहले भी सभी जानते हैं कि अपने जीवन में उन्होंने कई प्रोजेक्ट हाथ में उठाये थे और उन्हें बुलंदियों तक पहुंचाया भी था। मैं समझता हूं कि 'महाभारत' जैसे विशाल ग्रंथ को, 'गीता' जैसे गूढ़ ज्ञान को साकार रूप देने के मिशन को जिसमें वो पूरी तन्मयता से जुड़े हुए थे– उनके बिछुड़ने का जितना अफसोस हमें है उससे कम किसी को न होगा । लेकिन जाते–जाते भी वे इतना कुछ बता गये हैं 'महाभारत' की लेखन–मंडली को कि मैं समझता हूं कि जो लौ पंडितजी ने शुरू में जलाई थी, उस लौ को अंत तक ले जाने में ये सफल ही होंगे। और पंडितजी की दिव्यात्मा वैकुंठ से जब 'महाभारत' के पूरे स्वरूप को देखेगी तो उन्हें पूर्ण संतोष ही होगा।

आखीर में यही कहना चाहूंगा कि जिस तरह से भीष्म पितामह को 'इच्छा मृत्यु' का वरदान मिला था, वैसे ही काश, हमारे पंडितजी को भी इच्छामृत्यु का वरदान मिला होता तो वो जरूर ही द्वापर युग के उस 'महाभारत' को आज के इस कलियुग में पूरा पेश किये बिना न जाते। मैं उनकी दिव्यात्मा को कोटि–कोटि प्रणाम करता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

"अंकलजी"

● पद्मा खन्ना

मुझे इस समय लिखते हुए यह सोचना पड़ रहा है कि आज अंकल जी (श्री नरेन्द्र शर्मा) हमारे बीच नहीं हैं, क्योंकि अब भी ऐसा लगता नहीं कि वह हमसे दूर चले गये हैं सदा के लिए। विश्वास ही नहीं होता। बिल्कुल ऐसा ही उस दिन भी विश्वास नहीं हुआ था, जिस दिन टी.वी. और रेडियो पर उनके निधन का समाचार सुना था। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं अंतिम दर्शन भी नहीं कर पायी, क्योंकि उस दिन मैं बंबई में नहीं थीं। उनके निधन के पांचवे दिन मन में अजीब सी हलचल तथा दुविधा लिये उनके निवास स्थान पर पहुंची।

वहां का वातावरण देखकर मन की दुविधा तथा हलचल पर तुषारपात ही हो गया। सन्नाटे में घर के बैठक वाले कमरे में मधुर मुस्कान–युक्त उनके एक चित्र पर फूलों की अनगिनत मालाएं, चित्र के सामने सुगंधित अगरबत्ती। उससे थोड़ी ही दूर पर सफेद साड़ी, सूनी मांग, सूना ललाट, फीके होठोंवाली एक सौम्य मूर्ति.. किन्तु नहीं यह मूर्ति नहीं, क्योंकि इसके होठ हिल रहे हैं। ध्यान से देखने पर पता चला कि यह तो सदा गुलाब की तरह खिली रहनेवाली मेरी पूजनीया आंटीजी (श्रीमती सुशीला शर्मा) हैं, जो उनके पास बैठीं औरतों से कुछ कह रह थीं।

पूज्य आंटी का यह रूप देखकर मैंने विधि के विधान को मन ही मन खूब कोसा। आंटीजी की जो छबि मैं सत्ताइस साल से देखती आ रही थी, उसे देखकर मैं सदा यही सोचती कि हर सुहागन की इतनी सुंदर और मनोरम छबि क्यों नहीं होती? उनके गौरवर्ण ललाट पर सिंदूर की ही लाल बिन्दी, होठ पान की स्वाभाविक लाली से रचे हुए, शुद्ध भारतीय रंगोवाली सूती साड़ी के परिधान में उनका व्यक्तित्व कुल मिलाकर ऐसा लगता, जैसे साक्षात् किसी देवी के सामने खड़ी हूं... और कहां यह दुख और उदासी की परिपूर्ण प्रतिमा! हे ईश्वर, यह कैसी विडंबना है!

मेरी पहली मुलाकात श्री नरेन्द्र शर्मा जी से १९६०–६१ में हुई, जब बंबई आने के बाद मैंने अपना पहला घर लिया। यह अंकल जी तथा चरित्र अभिनेता श्री जयराज जी के घर के बिलकुल सामने पड़ता था। भेंट हुई, जान पहचान बढ़ी, आना–जाना शुरू हुआ। नज़दीकियां बढ़ीं और इन्होंने अपनेपन का रूप ले लिया और मेरी

स्व. माताजी ने अंकल जी को भाई साहब कहना आरंभ कर दिया। ये दो महान विभूति मेरे अंकल और आंटी हो गये तथा उनके बच्चे मेरे छोटे भाई-बहन के समान हो गये। तब से हर मसले पर उनकी राय महत्वपूर्ण स्थान रखने लगी। चाहे वह घर के बारे में या काम के बारे में, यानि कि जीवन के किसी भी अध्याय में उनकी सलाह मेरे लिए एक स्तंभ का रूप बन गई।

यह उन्हीं के आशीर्वाद का फल था कि मैं धीरे–धीरे फिल्मों में कदम जमाने लगी। फिर मुझे वह घर बदलना पड़ा। उनका सामीप्य छूटने का दु:ख तो बहुत था, किन्तु अपने काम को, व्यस्तता को देखते हुए, लाचारी से उनसे दूर होना पड़ा। फिर भी आना–जाना रहता ही था। लेकिन बंबई के मशीनी जीवन के बीच इंसान को भी मशीन बनना पड़ता है, इसके फलस्वरूप मिलने–जुलने का कार्यक्रम भी लगभग नहीं–सा रह गया।

इसी बीच जीवन में न जाने कितने बदलाव आये, कितनी दुखद और सुखद घड़ियां और दिन आये, बीत भी गये। किन्तु हमारे और अंकल जी के रिश्ते में कोई भी बदलाव नहीं आया। हम चाहे कितने दिन या महीने न मिलें, किन्तु वर्ष में एक दिन ऐसा आता था, जिस दिन मैं किसी तरह भी उनसे तथा पूज्य आंटी जी से मिले बिना नहीं रहती थी। वह होता था दीपावली का शुभ अवसर। इस शुभ अवसर पर मैं उन लोगों की चरण वंदना के लिए अवश्य जाती। उस समय वह मुझसे ऐसे मिलते, जिसे मैं शब्दों द्वारा यहां वर्णन करने में अपने-आपको असमर्थ पा रही हूं। ऐसा लगता कि पूरे वर्ष भर के स्नेह, प्यार और आशीर्वाद की बंधी हुई गठरी खोल कर वो मुझ पर उड़ेल देते हों। नहला देते थे अपनी प्यार भरी मुस्कान से और मैं कृत–कृत्य हो जाती, भावनाओं के वशीभूत होकर। कुछ देर तक तो वाणी भी मूक हो जाती, फिर संयत होकर न जाने कितनी ही बातें करते हम लोग कि उनके पास से उठने को मन ही नहीं करता। फिर बहुत देर बाद, न चाहते हुए भी, भारी मन लिए उनसे विदा लेती। वह मुझे विदा देते हुए सदा ही कहते, 'बीच–बीच में भी आती रहा करो'। मैं आने का वादा भी करती, मगर चाह कर भी अपना वादा पूरा न कर सकती। अंकल जी ऐसे क्षमा–सागर थे कि दूसरे वर्ष फिर वही चिर–परिचित मुस्कान, स्नेह से ओतप्रोत निश्छल भाव

लिये, अपने प्यार की वर्षा करके हमें अपने आशीर्वाद से सराबोर करके प्रफुल्लित कर देते।

ऐसे महान युग–पुरुष के लिए मैं तो क्या कोई भी, कितना लिखे; पर उनकी ऊंचाइयों तथा गहराइयों को शब्दों में ढ़ाल कर, उसका मापन नहीं किया जा सकता। कहते हैं, इंसान अच्छाइयों और बुराइयों का पुतला होता है। किन्तु अंकल जी में तो सिवाय अच्छाइयों के कुछ था ही नहीं। फिर अच्छाइयों से ही बनी इस मूर्ति की कोई क्या व्याख्या कर सकता है? ऐसे युग–पुरुष को तो केवल पूजा जा सकता है, नमन किया जा सकता है, शत् शत् प्रणाम किया जा सकता है। केवल शत् शत् प्रणाम !!!

निश्छल - सरल व्यक्तित्व

● प्यारेलाल

श्रद्धेय पंडित नरेन्द्र शर्माजी मूल रूप से एक महान् साहित्यकार थे। हर विषय पर उनका अध्ययन बेहद गहन था। कुछ कहने का अपना एक अलग और अनोखा रंग होता था। उनका व्यक्तित्व भी बेहद सरल और निश्छल था। यह हमारा सौभाग्य है कि राजकपूर साहब की 'सत्यम्-शिवम्-सुंदरम्'' में हमें उनके साथ काम करने का अवसर मिला। इस फिल्म का शीर्षक (टाईटल) गीत और ''यशोमति मैया'' वाला गीत मुझे बेहद पसन्द था। इसके अलावा 'ज्योति–कलश छलके' भी उनकी एक अति सुंदर रचना थी,जो कभी भुलाई नहीं जा सकती। भारतीय संगीत के वे जानकार थे। उन्हें मेरा नमन।

●

"हिन्दी प्रेमी पंडित जी"

● पं. रविशंकर

स्वर्गीय श्री नरेन्द्र शर्मा जी हिन्दी के एक बड़े विद्वान पुरुष थे। उनकी कवितायें बहुत ही सरल, कर्णप्रिय व दिल को छू लेने वाली हैं।

मैंने और शर्मा जी ने कई बार All India Radio और फिल्मों में एक साथ काम किया था और मुझे उनके साथ काम करके बहुत अच्छा लगा था। उनकी बातों में बहुत मिठास और कविताओं में एक अनोखापन व अनोखा रस था। वो एक ऊँचे स्तर के हिन्दी के कवि थे, मैं तो यहां तक कहूंगा कि इस उर्दू के समय में जबकि फिल्मों, रेडियो और दूरदर्शन पर उर्दू का काफ़ी इस्तेमाल होता है, ये श्री नरेन्द्र जी की ही हिम्मत व कोशिश का नतीजा है कि लोगों में हिन्दी बोलने व समझने का शौक हुआ। हिन्दी को जिंदा रखने में श्री नरेन्द्र शर्मा का बहुत बड़ा हाथ रहा है। ऊँचे स्तर के कवि होने के साथ-साथ पंडित नरेन्द्र शर्मा जी एक बहुत ही सीधे-सच्चे व सज्जन पुरुष भी थे।

हिन्दी मंच, हिन्दी प्रेमी व उनके प्रशंसक उनकी कमी हमेशा महसूस करते रहेंगे।

●

एक अनूठा व्यक्तित्व

● डॉ. प्रेम कपूर

"इनसे मिलिये – ये हैं हिंदी के मशहूर कवि और लेखक, 'पंडित नरेंद्र शर्मा' और ये हैं हमारे 'शाहजी'- डॉक्टर कपूर –डाक्टरी के साथ संगीत और साहित्य में भी रुचि रखते हैं । –" स्व. साहिर लुधियानवी ने अपने खास अंदाज में पंडित जी से मेरा परिचय करवाते हुए कहा । उन्होंने शायद और भी बहुत कुछ कहा होगा परंतु मेरा ध्यान धोती-कुर्ता पहने हुए छोटे से कद के उस व्यक्ति ने बरबस अपनी ओर खींच लिया । मैं कुछ क्षण उनकी ओर देखता ही रह गया ।

"राजेन्द्र जी से पता चला कि आप आयुर्वेद शास्त्र में भी रुचि रखते हैं ।-" पंडित जी ने प्रश्न सूचक तरीके से कहा ।

"जी हाँ" मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।
"चलिये खूब निभेगी" नरेन्द्र जी बोले । मैं तब तक उनके उन्नत ललाट और तीक्ष्ण दृष्टि से प्रभावित हो चुका था ।

यह थी पंडित नरेन्द्र शर्मा से मेरी पहली मुलाकात । स्व. राजेद्र (श्रीमती शर्मा के भाई) की बीमारी के विषय में या किन्हीं अन्य अवसरों पर प्राय: पंडितजी से मुलाकात हो जाया करती थी । उनका सादा परंतु ओजपूर्ण व्यक्तित्व भारतीय परंपराओं के विषय में अपने विचार व्यक्त करने की अनूठी शैली और क्षमता, भाषा पर अधिकार और स्मरणशक्ति द्वारा उदाहरणों का उचित प्रयोग कम लोगों मे ही पाया जाता है ।

नरेन्द्र जी को आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की विशेष जानकारी थी । इसके साथ उनका इस पद्धति पर अखंड विश्वास और श्रद्धा से कभी–कभी ऐसा महसूस होता था कि वे लेखक या कवि होने के बजाय चिकित्सक होते, तो भी जीवन में उतने ही सफल होते ! वैसे भी बंगाल में वैद्य को कविराज ही कहते हैं ।

कई अवसरों पर मेरा पंडित जी से मतभेद भी हो जाता था । उनका कहना था कि भारतीयों के लिये वैद्यक पद्धति ही सर्वोत्तम चिकित्सा पद्धति है । सिर्फ यही नहीं, बल्कि संपूर्ण चिकित्सा विज्ञान में आयुर्वेदिक चिकित्सा सबसे अधिक सफल और सरल तथा निरापद

है । यदि उनको यह कहा जाता कि कई रोगों का इलाज आयुर्वेद में नही है, तो मीठे शिकायत भरे लहजे में कहते कि "शास्त्र" में तो सब कुछ है, परंतु हमें उसका ज्ञान नहीं है । केवल हमारे न जानने का यह मतलब नही कि शास्त्र अधूरा है।" एक वाक्य जो वे हमेशा उपयोग में लाते थे-"डॉक्टर साहब अनंत भंडार है आयुर्वेद शास्त्र, जो हमें विरासत में मिला है । इसमें से ढूंढ़िये, आप जो चाहेंगे, मिलेगा ।"

उनका युवाकाल स्वातंत्र्य सैनिक के रूप में बीता, इसका पता मुझे श्री नरेशचंद्र चतुर्वेदी से मिला, जो उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव थे । उन्होनें ही बताया कि शुरू से ही नरेन्द्र जी की आस्था, मान्यताएँ और अटूट विश्वास भारतीय परंपराओं में रहा ।

सबसे महत्वपूर्ण बात जिसे मैंने अनुभव किया, वह थी उनकी अभिव्यक्ति और युक्तिपूर्वक अपने विचारों से सहमत करा लेने की क्षमता - ऐसी क्षमता जो कम लोगों में पायी जाती है !

पंडित नरेन्द्र शर्मा के निधन से जहाँ हिन्दी जगत ने सक्षम् लेखक और साहित्यकार खोया, वहाँ हमने खोया एक अनूठा व्यक्तित्व !

नरेंद्र शर्मा : एक उदार व्यक्तित्व

● रामानंद सागर

पंडित नरेन्द्र शर्मा अपनी अवस्था, अपने ज्ञान, अपनी विद्वत्ता और अपनी निर्मलता के कारण मुझ जैसे अपने कई साथियों के लिए पूज्य थे। वे हम लोगों को समकालीनों की भांति, अपने बराबर बिठा लेते थे- परन्तु वास्तव में यह उनकी उदारता ही थी, क्योंकि निश्चय ही वह हम सब में हर प्रकार अग्रणी थे।

बम्बई आने के पश्चात् कई वर्षों तक मुझे प्रति रविवार उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। हम छः-सात मित्रों की छोटी-सी बैठक रविवार सांझ को श्री अनिल विस्वास के घर होती थी, जिसमें प्रो. चन्द्रशेखर पांडेयजी नियमित रूप से हमें रामचरितमानस सुनाया करते थे। तत्पश्चात् सब लोग अपने-अपने मतानुसार विचार प्रकट करते थे। मुझे याद है कि उस गोष्ठी में स्वर्गीय महेश कौल और नरेन्द्र शर्माजी अपने परिपक्व दृष्टिकोण से हमारे सामने उस काव्य के कैसे-कैसे गूढ़ अर्थ व्यक्त करते थे कि उस पर स्वयं एक महान कवि होने से शर्माजी की साहित्यिक प्रतिभा की उज्ज्वल किरणों से उस बैठक का वातावरण जैसे दिव्य छटा से आलोकित हो उठता था।

मैं "रामायण" को जितना थोड़ा-बहुत समझ पाया, वह अंतरंग (गोष्ठी) में बैठ-बैठ पंडित नरेन्द्र जी जैसे दिग्गज विद्वानों की बातें सुन-सुन कर ही समझ पाया हूं।

"रामायण" बनाने से पहले हमने जो एक सलाहकार समिति बनाई थी, उसकी सदस्यता उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। वे स्वयं महाभारत के लेखनकार्य में इतने व्यस्त थे, परंतु जब भी मैं उनके पास किसी शंका- निवारण के लिए अथवा मार्ग-दर्शन के लिए गया, तो उन्होंने तत्काल सारे काम छोड़ कर मेरी समस्या सुलझाने का प्रयास किया।

हिन्दी कविता, हिन्दी साहित्य तो उनका ऋणी रहेगा ही, परन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं उनके स्नेह, उनकी सहायता और उनके मार्ग-दर्शन के लिए उनका सदैव ऋणी रहूंगा।

मैं दूर था, उनके अंतिम दर्शन न कर पाया, परन्तु मैं जहां

था, वहीं से उन्हें अपने अंत:करण से प्रणाम किया और मुझे विश्वास है कि उन्होंने अपनी उसी चिर-परिचित मृदुमुस्कान के साथ उसे अवश्य स्वीकार कर लिया होगा ।

नरेंद्र जी

● रिफ़अत सरोश

एक जमाने तक नाच–गानों के प्रोग्रामों में हिस्सा लेना तो दरकिनार, मेरे नज़दीक ऐसे प्रोग्राम देखना भी एक तरह का ऐब था। लेकिन १९४५ ई. में बम्बई पहुंच कर मेरी अखलाकियात (नैतिकता) की रस्सी कुछ ढीली हो गई थी और मैं इस तरह के प्रोग्रामों में दिलचस्पी लेने लगा था, मगर ऐसे प्रोग्राम कि जिनमें अश्लीलता न हो। उन ही दिनों की बात है कि बंबई के कावसजी जहांगीर हाल में कलचरल स्क्वाड का एक प्रोग्राम हुआ, जिसकी सूचना मुझे अपने एक दोस्त प्रेमधवन से मिली जो शायर तो हैं ही, डांसर भी है। वे उन दिनों कलचरल स्क्वाड बम्बई के सरगर्म मेम्बर थे। हॉल खचाखच भरा हुआ था। परदे के पीछे से एनाउन्सर की आवाज और वाक्यों में साहित्यिक पुट तथा बातसे पैदा करने का सलीका था बोलने वाले को। मानो प्रोग्राम की बागडोर उस आवाज से बंधी थी। मालूम हुआ यह आवाज हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पंडित नरेन्द्र शर्मा की है और मैं इस आवाज की गंभीरता और प्रवाह से बहुत प्रभावित हुआ..... मगर ठहरिये, आपको यह तो बता दूं कि कलचरल स्क्वाड था क्या ? यह "बायें बाजू" का कलचरल विंग था। यानी नृत्य, संगीत और नाटकों के द्वारा साम्राजियत पर चोट की जाती थी। कुचली हुई जनता को सिर उठाने, अपना हक मनवाने और आजादी की जंग में आगे बढ़ने के लिए तैयार किया जाता था।

ऐसे ही कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे नरेन्द्र जी अपने विशेष रोचक अन्दाज में। एक बात और कह दूं कि जब कलचरल स्क्वाड पर उस समय की सरकार ने पाबंदी ला दी थी तो उसकी जगह इन्डियन पीपल्स थियेटर (इप्टा) ने ले ली थी। इप्टा की सरगर्मियों और उसकी कामयाबियों से थियेटर की दुनिया खूब वाकिफ थी। बम्बई में इस नये पौधे को अपनी कला से सींचने वाले थे नरेन्द्र जी के कई साथी, जिनमें उल्लेखनीय हैं ख्वाजा अहमद अब्बास, बलराज सहानी, प्रेम धवन और उनके बाद शैलेन्द्र, हबीब तनवरी, मनी रबाड़ी और शौकत कैफी, इत्यादि। अवामी जिन्दगी से नरेन्द्र जी की कुर्बत देख कर मेरे दिल में उनकी इज्जत पहले ही दिन से पैदा हो गई थी। फिर कुछ दिन बाद जब मैं ऑल इंडिया रेडियो में मुलाजिम हुआ तो मालूम हुआ कि किसी मतभेद की वजह से हिन्दी के लेखक और कवि ऑल इंडिया रेडियो के कार्यक्रमों में भाग ही नहीं लेते। ले–देकर एक गोपाल सिंह नेपाली थे, जो

कभी–कभी कविता पाठ करने आ जाते थे। कोई और प्रसिद्ध साहित्यकार इधर का रुख न करता था। हां, डॉ. मोतीचन्द और रणछोड़ लाल ज्ञानी जरूर आते थे, जिनका सम्बन्ध प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम से था।

और फिर देश स्वतंत्र हुआ। भाषा–सम्बन्धी आकाशवाणी की नीति में परिवर्तन आया। अब हम रेडियो वाले, हिन्दी लेखकों और कवियों की खोज करने लगे। नीलकंठ तिवारी, रतन लाल जोशी, सरस्वती कुमार दीपक, सत्यकाम विद्यालंकार, वीरेन्द्र कुमार जैन, किशोरी रमन टंडन, डॉ. शशि शेखर नैथानी, सी.एल. प्रभात, के.सी. शर्मा भिक्खु, भीष्म साहनी- हिन्दी के अच्छे खासे लोग रेडियो के प्रोग्रामों में हिस्सा लेने लगे। उन्हीं दिनों हम लोगों ने पं. नरेन्द्र शर्मा को भी आमादा किया कि हमारे प्रोग्रामों में रुचि लें। वे फिल्मों में लिखते थे। एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया- ''कवि और कलाकार''। उसमें संगीत निर्देशक अनिल बिस्वास, एस.डी. बर्मन, नौशाद और शैलेश मुखर्जी ने गीतों और ग़ज़लों की धुनें बनाईं। शकील, साहिर और डॉक्टर सफ्दर 'आह' के अलावा नरेन्द्र जी भी इस प्रोग्राम के लिए राजी हो गये। नरेन्द्र जी के एक अनूठे गीत की धुन अनिल विस्वास ने बनाई थी, जिसे लता मंगेशकर ने गाया था।

''युग की संध्या कृषक वधू–सी,
किसका पंथ निहार रही।''

पहले यह गीत कवि ने स्वयं पढ़ा, फिर इसे गायिका ने गाया। उन दिनों आम चलते हुए गीतों का रिवाज हो गया था और ग़ज़ल के चमकते–दमकते लफ्जों को गीतों में पिरो कर अनगिनत फिल्मी गीत लिखे जा रहे थे। ऐसे माहौल में नरेन्द्र जी का यह गीत सभी को अच्छा लगा, जिसमें साहित्य के रंग के साथ भारत भूमि की सुगंध भी बसी हुई थी। और फिर नरेन्द्र जी हमारे हिन्दी विभाग के कार्यक्रमों में स्वेच्छा से आने लगे। एक बार नरेन्द्र जी ने एक रूपक लिखा- ''चांद मेरा साथी''। उन्होंने चांद के बारे में अपनी कई कवितायें, जो विभिन्न मूड की थीं, एक रूपक लड़ी में इस प्रकार पिरोई थीं कि मनुष्य की मनोस्थिति सामने आ जाती थी। वह सूत्र रूपक की जान था। मुझे रूपक रचने का यह विचित्र ढंग बहुत पसंद आया और आगे का प्रयोग किया। मैं बम्बई रेडियो

पर हिन्दी विभाग में स्टाफ आर्टिस्ट था और अब्दुल गनी फारूकी प्रोग्राम असिस्टेंट ! फारूकी साहब नरेन्द्र से किसी प्रोग्राम के लिए कहते, वे फौरन आमादा हो जाते। आते, और अपनी मुलायम मुस्कराहट और शान्त भाव से हम सब का मन मोह लेते।

समय ने एक और करवट बदली। उस समय के सूचना तथा प्रसारण मंत्री डॉ. बी.वी. केसकर फिल्मी गानों से आजिज थे। मगर पब्लिक गाने सुनना चाहते थे। केसकर साहब ने एक व्यापक कार्यक्रम बनाया कि आकाशवाणी के बड़े–बड़े केन्द्रों पर लाइट म्यूज़िक यूनिट (प्रसारण गीत विभाग) बनाये जायें, परन्तु उनमें फिल्मी गानों जैसा छिछोरापन और बाजारूपन न हो। बम्बई में इस भाग के प्रोड्यूसर नरेन्द्रजी नियुक्त किये गये। कल तक नरेन्द्र शर्मा हमारे अतिथि बन कर आया करते थे, अब वे जिम्मेदार और प्रभावशाली अफसर बन गये जिनकी डायरेक्ट पहुंच मंत्री महोदय तक थी। और हमने देखा कि बी.पी. भट्ट जैसे स्टेशन डायरेक्टर उनके आगे-पीछे घूमने लगे। परन्तु नरेन्द्र जी की मुस्कराहट में वही मुलायमियत और वही रेशमीपन था। वह सहज भाव से हम लोगों से बातें करना !

उनको एक अलग कमरा दे दिया गया था। प्रसार गीत विभाग भारतीय संगीत का एक अंग नहीं, बल्कि हमारे हिन्दी सैक्शन का एक हिस्सा था और नरेन्द्र जी की वजह से हम लोगों को सैक्शन चलाने में बड़ी आसानी थी। कहीं गाड़ी नहीं रुकती थी, चाहे आर्टिस्टों की फीस का मामला हो, या टेपों और स्टूडियो का। उन्होंने हिन्दी सैक्शन के अन्य कामों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। उन्हें प्रसार गीत से ही सरोकार था। आधे दिन के लिए दफ्तर आते थे। या तो सुबह से लंच तक, या लंच के बाद शाम तक। अपने ताल्लुकात की वजह से उन्होंने फिल्मी दुनिया के मशहूर संगीतकारों से प्रसार गीतों की धुनें बनाईं जैसे नैशाद, एस.डी. बर्मन, सी. राचन्द्र, राम गंगोली, अनिल बिस्वास, उस्ताद अली अकबर खां और कोई ऐसा फिल्मी गायक न था जिसने प्रसार गीत न गाये हों- लता मंगशेकर, आशा भोसले, गीता राय, सुमन कल्याणपुर, मुकेश, मन्नाडे, एच.डी. बातिश, जी.एम. दुर्रानी, मुहम्मद रफी, तलअत महमूद, सुधा मल्होत्रा- सब लोग हमारे बुलावे पर शौक से आते थे। यह नरेन्द्र जी के व्यक्तित्व का जादू था। एक सप्ताह में एक-दो गाने जरूर रिकार्ड हो जाते, जो तमाम केन्द्रों को भेजे

जाते। आज मैं अनुभव करता हूं कि नरेन्द्र जी का एक यही कितना बड़ा एहसान है आकाशवाणी पर कि उन्होंने उच्चकोटि के असंख्य गीत प्रसार विभाग द्वारा इस संस्था को दिये।

मैं हिन्दी विभाग में सब से पुराना आदमी था यानी १९५५ से उसी विभाग में था। प्रोग्राम एसिस्टेंट बदलते रहते थे। नरेन्द्रजी इस नुकते को समझते थे कि रिफ़अत सरोश ही बुनियादी काम करने वाला आदमी है, इसलिए वे मेरी हिम्मत बंधाते। फुरसत के वक्त मैं उनके पास जा बैठता और उनकी बातों से लाभ उठाता। मैंने उन्हें अपनी कुछ हिन्दी कविताएं सुनाईं तो बहुत खुश हुए। कुछ मशवरे दिये और बहुत सरल ढंग से उर्दू-हिन्दी के छंदों का फर्क समझाया कि हिन्दी में जैसे बोलते हैं, वैसे ही लिखते हैं। उर्दू में अलिफ दबाने की इजाजत है, हिन्दी में नहीं। इस अंतर को समझने के बाद मैंने छंदों में कई कवितायें लिखीं जो "धर्मयुग" और "नवनीत" में छपीं। एक प्रकार से नरेन्द्र जी ने मुझे हिन्दी शायरी का चसका लगा दिया। वे कहा करते थे हिन्दी के अच्छे लेखक उर्दू से वाकिफ हैं- जैसे भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर। खुद अपने बारे में उन्होंने बताया कि उनकी शिक्षा का प्रारंभ हिन्दी से नहीं, उर्दू से हुआ और एक मौलवी साहब ने उन्हें तख्ती पर 'अलिफ', 'बे' 'ते' लिखनी सिखाई।

आकाशवाणी को बदनामी के दलदल से निकालने और प्रोग्रामों को लोकप्रिय बनाने में नरेन्द्र जी का महत्वपूर्ण योगदान है। "प्रसार-गीत' तो उसकी एक मिसाल है। परन्तु जो अद्‌वितीय कार्य उन्होंने किया वह था, "विविध भारती" की रूपरेखा की तैयारी तथा प्रस्तुति। अपने मित्र तथा आकाशवाणी के महानिदेशक श्री जे.सी. माथुर के साथ मिलकर नरेन्द्र जी ने आल इंडिया वेरायटी प्रोग्राम का खाका बनाया जिसका अति सुन्दर नाम रक्खा- "विविध भारती"। आकाशवाणी का ऐसा इन्कालाबी कदम था, जिसने न सिर्फ उस की खोई हुई साख वापस दिलाई, बल्कि आकाशवाणी के श्रोताओं में नई रुचि पैदा की और उनमें हलके-फुलके प्रोग्रामों द्वारा राष्ट्रीयता और देश प्रेम का एहसास जगाया और आगे चलकर यह कार्यक्रम आकाशवाणी के लिए "लक्ष्मी का अवतार" साबित हुआ। इस तमाम आकाशवाणी के इतिहास में उनका नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा जायेगा।

मेरे फरिश्तों को भी पता न था कि नरेन्द्र जी जैसे विद्वान मेरे बारे में इतनी अच्छी राय रखते हैं कि जब-"विविध भारती" विभाग की स्थापना होने लगी तो उन्होंने अपने "असिस्टेंट प्रोड्यूसरों" के लिए जहां दिल्ली से बी.एस. भट्नागरजी, विनोद शर्मा, सत्येन्द्र शरत् और नागपुर से भृंग तुपकरी का चयन किया तो बम्बई से मुझे योग्य समझा और मेरा नाम हिन्दी प्रोड्यूसरों की सूची में रक्खा। इस प्रकार मेरी जिन्दगी में एक नया मोड़ लाने में नरेन्द्र जी का एहसान है। उन दिनों आकाशवाणी में 'असिस्टेंट प्रोड्यूसर' बनना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी।

"विविध भारती" कार्यक्रम एक नये प्रयोग के तौर पर शुरू किया गया था। रूपए की कमी थी। हमारे पास दूसरे केन्द्रों से प्रसारित कार्यक्रमों के टेप आते थे और उन्हीं प्रोग्रामों में से काट-छॉट कर ऐसे प्रोग्राम तैयार करना जो सुनने में पहले से बेहतर लगे। नरेन्द्रजी चीफ प्रोड्यूसर थे और हम लोग 'असिस्टेंट प्रोड्यूसर' मगर नरेन्द्र जी मुस्कुराते हुए कहा करते थे कि हम "रि-प्रोडयूसर' हैं।

जब "विविध भारती" के लिए नमूने के प्रोग्राम तैयार किये जाते थे, तो मैंने नरेन्द्र जी की "चांद मेरा साथी" वाली टेकनिक को अपनाकर गज़लों और गीतों का मिलाजुला प्रोग्राम "गजरा" बनाया और ग़जलों और गीतों को हलकी-फुलकी चटाखेदार हिन्दुस्तानी जबान की कम्पेयरिंग में पिरोया। यह पहला प्रोग्राम था जो श्री जे.सी. माथुर को सुनाया गया था और उन्हें पसंद आया। "यह आकाशवाणी का पंचरंगी प्रोग्राम है- विविध भारती, गजरा। गीत के रंग-बिरंगे फूलों से बनाया गया गजरा।"

बीच में एक बात याद आ गई। नरेन्द्र जी अच्छे खासे ज्योतिषी भी थे। "विविध भारती" प्रोग्राम पहली जुलाई को शुरू होने वाला था। फिर तारीख बदली। आखिर पंडित नरेन्द्र शर्मा ने अपनी ज्योतिष विद्या की रोशनी में तय किया कि यह प्रोग्राम ३ अक्तूबर १९५७ के शुभ दिन से शुरू होगा और प्रोग्राम का शुभारंभ हुआ तो "विविध भारती" का डंका हर तरफ बजने लगा।

नरेन्द्र जी अफ़्सरानेआला की परवाह नहीं करते थे। बल्कि यह

कहना ज्यादा सही होगा कि वे किसी को अफ्सरआला मानते ही न थे। उनका बस चलता तो वह "अफ्सर" और "मातेहत" की परम्परा ही मिटा देते। उनकी सारी हमदर्दियां हम लोगों के साथ होती थीं, जो प्रोग्राम बनाते थे। हम उन पर नाज करते। वे मुस्कुराकर हमारी बात सुनते और ऐसा बहुत कम होता कि वे हमारी किसी बात को टालते। इसका नतीजा यह हुआ कि उनके कहने के अनुसार हम लोगों ने एक वर्ष के लिए तय किया कि "मेरे हफ्ते में नहीं कोई भी रोजे तातील।" और हमने दिन रात काम किया। और जो काम महानिदेशक के लिखित आदेश भी हम से न करा सकते थे, उसके लिए हमें नरेन्द्र जी की स्नेह से भरी शीतल मुस्कान ने आमादा कर दिया। ऐसी मुहब्बत ! ऐसी हमदर्दी ! ऐसा स्नेह ! जैसा बड़े भाइयों और घर के बुजुर्गों से मिलता है।

अभी "विविध भारती" की तैयारियां चल रही थीं कि एक असिस्टेंट स्टेशन डायरेक्टर ने भद्दे हाकिमाने लहजे में मुझसे कुछ कहा। मैंने अपनी आदत के मुताबिक तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया। नौबत यहां तक पहुंची कि वे अफ्सर बोले कि मैंने आपको डिसमिस करने की सिफारिश दिल्ली भेज दी है। मैंने कहा- "वह आर्डर आने में देर भी लग सकती है। मैं खुद ही आपकी उलझन दूर किये देता हूं और अपना इस्तीफा पेश किये देता हूं।" मगर जब बात नरेन्द्र जी तक पहुंची तो वे मुस्कुराये और बोले "रिफ़अत जी ! आप इत्मीनान से अपना काम कीजिए। "विविध भारती" के किसी प्रोड्यूसर के बारे में कोई कागज मेरी नजर से गुजरे बगैर आगे नहीं जा सकता। वे तो ऐसे ही भभकियां दिया करते हैं।" और मेरा गुस्सा काफूर। फिर वही सुबह-शाम की गर्दिश और "विविध भारती !" और कुछ दिन बाद वे भभकी देने वाले अफ्सर खोटे सिक्के की तरह "विविध भारती" से वापस चले गये। पं. भवानी प्रसाद मिश्र बम्बई में हिन्दी के प्रोड्यूसर थे। एक और अस्टिेंट स्टेशन डायरेक्टर ने भवानी भाई से अकड़ कर बात की। भवानी भाई एक मस्त आदमी थे। उन्होंने उन साहब को आड़े हाथों लिया और इस घटना का जिक्र नरेन्द्र जी से भी कर दिया और चार दिन के अन्दर-अन्दर उन असिस्टेंट स्टेशन डायरेक्टर के हाथ में एक ऐसे केन्द्र पर तबादले का परवाना आ गया, जहां कोई अफ्सर स्वेच्छा से जाना नहीं चाहता। यह नरेन्द्र जी के व्यक्तित्व का ही

जादू था कि वरली के सिर्फ एक अधूरे स्टूडियो में हम चार प्रोड्यूसर 'शीर–व–शक्कर' होकर काम करते थे और इस तालमेल का परिणाम यह निकला कि 'विविध भारती' को अद्वितीय कामयाबी मिली और जब काम फैला तो एक वर्ष बाद युनिट को दिल्ली लाया गया। लगभग एक दर्जन स्टूडियो हमारे लिए बनाये गये और हर प्रकार की सुविधायें। फिर वह समय भी आया कि हम लोग अपना–अपना काम पूरा करते और घर चले जाते। मैं तो कभी एक-डेढ़ घंटे के लिए दफ्तर जाता था। मगर किस की मजाल थी कि उंगली उठा सके ! हम ही थे जो इस यूनिट की स्थापना के लिए बारह–बारह घंटे रोज महीनों तक काम कर चुके थे और अब भी जब किसी को छुट्टी जाना होता तो एक–एक महीने का काम एडवांस में कर जाता। हमारे इस खुलूस को सिर्फ नरेन्द्र जी जानते थे, इसलिए दिल्ली में ''अफ्सरे आला'' के आर्डर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सके। एक बार एक स्टेशन डायरेक्टर ने मेमो देने का सिलसिला शुरू किया। जरा–जरा सी बात पर रोज–तीसरे दिन मेमो। मैंने नरेन्द्र जी से कहा। मुस्कराये, बोले ''रिफ़अतजी पतझड़ का मौसम है। पत्ते झड़ने दीजिए।''

अक्तूबर १९६४ में मैं उर्दू मजलिस में आ गया। लेकिन नरेन्द्र जी से जो सम्बन्ध था, बराबर बना रहा। जब जी चाहा, उनके कमरे में चला गया और हफ्तों की थकान और जहन का गर्द–ओ–गुबार झाड़ कर लौटा। हमेशा उनके पास से कुछ ऐसा लेकर निकलता जो काफी देर तक दिल को सुकून और मन को शान्ति देता था।

रेडियो से रिटायर होकर नरेन्द्र जी बम्बई जा बसे थे, अपने घर ''खार'' में। वहां उन्होंने रेडियो के प्रोग्रामों में भाग लेना बहुत कम कर दिया था। मेरी उनसे आखिरी मुलाकात कई साल पहले एच.एम.वी. के दफ्तर में हुई थी। वहां वे अपने किसी रूपक की रिकार्डिंग के सिलसिले में आये थे। वही शीतल मुस्कान और मीठा लहजा।

नरेन्द्र जी की कलम का आखिरी कारनामा ''महाभारत'' सीरियल है, जिसकी शोहरत और लोकप्रियता ने टी.वी. के सारे पुराने रिकार्ड तोड़ दिये हैं। ''महाभारत'' की रूपरेखा और गीत नरेन्द्र जी की

अमूल्य देन हैं। उनके कलम का जादू हर हफ्ते लोगों के सिर पर चढ़ कर बोलता है। मगर वे इस बीच हमारे दरमियान से उठ गये।

"बड़े शौक से सुन रहा था जमाना।
हमीं सो गये दास्तां कहते-कहते।"

आज नरेन्द्र जी की याद एक ताजा हवा के झोंके की तरह आ रही है। नरेन्द्र के साथ काम करके एक सुकून रहता था। एक आत्मविश्वास का एहसास। उनसे अपनी गलतियां और खामियां बयान करके ऐसा लगता था कि एक बोझ था, जो हलका हो गया और उनके विश्वास का तो कहना ही क्या ? कई बार कोरे कागज़ पर हस्ताक्षर कर देते थे। समझते थे कि उनका कोई साथी (मैं मातहत नहीं कह रहा हूं) विश्वासघात नहीं करेगा। और हममें से किसी ने भी उनके इस यकीन को धक्का नहीं पहुंचाया। ऐसा नहीं है कि हम उनसे मतभेद नहीं करते थे। मगर ऐसे मौकों पर उनके चेहरे पर गुस्से या नागवारी के भाव नहीं आते थे। वही एक मुलायम मुस्कुराहट हर बात का जवाब होती थी। रेडियो की जबानी के बारे में उनके विचार कुछ अलग थे। उनका खयाल था कि "विविध भारती" में ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जो संस्कृत से निकट हो, और इसलिए हो कि भारत की सब भाषाओं की मां संस्कृत है। भाषा में जितनी ज्यादा चाश्नी संस्कृत की होगी, उतनी ही ज्यादा देश की विभिन्न भागों में समझी जायेगी। "विविध भारती" के वे नाम जो उन्होंने रखे हैं, इस बात की पुष्टि करते हैं। खुद "विविध भारती" फिर "पत्रावली", "वन्दनवार", "मन्जूषा", "स्वर संगम", "रत्नाकर" आदि। इस संदर्भ में जे.सिं. माथुर से उनका मतभेद था। माथुर साहब का कहना था कि "मैं विविध भारती की जबान "ओल्ड हिन्दुस्तानी" चाहता हूं।" ज्यादातर लोग माथुर साहब के मत के थे। नरेन्द्र जी ने अपनी राय तो नहीं बदली, मगर अफ्सरियत के फैसले को कुबूल किया। जिन दिनों श्री गोपाल रेड्डी सूचना तथा प्रसारण मंत्री थे, उन्होंने दिल्ली में भाषा समस्या पर सेमिनार कराया और चाहा कि आकाशवाणी की हिन्दी आसान की जाये। ठाकुर जयदेव सिंह ने, जो डिप्टी चीफ प्रोड्यूसर थे, मंत्री जी से सहमति नहीं की और कुछ दिन बाद ठाकुर साहब अपनी कुर्सी पर नजर न आये। मगर

फिर कुछ दिन बाद रेड्डी साहब भी मंत्री से गवर्नर हो गये।

नरेन्द्र जी की गणना छायावाद के कवियों में होती है। वे सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा के समकालीन थे। उनके कविता-संग्रह "प्रवासी के गीत", "शूल फूल", पलाशवन", "प्रभातफेरी", "हंसमाला", "कदली-वन" हिन्दी साहित्य के शाहकार हैं। उन्होंने हिन्दुस्तानी फिल्मों को खूबसूरत हिन्दी गीत दिये जैसे, "ज्योति कलश छलके"। मगर शायद उनको उनकी जिन्दगी के हिन्दी कविता के आलोचकों ने वह स्थान नहीं दिया जो उन्हें मिलना चाहिए था। लेकिन ऐसा होना हर उस व्यक्ति का भाग्य है, जो स्वाभिमान से जीना चाहता है, जो समझौते नहीं करता और अपने ढोल खुद नहीं पीटता जिसके आस-पास उसके खुशामदियों का गिरोह नहीं होता। मगर ऐसेलोगों को एक चीज अवश्य मिलती है- दिल का सुकून, मन की शान्ति, जो सम्मानपूर्वक और शान्त जिन्दगी नरेन्द्र जी को मिली, वह कम लोगों को मिलती है।

उन्हें ऐसी कोई लालसा नहीं थी कि उनके चारों तरफ शोहरत का जाल बुना जाये। उन्होंने आम आदमियों की भीड़ में अलग-अलग-सा दिखने के लिए अपनी धजा नहीं बिगाड़ी। बहुत से लोग लटें बढ़ा लेते हैं, बहुत से एक-आध चादर को अपने गले का हार बना लेते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो रंग-बिरंगे कपड़े पहन कर अलग-सा दिखाना चाहते हैं। और ऐसे तो बहुत हैं जो झूठा नशा अपने ऊपर तारी कर लेते हैं और कभी बातें करते-करते भूल जाते हैं, कभी-कभी बैठे-बैठे खो जाते हैं। नरेन्द्र जी ने यह सब कुछ नहीं किया। उनकी जिन्दगी एक संतुलित मनुष्य की जिन्दगी थी। एक उच्च कोटि के बुद्धिजीवी और कवि की जिन्दगी थी। उनका घर एक खुशहाल आदमी का घर था। उनकी कविता मनुष्य की सुन्दर आकांक्षाओं की कविता है, महान आदर्शों और ख्वाबों की कविता है। समय के साथ उनकी कविता के सब रंग गहरे होते जायेंगे और आने वाला कल आश्चर्य करेगा कि क्या बीसवीं शताब्दी के छल-कपट और नोच-खसोट के वातावरण में कोई कवि ऐसा भी था, जो निस्वार्थ था, सच्चा और ईमानदार था और वह कल नरेन्द्र जी का "कल" होगा।

मेरे साथी गीतकार

● सुधीर फड़के

एक अत्यन्त विनम्र एवं मृदु, सात्विक एवं शालीन और परमज्ञानी होते हुए भी अहंकार से अछूते व्यक्ति के संपर्क में आने के साथ-साथ उनके साथ काम करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ, इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं। विशुद्ध हिन्दी में मृदु एवं मधुर काव्य लिखा जा सकता है, ठोस एवं पांडित्यपूर्ण होते हुए भी सुलभ, रसपूर्ण एवं रम्यक गीत लिखे जा सकते हैं, इसका कई बार अनुभव इस महान व्यक्ति के साथ रह कर प्राप्त हुआ। वास्तव में कठिन से कठिन, या जटिल से जटिल विषय भी सरल शब्दों में कुशलतापूर्वक समझाया जा सकता है, इस सम्बन्ध में विश्वास पैदा करनेवाले और जिस व्यक्ति के स्नेह से स्मित होने पर आज भी आपको गौरव प्रतीत हो, उन विरले व्यक्तियों में पं. नरेन्द्र शर्मा को मैं असाधारण स्थान प्रदान करता हूं।

सन् १९४८ की बात है। उन दिनों प्रभात फिल्म कंपनी के "संत जनाबाई" नाम से, मराठी के साथ-साथ हिंदी में तैयार होनेवाले चित्रपट के संगीत का मैं दिग्दर्शक था। मराठी भाषा के महान् कवि स्व. ग.दि. माडगुलकर मराठी में गीत लिख रहे थे और पं. नरेन्द्र शर्मा हिन्दी गीतों की रचना कर रहे थे। इसी बहाने उनसे पहली बार भेंट हुई। इसके पहले मैंने उनका नाम सुना अवश्य था, क्योंकि इन्हीं दो भाषाओं से निकले हुए राजकमल के "रामजोशी" में कवियों की यही जोड़ी नियुक्त रही। एक सफेद धोती, रेशमी झब्बा और जाकिट पहनने के साथ चश्मा लगाने वाला, मझोले कद का और ऊपर से सीधा-सादा लेकिन मेधावी प्रतीत होनेवाला यह आदमी हिन्दी गीत लिखने जा रहा था। माडगुलकर की अलौकिक प्रतिभा से तो मैं भलीभांति परिचित था, क्योंकि हम दोनों मिलकर कई चित्रपटों के लिए कार्य कर चुके थे।

कोई अचरज नहीं कि माडगुलकर के साथ गीतों का सृजन करनेवाले इस व्यक्ति के लिए मेरे मन में बड़ा कुतूहल रहा हो। माडगुलकर और नरेन्द्र के गीतों में अनुवाद का कोई प्रश्न ही नहीं था; दोनों के गीतों को स्वतंत्र रूप से रागबद्ध करना मेरा काम था। तय हुआ था कि सुबह पौने सात बजे प्रभात की कार हम तीनों को

लेकर स्टुडिओ में पहुंचाए। वहां मेरे कमरे में टेबल और कुर्सियां हटाकर चद्दरों, गद्दियों एवं तकियों का भी प्रबन्ध किया गया था। वादक तो पहले ही तैयार रहते थे। तरोताजा फूल रखे जाते थे और अगरबत्ती भी जलाई जाती। मतलब, माहौल को पवित्र एवं प्रसन्न रखने में कोई कसर नहीं थी। नामदेव-जनाबाई के बचपन से सम्बद्ध गीतों की संख्या हर भाषा में आठ तय हुई थी। सुबह ७ से १०.३० तक आठ दिनों में कुल मिलाकर सोलह गीत हमें लिखने थे और उन्हें स्वर प्रदान करना था। माडगुलकर बड़ी शीघ्रता से गीत लिख सकते थे इसे तो मैं जानता था, लेकिन नरेन्द्र शर्मा के विषय में मैं निरा अबोध था। हां, मानकर चला था कि माडगुलकर के साथ गीतों की रचना के लिए चुने जाने के कारण नरेन्द्र शर्मा भी उन्हीं की टक्कर के कवि होंगे।

पहले दिन शुभारम्भ हुआ, माडगुलकर लिखित भूपाली याने प्रभाती से। 'प्रभात समयो पातला, आता जाग बा विठ्ठला।'' यह अनूठा प्रभात गीत था, जो संत जनाबाई की परम्परा के साथ उनके काल के लिए भी बड़ा समुचित रहा। मैंने उसे तुरन्त स्वर-बद्ध किया। तब तक नरेन्द्रजी हिन्दी प्रभात-गीत लिखकर तैयार थे, उनका गीत मैंनें पढ़ा और सच मानिए मैं फूला न समाया। मराठी के चमत्कार के साथ-साथ मेरे सामने हिन्दी का उसी कोटि का चमत्कार मौजूद था। असल में विठ्ठल परमात्मा का वह रूप है जो महाराष्ट्र के हिन्दी भाषियों में प्रचलित नहीं है। इसे भलीभांति समझकर नरेन्द्रजी ने लिखा था, "प्रभात वंदना करे, जागो हे हरे, हे हरे, हे हरे" "ऊषा का दीप बाल सजाती गगन थाल।" "आरती उतारे जगत जागो सांवरें-जागो सांवरे हे हरे।" उनके मुंह से यह "प्रभाती" या "जागरण-गीत" सुनते-सुनते मेरे मन में तर्ज तैयार हो रही थी।

चलो, आरम्भ तो बहुत ही अच्छा हुआ। आठ दिनों में आठ मराठी एवं हिन्दी गीत तैयार हुए। गीत एवं काव्य के भेद-अभेद को लेकर मराठी में एक बार बड़ा विवाद छिड़ गया था, मेरी राय में वह आज भी कुछ तंत्रों में विद्यमान है। हां हिन्दी के विषय में मैं अभी तक बेखबर हूं। मेरे मत में क्या माडगुलकर क्या नरेन्द्र शर्मा दोनों महाकवि हैं। यह कोई नियम नहीं कि महाकवि प्रबंध काव्य या प्रदीर्घ काव्य का सृजन करे और बाद में "महाकवि"

के पदपर आरूढ़ हो।

"संत जनाबाई" चित्रपट की हर आवृत्ति में २५-२६ छोटे-बड़े गीत रहे। दोनों कवियों की प्रतिभा में कुछ इस तरह बहार आयी कि ५०-५२ गीत कब स्वरबद्ध हो चुके इसका ठीक पता ही न चला।

नरेन्द्र जी का प्रत्येक गीत उत्कृष्ट कोटि का काव्य रहा। चक्की में अनाज पीसते हुए जनाबाई बाल नामदेव से "ओवी" कहती है इस ओवी की नरेन्द्र रचित् पंक्तियां देखिए--

गोपी गोप नंदलाला, गूंथे सब बनमाला।
पूछे हरि कहां गए, मेरे सखा नामदेव।
मौन हुई बांसुरिया, मथुरा गए सांवरिया।
ग्वाल बाल बावरिया, आंसू पोछे नामदेव।

सहज-सुन्दर एवं अर्थपूर्ण रचना का कितना मनोहर आविष्कार है! इसी चित्रपट में एक बार सन्त ज्ञानेश्वर स्वरचित गीत गाते हुए देखे जाते हैं। मराठी संत साहित्य की यह एक अमर रचना है। इसका अनुवाद करने के बजाय पंडित नरेन्द्र ने उसी आशय को लेकर स्वतंत्र गीत ही लिख डाला। संत ज्ञानेश्वर की पंक्तियां हैं-

"स्वप्नीचिये धनेभरानिया लाहे, भला वेव्हार करू पाहती।
मृद्दलुची नाहीं तेथे कैंचे काळांतर धरणे अधरणे घेतासी।"

अब पंडितजी की रचना को देखिए :

"सपने में संपदा जो पाई...
मोह कहे मेरी मेरी, ज्ञान कहे तेरी ना कमाई
संपदा जो पाई, तेरी ना कमाई,
तू है मेरी कहे सदा, धारा से किनारा,
तोड़ नाता छोड़ तीर, बहे जलधारा,
पल में जो आई लहर, छिन में गंवाई... १
दाता तो विधाता है, अहंकार अपना,
लेन देन है असार, सांच नहीं सपना,
सांचा एक हरि नाम, हरि बोलो भाई,
संपदा जो पाई हरि बोलो भाई,
सपने में संपदा जो पाई।"

यह रचना तो निस्सन्देह संत कबीर, सूरदास, तुलसी जैसे वरीयता प्राप्त संतों की रचना से नाता जोड़नेवाली है, इसे कैसे नकारा जाएगा ? एक शाश्वत् एवं सत्य विचार को इस तरह सर्वजन सुलभ भाषा में आसानी से समझ में आनेवाले दृष्टान्तों के सहारे स्पष्ट करनेवाला कवि सचमुच महापंडित है, परमज्ञानी है।

"संत जनाबाई" के गीत मेरी जीवन-सहचरी ललिता (उस समय कु. ललिता देऊळकर), मुहम्मद रफी, लता, मन्नाडे जैसे पार्श्वगायकों ने गाए, सिर्फ गाए ही नहीं, उन्हें गाते-गाते वे सभी तन्मय हो उठे। कई गीत पढ़ते समय मुहम्मद रफी की आंखों में आंसू आए। "सपने में संपदा जो पाई" इस गीत को मैंने स्वयं गाया है, उस समय का मेरा अनुभव बड़ा उल्लेख योग्य है। वैसे हर गीत को गाते समय मैं गीत के अर्थ के साथ-साथ प्रसंग से घुल-मिल जाने की चेष्टा करता रहता हूं, लेकिन इस गीत को गाते वख्त जो तन्मयता प्रतीत हुई उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। यही पंडित नरेन्द्र की रचना की अनूठी शक्ति रही।

प्रस्तुत चित्रपट की मराठी आवृत्ति में संत नामदेव की एक रचना "गौलन" है। उस प्रसंग के लिए हिन्दी में पंडित नरेन्द्र शर्मा द्वारा प्रमाणित अति रोचक एवं शब्द-मधुर रचना को देखिए :-

"भक्ति की गागरी, सिरधर नागरी,
विट्ठल के प्रीत गीत गाती चली।"

स्पष्ट है इन पंक्तियों की अपनी लय है, अपना ताल है, शब्दों की अनूठी मधुरता है। साफ है कि इस गीत में हंसते-हंसते मूल प्रसंग को मन की आंखों के सामने खड़ा करने का कौशल है, "भक्ति की गागरी" को सिरपर रखकर प्रीत का गीत गाते चलनेवाली "नागरी" को मानों हम देख रहे हैं।"

संत जनाबाई चित्रपट के बाद करीब ८-१० चित्रपटों में मैं पंडित नरेन्द्र शर्मा के साथ रहा। सन् १९५१ में "मालती-माधव" नाम का चित्रपट बना था जिसमें सभी गीतों का प्रणयन पं. नरेन्द्रजी ने किया था। इन गीतों में से एक उस समय बड़ा ही लोकप्रिय बना जिसके बोल रहे- "बांध प्रीति के डोर, मन लेके चितचोर, दूर जाना ना।" आज भी इस गीत की हूक कई रसिकों के हृदयों में उठती रहती है।

लगभग सन् १९५४ में मैंने 'रत्नघर'' नाम के हिन्दी चित्रपट का निर्माण किया था, जिसके सभी गीत पं. नरेन्द्र की लेखनी से निकले हैं। इसमें से एक गीत में नायिका अपने अरमानों के चकनाचूर होने से जनित व्यथा को साकार करती हुई कहती है :-

''ऐसे हैं सुख सपन हमारे
बन बनकर मिट जाते जैसे,
बालू के घर नदी किनारे ॥
लहरें आतीं बह-बह जातीं,
रेखाएं बस रह-रह जातीं,
जातीं लहरें कह-कह जातीं,
जाते पल को कौन पुकारे।
ऐसे हैं सुख सपन हमारे।
ऐसी है इन सपनों की माया,
जल पर जैसे चांद की छाया,
चांद किसी के हाथ न आया,
चाहे जितना हाथ पसारे।
ऐसे हैं सुख सपन हमारे।
मन भर आया नैना छलके,
गालों पर दो आंसू ढलके,
याद किये क्यों सपने कल के,
बीते को तू क्यों न बिसारे।
ऐसे हैं सुख सपन हमारे।''

गीत से भली भांति स्पष्ट है कि विशुद्ध हिन्दी में मन को मसोसनेवाली, उसे गूंथनेवाली भावना को सीधे सरल शब्दों में अभिव्यक्त करने की क्षमता अवश्य है, हां, ''योजकस्तत्र दुर्लभ:'' जरूर चाहिए।

इसी तरह का और एक गीत सन् १९५६ में निर्मित ''सजनी'' में आया है। दूसरे ही दिन सुबह कृष्ण मथुरा जानेवाले हैं, इसे जानकर राधा किस तरह व्याकुल हो उठी, इसे उत्कटता के साथ अभिव्यक्त करने में यह गीत अपनी मिसाल आप है। इसमें शब्दों के साथ कह पाना घुलमिल कर एक अनोखा समा बांध रही है।

"जा रे चंद्र जा रे चंद्र और कहीं जा रे,
गोकुल से कृष्ण चंद्र जाएंगे सकारे ॥
वृंदावन सूना है सूना मन मेरा,
विधना कुछ ऐसी कर कल न हो सवेरा,
झरते नयन भरते नयन डूब रहे तारे,
गोकुल से कृष्ण चंद्र जाएंगे सकारे ... १
नयन नीर मन में पीर इतनी-सी कहानी,
है ये प्रीत रीत सखी पहले क्यों न जानी,
कल की सुन कल न परे विकल मन पुकारे,
गोकुल से कृष्ण चंद्र जाएंगे सकारे ... २
प्राण हरे कान परे मुरलीधुन आली,
मोह न मन नाम सखी मोहन बनमाली,
कैसे रहे प्राण रहे जब न प्राण प्यारे,
गोकुल से कृष्ण चंद्र जाएंगे सकारे ... ३

जानता हूं कि मैं अतिप्रिय गीतों को ही प्रस्तुत कर रहा हूं, "भाभी की चूड़ियां" के उनके सभी गीत लोकप्रिय हुए। "ज्योति कलश छलके" तो एक जगमगाता रत्न है। काल के बंधन से परे पहुंचनेवाले नरेन्द्र के गीतों में उसे असाधारण स्थान प्राप्त है। मराठी भाषा के एक जाने-पहचाने कवि हैं, स्व. भा.रा. तांबे। इनके एक सुविरचित एवं अविस्मरणीय गीत को पंडित नरेन्द्र ने हिन्दी में अनुवादित किया। भारत के सभी आकाशवाणी केन्द्रों से तथा विदेश की कई महफिलों में मैं इसे गा चुका हूं। मूल गीत की पंक्तियां हैं :-

मधु मागशि माझ्या सख्या परी।
मधु पिळण्या परि रे बळ न करी।
मधु घटचि रिकामे पडति घरी ॥
मधु पिळण्या परि रे बळ न करी।
इसका पंडितजी कृत हिन्दी रूप देखिये।
मधु मांग न मेरे मधुर गीत।
मधु के दिन मेरे गये बीत ॥

यह अनुवाद नहीं, पंडितजी की स्वयं सिद्ध अलौकिक प्रतिभा का साक्षात्कार है। पचास या हजार वर्षों के बाद दोनों कविताओं

को देखकर प्रश्न जरूर पैदा होगा-- "कौन कविता मूल है और कौन अनुवाद ?"

पंडित नरेन्द्र शर्मा सही अर्थों में दशेभक्त थे। भारतीय एवं हिन्दू संस्कृति के सही दर्शन से पावन हो उठे थे। वे जानते थे कि भाषा किसी देश की संस्कृति का प्रमुख अंग है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि "विविध भारती" और "आकाशवाणी" के शुभारंभ के अवसर पर पं. नरेन्द्र शर्मा प्रमुख पद पर आसीन थे। विविध भारती के पूरे दिन तक चलनेवाले विविध कार्यक्रमों को शुद्ध हिन्दी में जो रोचक एवं चरितार्थ शीर्षक दिये गये, जो गौरवपूर्ण संज्ञाएं प्राप्त हुईं, उनके मूल में पं. नरेन्द्र शर्मा की जागृत देशनिष्ठा है। स्वातंत्र्यवीर सावरकर का सम्यक परिचय कराने के उद्देश्य से "सावरकर दर्शन प्रतिष्ठान" नाम के ग्रंथ के वे प्रधान संपादक थे। इस माध्यम से मुझे उनके अधिक निकट पहुंचने का सुअवसर मिला और मैं उनके प्रखर हिन्दुत्व से भली-भांति परिचित हुआ।

पंडित नरेन्द्रजी के विषय में लिखना ग्रंथों की सीमा से परे है। उनकी याद आते ही मैं गद्गद् हो उठता हूं। "दूरदर्शन" पर मैंने "आरोही" नाम से एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था, जिसका सूत्र-संचालन पं. नरेन्द्रजी ने किया था। उनके दर्शन तथा उनकी वाणी अपने व्हीडीओ कैसेट में मेरे पास सदैव सुरक्षित है जो मेरे लिए "अनमोल धरोहर" है। उसके बलपर मैं अपने को बड़भागी मानता हूं।

नरेंद्र शर्मा

●श्रीनिवास जोशी

सुकवि पं. नरेन्द्र शर्मा के आकस्मिक निधन से मन को बड़ा आघात पहुंचा। बरसों तक मुझे उनके निकट सहवास में रहने का सौभाग्य मिला था। मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि इतनी जल्दी हमारे बीच से चले जाएँगे। मैं उन्हें अपना अग्रज मानता था। वे भी मुझे अपने छोटे भाई की तरह प्यार करते थे। मैं उनके परिवार से जुड़ा हुआ था। नरेन्द्रजी से होनेवाली हर मुलाकात में कोई न कोई नई बात सीखने को मिलती थी।पहली भेंट में ही मैं उनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था। वह दिन मुझे आज तक अच्छी तरह से याद है। सन् १९४८ का जनवरी महीना था और तारीख थी तीस। प्रभात स्टुडियो, पुणे (अब फिल्म इंस्टिट्युट) के अतिथि गृह में, हम लोग सुबह से नरेन्द्रजी तथा प्रसिद्ध संगीत निर्देशक सचिन देव बर्मन के बंबई से आने के प्रतीक्षा कर रहे थे। नरेन्द्रजी 'अहिल्या'' फिल्म के लिए गीत लिखनेवाले थे और बर्मन दादा उन गीतों को संगीतबद्ध करने वाले थे।

मैं नरेन्द्र के बारे में सोच रहा था। 'प्रवासी के गीत' के कवि कैसे होंगे ? कैसे वे अपनी कविता की सृष्टि करते होंगे ? 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे' और 'साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी'-जैसे एक से बढ़कर एक प्रेमगीत लिखनेवाले कवि कैसे होंगे ? वे आये। छोटे कदवाले, सीधे- सादे,मृदुभाषी विनम्र और प्रसन्न व्यक्तित्ववाले नरेन्द्रजी को मैं देखता ही रह गया। क्योंकि उस जमाने के कवियों से संबधित कल्पना से उनकी छवि बिल्कुल मेल नहीं खा रही थी। उसी समय मुझे लगा इनसे बहुत-कुछ सीखना है। साथ काम करना शुरू हुआ। मै ''अहिल्या'' फिल्म के संवाद लिख रहा था। परिचय बढ़ा। घनिष्ठता बढ़ी। मेरा उनके घर आना - जाना शुरू हुआ जो अब तक निरंतर बना है। 'अहिल्या' फिल्म के बाद प्रभात फिल्म कंपनी की 'संत जनाबाई'फिल्म बनी। उसमें संवाद मेरे और गीत नरेन्द्र शर्माजी के थे। नरेन्द्रजी की प्रेरणा और आशीर्वाद से मैंने 'मालती-माधव' नामक हिन्दी फिल्म का निर्माण किया। इस फिल्म के दो गीत आज तक लोकप्रिय हैं। कुमारी लता मंगेशकर द्वारा वे गीत गाये गये थे। 'मन सौंप दिया अनजाने में'' और ''बाँध प्रीति फूल डोर, मन लेके चितचोर, दूर जाना

ना !" ये वे दो गीत हैं।

'मालती-माधव' के बाद 'रत्नघर' 'सजनी' 'कृष्णदर्शन' 'भाभी की चूड़ियाँ' 'गोकुल का चोर' आदि बनीं। इन फिल्मों में पटकथा, संवाद मैं लिखता। नरेन्द्रजी गीत लिखते और प्रसिद्ध संगीत निर्देशक सुधीर फड़के उनकी धुन बनाते थे। 'ज्योति कलश छलके' 'जा रे चंद्र, चंद्र और कहीं जा रे' जैसे अनेक गीत अब तक लोकप्रिय बने हुए हैं। उनके गीत मर्मस्पर्शी होते थे। भाषा साहित्यिक होती थी। यह उनकी विशेषता थी।

वे हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित कवि थे । उनके घर पर देश के बड़े- बड़े साहित्यकारों का जमघट जमता था। बैठकें होती थीं। चर्चे होते। मुझे भी उनमें भाग लेने का सौभाग्य मिलता। 'प्रताप' कानपुर के यशस्वी स्व. पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', उपन्यासकार स्व. भगवतीचरण वर्मा,आदरणीय श्री. अमृतलालजी नागर, आदि से वहाँ भेंट होती थी।

उनकी मित्र-मंडली, एक 'रामायण मंडल' चलाती थी। सप्ताह में एक बार, रामायण मंडल में रामायण का नियमित पाठ होता था। साथ ही साहित्यिक चर्चा भी होती थी। श्रोताओं को अनेक विषयों पर मौलिक जानकारी मिलती थी। नरेन्द्र जी कवि और साहित्यकार तो थे ही, मगर वे ज्योतिष विषय के भी प्रकांड विद्वान थे। यही बात उनके आयुर्वेद की जानकारी के बारे में थी।

नरेन्द्रजी मिलनसार स्वाभाव के होने का कारण घर पर आनेजाने वालों का तांता लगा रहता था । नरेन्द्रजी और सौ. सुशीला बेन लोगों का स्वागत करते नहीं अघाते थे। बड़े- बड़े फिल्म कलाकार उनसे सलाह - मशविरा करने आते। तब फिल्म- संबंधी विविध विषयों पर चर्चा होती। श्री दिलीप कुमार, देव आनंद, उनके भाई चेतनजी तथा अनेक प्रसिद्ध कलाकारों, गायकों, गीतकारों,लेखकों, कवियों को मैं वहां देखता और प्रसन्न होता था। कुमारी लता मंगेशकर भी वहां आती थीं। शिवाजी पार्क का उनका घर वैसे छोटा था, मगर कभी ऐसा लगा नहीं,क्योंकि नरेन्द्र जी और सुशीलाबेन के द्वारा वहां स्वागत ही ऐसा होता था।

बाद में अपने खार वाले बड़े मकान में रहने चले गए। वहां

भी आने- जानेवालों का क्रम बढ़ता ही गया। उनकी कन्याएं चि. तेजल(वासवी) लावण्या, बांधवी और पुत्र परितोष अब बड़े हो गए थे। बच्चियों का विवाह संपन्न हो गया। इसी बीच नरेन्द्र जी ने नए- नए फिल्मों के गीत और कथाएं लिखीं। जब वे किसी विषय पर प्रवचन करते तो ऐसा लगता कि साक्षात सरस्वती उनके कंठ से बोलती हैं। मैं सदा उनसे सलाह- मशवरा करता। वे मुझे हर बात अच्छी तरह समझाते। नाती-पोते घर की शोभा बढ़ाने लगे।

वे सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता सेनानी थे। देवली जेल में रहते हुए लिखी उनकी कविताएं, कविता पुस्तक इस बात का साक्षी हैं। जेल का रिकार्ड भी उनके पास था। मगर उन्होंने कभी स्वतंत्रता सेनानियों को मिलनेवाली पेंशन के लिए प्रयत्न नहीं किया। वे मुझसे कहते मैंने पेंशन के लिए देश- सेवा नहीं की। मैंने उन्हें कभी नाराज होते हुए नहीं देखा। न ही उनमें कभी अहं भाव मुझे नजर आया। वे नम्रता की साक्षात मूर्ति थे। वाणी के इस वरद पुत्र की पवित्र स्मृति को मेरे कोटि- कोटि प्रणाम।

"कथावस्तु, परामर्श एवं गीत-" स्व. नरेन्द्र शर्मा

● कुसुम देशपांडे

हर इतवार को "महाभारत" के समय दूरदर्शन पर उपरोक्त अक्षर पढ़ने में आते हैं। हर वक्त लगता रहता है कि "पं. नरेन्द्र शर्मा" इस नाम के पीछे लगी उपाधि "स्व." मिटा देनी चाहिए। क्यों ? क्योंकि पं. नरेन्द्र शर्मा स्वर्गस्थ होते हुए भी वे इहलोक में ही तो हैं। "महाभारत" के रूप में तो हैं ही, इसके अलावा सैकड़ों के हृदयों में भी उनका निवास है। संतपुरुषों को भला मृत्यु कैसे छू सकती है ?

महाभारत ! पांच–छ: हजार वर्ष पूर्व घटी यह कहानी ! परन्तु देखा जाता है कि कितने ही व्यक्तियों के जीवन में भी "महाभारत" चलता ही रहता है। कौरव-पांडव युद्ध हर हृदय में चलता ही रहता है। क्या धृतराष्ट्र, क्या दुर्योधन, क्या युधिष्ठिर ! ये पात्र इतिहास में ही नहीं, वर्तमान में भी तो नजर आते हैं। कहा ही है– "Facts are stranger than fiction" ऐसे ही एक इतवार को सुप्रभात में "महाभारत" के समय "पं. नरेन्द्र शर्मा" का नाम परदे पर देखा और हठात् मनमें आया, कितने ही ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हें जीवन के "महाभारत" में भी नरेन्द्र जी ने परामर्श दिया होगा, मार्गदर्शन किया होगा ! भूतकाल के "महाभारत" में जिस लगन से उन्होंने परामर्श आदि का काम किया, उससे अधिक लगन से उन्होंने जीवित व्यक्तियों के जीवन के "वर्तमान महाभारत" में भी मार्गदर्शन ही नहीं किया होगा, बल्कि उनकी घर–गृहस्थी में शांति एवं स्थिरता लायी होगी।

"तुम्हें अच्छा लगता है तो अलग बात है। लेकिन एक बात कहूं ? सुंदर चीज सजायी नहीं जाती। सुंदर चीज स्वयं दिखती है, दिखानी नहीं पड़ती।" अपनी जीवन– संगिनी (श्रीमती सुशीला जी शर्मा) को कितनी सहजता से एक पाठ पढ़ाया उन्होंने ! और बोले, "कॉलेज कुमारियों की तरह बनायी गयी दो चोटियों की अपेक्षा तुम्हारा जूड़ा ही मुझे अच्छा लगता है।"... **"सुंदर चीज स्वयं दिखती है, दिखानी नहीं पड़ती।"** इस कथन में जो गहरा अर्थ भरा है, उससे नरेन्द्र जी की अभिरुचि का पता चलता है।

'जो सत्य है, वही शिव है और वही सुंदर भी'। यही उनके जीवन का निचोड़ है। भगवद्-स्मरण से भक्त की आंखों से सदा आंसू बहते हैं। रामभक्त की आंखों से सदा आंसू बहते हैं। नरेन्द्र जी रामभक्त थे। सुशीला जी बताती हैं, "मैंने कई बार इन्हें रात–रात भर रामायण पढ़ते देखा है। आंखों से आंसुओं की झड़ी बरसते भी देखी है।" और देखा भी गया है कि उनके जीवन से भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। जिस निष्ठा से वे जीये, जिन मूल्यों को उन्होंने संभाला, यह सारा गहरी भक्ति के बिना कैसे संभव होता ? वे सदा प्रसन्नचित्त रहते थे। उन्हें कभी उदास नहीं देखा। निराश होना यानि नास्तिक बनना। भक्त सदा आशावान, सदा आनंद में रहता है।

नरेन्द्र जी की विशेषता ही यह थी कि सामने वाले व्यक्ति के साथ एकचित्त हो जाते थे। जो भी उनके पास पहुंचा उसने यह महसूस नहीं किया कि किसी पराये व्यक्ति से वह बात कर रहा है। बल्कि नरेन्द्रजी में हर एक ने स्वजन या आप्त ही पाया। श्रीमती रमाबहन ने नरेन्द्र के साथ ही बातचीत बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत की है। ऐसी कितनी ही 'रमाबहनें' होंगी, जिनकी उलझनें, गुत्थियां नरेन्द्रजी ने अत्यन्त सहजता से, आसानी से सुलझा दी होंगी ! ऐसे काम में, सामने वाले को कठिनाइयों में से मार्ग खोजने में मदद करने के लिए खुद के पास कितना गहरा प्रेम तथा कितनी तटस्थता चाहिए ! विनोबा जी ने एक जगह कहा है– "थर्मामीटर दूसरे का बुखार अचूक नापता हैं, क्योंकि उसे खुद को बुखार नहीं होता"। वैसे ही जो स्थितप्रज्ञ है वह मानसिक तरंगों से मुक्त रहता है। इसीलिए दूसरों का ठीक मार्गदर्शन कर सकता है। ऐसे थे नरेन्द्रजी। संसार में रहकर भी मन उनका निर्लिप्त था।

संत पॉल ने कहा है, "दुनिया में आकर आपने खूब धन–दौलत कमाया, खूब दान–धर्म किया, अनेक तीर्थ यात्राएं कीं, अनेक धर्मग्रंथ–शास्त्र पढ़े, परन्तु यदि आपके पास "प्रेम" न हो तो आपने कुछ नहीं कमाया।" ऐसा प्रेम नरेन्द्र जी के हृदय में लबालब (भरपूर) भरा था और उस प्रेम–स्पर्श से अनेकों को राहत मिली है। यह भी एक प्रकार की सेवा ही है। दूसरों को उलझनों से उबारना, कठिनाइयों में मार्गदर्शन देना, यह कोई कम सेवा नहीं है। **"सबसे ऊंची प्रेम–सगाई"** यह अनुभवयुक्त संतवचन नरेन्द्र जी के जीवन में व्यक्त हुआ है।

विनोबा जी कहा करते थे "समाज का मार्गदर्शन करने के लिए आचार्यों की जरूरत है।" आचार्य यानी कौन ? जो स्वयं आचारवान है, शीलवान है, जो निष्पक्ष, निर्वैर, निर्भय है। नरेन्द्र जी से जब कभी मिलने का अवसर आया, उनसे बातचीत का मौका मिला (जो कि बहुत ही कम मिला) उस वक्त विनोबा जी के उपरोक्त कथन की बराबर याद आती थी। नरेन्द्र जी स्वयं इन गुणों से अलंकृत थे। दूरदर्शन या रेडियो के माध्यम से वे विख्यात जरूर हुए, परन्तु लोकेषणा उनके चित्त को कभी मलिन नहीं कर सकी।

आज की आपाधापी में एक स्थिर, शांत, सौम्य ज्योति के समान प्रकाशमान व्यक्तित्व था नरेन्द्र जी का। उन्होने अपना नाम चरितार्थ किया– वाकई वे नरेन्द्र थे।

उनकी पावन स्मृति को लाख–लाख प्रणाम।

यादें

●प्रेम कपूर

लंदन - पार्टी की गहमागहमी । कई एक भारतीय हैं । मित्र परिचय करा रहे हैं । "आप निर्माता है । 'कृष्ण' पर फिल्म बना रही हैं – अंग्रेजी और हिन्दी में ।"

कृष्ण मेरे आराध्य । फिल्म के संबंध में अधिक जानने का कुतूहल छिपा नहीं पाता । मेरे हर प्रश्न का उत्तर उनसे बहुत ही संक्षिप्त मिलता है । मेरे अधिक खोदने पूछने पर अपने स्थूलकाय शरीर को संभालते हुए बोलीं "आपके जो भी सवाल हैं, उनका उत्तर भारत आने पर आपको हमारे पंडित जी, शर्मा जी देंगे; इसकी जिम्मेदारी उन्हीं पर है और व्यवसाय का कंट्रोल मेरे हाथ में" कह कर पार्टी के माहौल में गुल हो जाती हैं ।

भारत - सन् ८३, जून की नौ तारीख । मैं पंडित जी से मिलने आया हूं । उनका घर उनका कमरा और पंडित जी खुद बिल्कुल ही नहीं बदले । एक लंबे अंतराल की कड़ी जुड़ गयी है । जब बंबई मैं पहली बार इस घर में उनके यहां आमंत्रित था, वह सन् ६८ की गर्मियों वाली सुबह थी । मैं इलाहाबाद पर फिल्म बना रहा था । पंत, फिराक गोरखपुरी, बच्चन जी की फिल्मिंग कर आया था । पंडित नरेन्द्र शर्मा जी के घर कैमरा, लाइट के साथ एक बार ही आना हुआ था । इसके पहले सन् ५४ में बंबई आया था और चेंबूर में आर. के. स्टूडियो जाने के लिए कुर्ला स्टेशन पर खड़ा था । तब वहां उस प्लेटफोर्म से इंजनवाली गाड़ी चेंबूर जाती थी, शायद एक घंटे के अंतराल से ।

चक्क धुली धोती, खादी का कुर्ता और जवाहर जाकेट । रोलगोल्ड फ्रेम का चश्मा । हम लोग साथ खड़े हैं । मित्र ने परिचय कराया । पंडित नरेन्द्र शर्मा । आगे मैंने मित्र को बोलने नहीं दिया । जरूरत ही नहीं थी । पर जब फिल्म "त्रिवेणी" बना रहा था उस समय मैं "धर्मयुग" में था तब मैंने फोन पर कहा था – 'फिल्म बनेगी जरूर । कब और कैसे यह नहीं कह सकता । जब तक नहीं बन जाती, सारा

कुछ गुप–चुप रखना है । यहां तक कि भारती जी को भी नहीं मालूम कि मैं फिल्म बना रहा हूं । आप मेरी बात को सीक्रेट रखें और फिल्म में इलाहाबाद पर आप की एक कविता चाहिये ।"

उस शूटिंग के बाद फिल्म का प्रदर्शन । उन्हें वह अच्छा लगा था, लेकिन जम कर कभी बैठना नहीं हुआ ।

"वे भी बात करना चाहते हैं ।" निर्माता ने बताया पंडित जी से आप जरूर मिलिये । मिलने गया, तो बातों का जो सैलाब उमड़ा उसे रिकार्ड करना जरूरी है । कहा, कल फिर आऊंगा और टेपरिकार्डर के साथ । गलती हो गयी टेपरिकार्ड नहीं लाया । जानें क्यों वे राज़ी हो गये । मैं अगले दिन टेप के साथ उनके पास बैठा हूं। लग रहा है हम कितना कम जानते हैं । मैं इस छोटी-सी अवधि में वह सारा जी लेना चाहता हूं, जो उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में जिया था और उसके बाद बंबई में रहते फिल्मों में गीत लिखते-लिखते ।

बात–विचार कृष्ण तक सीमित नहीं रही । मेरा खोजी मन जीवन के कूल–कुंजों का पता चाहता है । उस दिन के बाद जब भी समय मिलता है, मैं उनके पास आता हूं । पंडित जी के न रहने की बात रेडियो पर सुनी है । धक्क् से रह गया हूँ । देश उन जैसों की क़द्र नहीं कर सका । भारतीय मानस पर वे ऐनसाइक्लोपीडिया से कम नहीं । उस दिन की रेकार्डिंग के बाद मैंने उनसे लगातार कहा है कि उनका इतना गहन चिंतन, उस सबको किसी तरह धरोहर के रूप में सुरक्षित रखना चाहिए, यह सब कैसे हो । वे मुस्करा कर टाल जाते हैं। जानते हैं देश जिस लीक पर चल रहा है, उसमें अब वह सब नहीं होता ।

टेप खोजकर निकालता हूं । उसे सुनता हूं। पंडित जी की आज के जमाने पर टिप्पणी । राज, कवि और देश के संबंध में। मेरे प्रश्न करने पर कि, "इतनी गहराई से कैसे वे चिंतन के स्तर पर उतर सकें हैं?" – उन्होंने कहा-

"स्वतंत्रता आंदोलन । मैं कवि तो था ही, कवि होने के नाते आई हैड ए कमिटमेंट टू सोसायटी । बट आई वाज़ फाइंटिंग टू जनरेट इनफ एनर्जी टू सर्व सोसायटी । आई डिसकवर्ड माई ओन सालीट्यूॅड । क्यों कि व्हाट वन गिव्स टू सोसायटी, इट्स ओनली फ्रॉम वन्स सालीट्यूड। अगर हम सोयें नहीं अच्छी नींद से, तो हम जाग करके कुछ नहीं कर सकते । सोना जो है सालीट्यूड का एक रूप है । ये जो कहा है कि 'मैन इज ए सोशल एनीमल, तो ही इज ए चाइल्ड आफ सालीट्यूॅड टू । सोलीट्यूट हसबैंड और वाइफ़ भी चाहते हैं । एक डबल बेड में सोये हैं । वे सोते हैं तो अपनी-अपनी नींद सोते हैं और उस समय वे पूर्ण बीइंग हैं, जब वे सो रहे हैं। नींद में अज्ञान हैं, नहीं जानते पर हैं पूर्णबीइंग । सालीट्यूड में आप पूर्ण बीइंग है । वह सालीट्यूड मुझे मिला । इलाहाबाद से मैं यहाँ आ गया बंबई फिल्मों में । बांबे टाकीज में उनके साथ पूरा संबंध तो था नहीं। पोएट तों मैं था । विचार भी करता था । फ्रीडम-फाइटर भी रह चुका था। तो मुझे यहां पर एकांत मिला ।

जैसे बंद अंधेरे कमरे में आदमी बैठे-बैठे धीरे-धीरे वहाँ रखी हुई चीजों को देखने लगता है, मन के अंधेरे कोने में कहीं बैठ करके उसे मन के अंधेरे भवन में भी चीजें देखनी शुरू की । धीरे-धीरे समझ में आने लगा कि जो हमारे वेद में है, वही हमारे लोक-गीत में है।

हमारे यहां तीन चीजें कही गयी हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं रामजी को आदेश दे रहे हैं वशिष्ठ जी "कर्म करो ।" लोकमत यानि जो लोक का मत है, उसके अनुसार काम करो । साधु का मतलब – साधु सन्यासी, वैरागी नहीं । साधु का मतलब है शिष्टजन। समाज। जो संस्कृत अच्छे लोग हैं, हमारे समाज का नेतृत्व कर रहे हैं उन लोगों का जो मत है वैसा करो और नृप जो राजा की नीति वेदों से लेकर आज तक श्रुति और स्मृति में चली आ रही है उस नित्य और उन तीनों में नियम का निचोड़ है वैसा नियम माने वेदों का – जो हमारे हाई वेज है, कलचर के और जो बाइवेज है कालचक्र

के और जो रूट एक्सपोसेस हैं, सबको अपने भीतर संबोधित करके मत निश्चय करने का सौभाग्य तुम्हें मिला है।

हमारे यहां राजा – नेता की क्या कहें, किसी की भी कोई प्राइवेट लाइफ़ नहीं है । पब्लिक लाइफ़ है । बच्चा पैदा होता है । उत्सव, ! नामकरण-उत्सव ! पढ़ने जाता है उत्सव । कामकाज करता है । मान लें वही रिटायर होकर वानप्रस्थ में जाता है, वह भी उसकी पब्लिक लाइफ़ है । उसकी प्राइवेट लाइफ़ तो होती नहीं । सन्यासी की तो एक दम नहीं । हमारे यहां एवरी मिनिट, एवरी डे, ही इज एकाउंटेब्ल् टू पिपल् ऑन दि अर्थ एंड गॉड एबव। ये हमारे यहां का कल्चर है और मैं कह रहा हूं, हम वह सारा कितना कम जानते हैं ? इस आपाधापी के जीवन में किसे फुरसत है ठहर कर पीछे देखने की और कृष्ण पर जो कुछ उन्होंने कहा वह एकदम नया दृष्टिकोण है । वह फिर कभी ....!!

अमूल्य स्मृति कोष

●शेखर सेन

पंडित नरेन्द्र शर्मा स्मृतियों का एक छोटा- सा अमूल्य कोष हैं मेरे पास । अपने सर्वप्रथम कार्यक्रम "दुष्यंत ने कहा था" का निमंत्रण लेकर मैं पंडित जी के पास गया था, वही मेरी उनसे पहली भेंट थी । उन्होंने मुझसे दुष्यंतजी की कुछ गज़लें सुनीं, सराहा और फिर वह सलाह दी, जिससे मेरे जीवन की दिशा ही बदल गयी । उनके शब्द थे, "शेखर जीवन का शाश्वत् भाव प्रेम है, विक्षोभ नहीं।" उसी प्रेम की खोज में मैंने गाया रसखान, नरोत्तमदास, रहीम, तुलसी, कबीर, देव आदि कवियों को । उस समय तक उसके बाद संपूर्ण "सुंदर कांड" के ध्वन्यंकन के समय उनसे ही मार्गदर्शन मिला । मानस व गोस्वामीजी के प्रति उनकी अत्यधिक श्रद्धा थी । चौपाइयों के अर्थ वे इतने आनंद से बताते थे कि उठने का मन नहीं करता था । उसी बीच एक संस्था "संकल्प" का गठन भी हुआ । पंडित जी उसके अध्यक्ष बने और मैं सचिव । हमने पाकिस्तान के हिन्दी कवि तथा कबीर पर अनुष्ठान भी किये । आज सोचता हूं तो सुखद आश्चर्य होता है कि उस समय कोई भी कारण हो पारिवारिक, संस्थागत या सांगीतिक मैं सीधे उनके पास चला जाता था । मेरा सौभाग्य ही है कि मेरे विवाह की तिथि भी पंडित जी ने ही निश्चित की थी । एक घटना स्मरण आ रही है, "श्री दुर्गा सप्तशती" के संपादित अंशों का ध्वन्यकंन होना था । एक दिन अचानक मैं व अनुराधा जी पंडित जी के पास पहुंचे व उनसे मार्गदर्शन चाहा, उन्होंने तुरंत ही हमें मां शांति के नव रूपों का अंश तथा अन्य कुछ श्लोक जो उन्हें कंठस्थ ही थे, बताया । उनके जैसा विद्वान, मर्मज्ञ, स्नेही व विनयी व्यक्ति मिलना आज के समय में दुर्लभ ही है । उनका वह प्रफुल्लित मुखमंडल, कम व सटीक शब्दों में अपनी बात कहना, तत्क्षण निर्णय लेने की अद्‌भुत क्षमता, सचमुच हमारी पीढ़ी का यह परम सौभाग्य ही है कि हमें उनके दर्शन, सान्निध्य व ज्ञान का प्रसाद मिला ।

●

"तम-प्रकाश का भेद सिखा देते..."

● तुषार भाटिया

जीवन में कुछ ऐसे व्यक्तियों के संपर्क में आते है, जिनका प्रभाव हमारे भाव तथा स्वभाव में ओतप्रोत हो जाता है। जिनकी दिखलाई हुई दिशा में हम निर्भीक होकर चले जाते हैं और एक आत्मविश्वास लेकर अपनी भावना तथा कर्तव्य का संतुलन रख पाते हैं। मेरे जीवन और कार्यक्षेत्र की अल्पावस्था में ही मुझे परम आदरणीय पं. नरेंद्र शर्मा जी के आशीर्वाद, स्नेह, तथा मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शुरू में म्यूजिक इंडिया में काम करते समय सुन्दरकांड, हनुमान चालीसा तथा मध्यकालीन काव्य के ध्वनिमुद्रण के दरम्यान मिलना होता था। उस समय पं. विनोद शर्मा जी के साथ उनकी चर्चाएँ- जिनका विषय राजकारण और अर्थशास्त्र से लेकर आयुर्वेद और वेदांत तक पहुंचता था, मेरे लिए अत्यन्त गूढ़ और रसप्रद बनी रहती। मैं सुनता रहता। विषय- तत्व के अलावा, हिन्दी भाषा का शुद्धतम रूप ही मेरे लिए आकर्षण बन जाता।बचपन से ही साहित्य के प्रति मुझे आकर्षण रहा। ज्यादा तो पढ़ा नहीं, परन्तु जहां, जो भी पढ़ा उसका स्वाद लिए बिना नहीं रह पाया।चूँकि हिन्दी बोलने का अवसर कम मिला, इसलिए उसे बोलने में स्वाभाविकता उस वक्त कम ही थी। जब दोनों विद्वान , दोनों पंडित,एक गुरु, एक शिष्य किसी चर्चा में उतर जाते, मुझ जैसे " बंबइये" का वहां कुछ बोलना ही क्या ?उच्चारण - दोष के डर के मारे मैं बीच में कुछ न बोलता। कोई सवाल मन में उठता, तो भी कभी पूछ न पाता, कहीं वाणी की इन शुद्ध प्रवाह -धाराओं में कोई अशुद्धि न गिर जाये। परन्तु पंडित जी बड़े ही स्वाभाविक ढंग से मेरी मानसिक और भाषिक समस्या का हल कर देते। वो मुझसे सदा अंग्रेजी में ही बोलते। मुझे कभी मेरे अल्पत्व की प्रतीति होने ही न देते।

अपनी चार साल की नौकरी (म्यूजिक इंडिया ऐन्ड एच. एम. वी.) की अवधि में किसी न किसी बहाने मुझे पंडित जी के घर जाना अच्छा लगा। वहां पहुंचते ही भाभीजी के हाथ का बनाया हुआ प्रसाद भी मिलता। कभी बेसन के मोदक, कभी बरफी, तो कभी मुठिये।

शुरू में मुझे अत्यन्त संकोच होता, किन्तु बाद में वो भी निकल गया । तुलसी, मीरा, सूरदास तथा अन्य अष्टछाप कवियों की रचनाएं हमेशा से पंडित्त जी को प्रिय रहीं हैं । एक बार " श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन" यह पद पंडितजी ने अपने घर से लेकर स्टूडियो तक जाते- जाते चार मिनट कीअव धि में इस तरह समझाया कि कोई मानो अपने घर का ही हो और वह भी मुझ जैसे बंबइये को समझाने की भाषा में । इसी दौरान मैने किसी कार्य के सिलसिलें में एक एग्रीमेन्ट लेटर उनके हस्ताक्षर लेने के लिए भेजा था । लिफाफे पर लिखा पंडित नरेन्द्र शर्मा । जब हस्ताक्षर होकर पत्र वापस आया तो लिफाफे पर उन्होंने अपने नाम के पहले "पंडित" शब्द काट दिया था । वे खुद कहते "पेड़ पर जितने फल आते हैं, उतना वह ज्यादा झुकता है" । पर यहां एक पेड़ कहां,पूरा उद्यान- सा मानो फलों से भरचक था और जिसकी छत्रछाया और वैभव दूर तक विस्तृत थे । रेडिओ प्रोग्राम के लिए प्रस्ताव था कि दीपावली पर एक कैसेट ऐसा बनाया जाय, जिसमें गीत भी हों और इस त्यौहार के प्रति मनोरंजक ढंग से जानकारी का प्रस्तुतीकरण भी । लेकिन ये सब संकलित कैसे किया जाये ? मैं अपनी समस्याएं लेकर पंडित जी के पास गया ।

पंडित जी ने मुझे खूब उबारा ! उन्होंने मुझे निर्भीक रहने का आदेश दिया और एकाध हफ्ते के बाद बुलाया । जब मैं गया तो आठ गानों के साथ पूरी स्क्रिप्ट मेरे हाथ में रख दी और कहा "इसे करो" ! अपने हाथों लिखी स्क्रिप्ट में अपनी परिकल्पना बहुत ही विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत की थी । एक दादाजी और ४-५ बच्चों के बीच हो रही बातचीत, कहानियां और गीतों में उन्होंने दशहरा, वाघबारस,धनतेरस, कालीचौदस, दीपावली, नूतन वर्ष तथा भाई दूज का अर्थ, उत्सवों का सामाजिक, सांस्कृतिक और पौराणिक महत्व तथा संपूर्ण परंपरा और फिलॉसफी को बड़ी कुशलता से बुन दिया था ।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि काश कभी ऐसा कोई वक्त आये, जबकि मैं भी पं. नरेन्द्र शर्मा जी जैसे किसी कवि की रचनाओं की धुन बांधूं ! अब स्वयं पंडित जी ही मुझे अपनी रचनाएं देकर उन्हें धुनों में ढालने को प्रोत्साहन दे रहे थे ! इससे विशेष मैं भला

क्या मांग सकता था ? गाने बनाकर उन्हें सुनाने जाता, बड़े ही ध्यान से आंखे मूंदकर वे सुनते-अपने सुझाव देते। बच्चों के गीत बनाना मुझे कठिन ही लगा। धुनों में सादगी का कौन-सा स्तर लिया जाये ? बच्चों को किसी तरह सिखाया जाये ? पाश्चात्य रंग न लाते हुए प्रोड्युसरों को कैसे मनवाया जाये ? इन सब सवालों का जवाब मुझे अनायास ही पंडित जी के पास मिल जाता।

"कन्हैया तेरी मुरली पे नाच रहीं गैयां"– यह गीत बड़े प्यार से और आनंद लेकर सिखाते।स्क्रिप्ट में पंडित जी ने इसका एक ही अंतरा लिखा था– पर जब वे रिहर्सल पर पधारे और देखा की वाकई बच्चे उठ-उठ कर नाच रहे हैं और मेरा अनुरोध भी है तो तुरन्त ही दूसरा अंतरा लिखकर मेरे हाथ में थमा दिया !

पंडित जी के घर से सदा मैं कुछ पाकर ही आया। बढ़ते हुए शोरगुल के जमाने में संगीत के क्षेत्र में अपने- आप संभाल के आगे बढ़ना मुझे मुश्किल ही लगा। पंडित जी कहते,"चाहे हाथ में कोई काम हो या नही, तुम हमेशा कार्यरत रहना।बी प्रीपयर्ड। कभी छुट्टी और छूट मत लेना......."।

"छुट्टी और छूट।" कैसी छुट्टी और किससे छूट ? बहुत आश्चर्य होता है। इतनी बड़ी बात कितनी खूबी से उन्होंने मुझे समझा दी। रेडियो में संगीतकार की आडिशन के लिए मुझे तीन गीत तैयार करने थे। उनके बारे में मैं पंडित जी से आज्ञा लेने गया। इनमें एक गीत था उनका रचित " ओ मेरे प्राणो से प्यारे" और दूसरे दो महादेवी जी के "कौन तुम मेरे हृदय में" और "जो तुम आ जाते एक बार"।

जैसे ही मैंने "जो तुम आज जाते" कहा कि पंडित जी उछल से पड़े। मेरे सिर पर हाथ रख कर मुस्कराये और बोले,"पता है, यही पढ़ने के बाद मैंने काव्य लिखना आरंभ किया था। इसे तुमने ठीक चुना है।"

पंडित जी ने मुझे काव्य को तीन प्रकारों में समझाया, एक तो वह, जो पाठक को बाहरी दुनिया के बारे में बताए, दूसरा उससे थोड़ा ऊपर उठकर पाठक को कवि के बारे में बताए और

तीसरा, जो सर्वोतम है, वह, जो कि पाठक को स्वयं के बारे में अपने भावों की अनुभूति कराये। आज संगीत के विषय में भी मुझे यही परिभाषा ठीक लगती है।

"मिट्टी बनकर भी जी लेती पर यूं किसके संग - सहारे ?
सोचा भी तुमने कैसे जीते होंगे बिना तुम्हारे ओ मेरे प्राणों से प्यारे....."

ये पंक्तियां उनके उस गीत की हैं ,जिसे रेडियो के लिए मैंने धुन में बांधा। यहाँ पर,"यूं किसके संग- सहारे" को "यूं किसके संग, किसके सहारे हम, बिना तुम्हारे"- इस प्रकार"किसके"शब्द दोहराने पर गीत और धुन में अधिक प्रभाव पड़ रहा था। उन्होंने अपनी लाक्षणिक मुद्रा में आंख मूंद कर पूरा गीत सुना । मैंने उपरोक्त पंक्तियां फिर से सुनाईं, और उन्हें इसी प्रकार गवाने की अनुमति मांगी। वो हंसे और बोले "इसमें पूछने की क्या आवश्यकता है ? तुम संगीतकार हो और काव्य को समझकर ही ऐसा करना चाहते हो- ये तो तुम्हारा अधिकार है। अनिल विस्वास जी भी ये बात किया करते थे।"

पंडित जी का कथन और खास करके इसी संदर्भ में पूज्य अनिल दा का नाम सुनकर मेरा कलेजा फूल-सा गया। अनिल दा और पंडित जी ने उत्तम गीत रचे हैं यह मेरे ध्यान के बाहर न थी। कितनी हे बातें याद आ रही हैं और साथ में पंडित जी भी । उम्र में मुझसे लगभग पचास वर्ष बड़े, लेकिन मुझे सदा मित्र की भांति ही मिले। उन्हीं की पंक्तियों में कहूं तो......

"दीप लिए क्षण भर को आये,
चले गये क्यों बिना बताये.....'
तम-प्रकाश का भेद सिखा देते....."

तम और प्रकाश का भेद उन्होंने सिखाना भी चाहा, परंतु पता नहीं कहां तक उसे मैं समझ पाया हूं। इस बढ़ती हुई अशुद्धि और विकृति के युग में ऐसे शुद्धात्मा व्यक्ति से अल्प अवधि में ऐसा संबंध बांधने का जो अवसर मुझे मिला, उसके लिए मैं कृतार्थ और गौरवान्वित हूं।

प्रवासी की स्मृति में

●विजय किशोर दुबे

अतीत की स्मृतियां उभरती हैं, तो ध्यान आता है उस पुस्तक का जिसके द्वारा पहली बार मेरा परिचय पंडित नरेंद्र शर्मा की कविताओं से हुआ। मैं १६ या १७ वर्ष का था। साहित्य में रुचि थी, विशेष रूप से कविताओं में। "प्रवासी के गीत" छपते ही नरेंद्र जी की ख्याति और भी बढ़ गई।

कई वर्ष पश्चात् मै जब बंबई रेडियो में काम करता था, तो एक दिन पता चला कि नरेंद्र जी, लता मंगेशकर व अनिल विस्वास कोई गीत रेकार्ड करने जा रहे हैं। बात है सन् १९४८ या ४९ की! मन में खलबली मच गई।आज पं. नरेंद्र शर्मा के दर्शन होंगे, लता मंगेशकर को साक्षात् रूप में देखेंगे और अनिल विस्वास के संगीत निर्देशन के चमत्कार का प्रदर्शन होगा।

संध्या का समय था, तीनों स्टूडियो में आये। वाद्ययंत्रों के सुर मिले, रिहर्सलें हुईं, अनिल विस्वास और लताजी ने बार-बार नरेंद्र जी से विचार-विमर्श किया और लता गा उठीं नरेंद्र जी का यह गीत ...

"युग की संध्या कृषक वधू-सी
किसका पंथ निहार रही"

चालीस वर्ष बाद मुझे वह गीत अभी भी याद है और वह संध्या भी।

आकाशवाणी ने सुगम संगीत का नया चैनल आरंभ करने का जब निश्चय किया तो उस व्यक्ति की खोज आरंभ हुई, जिसके निर्देशन में यह नया कार्यक्रम आरंभ हो और देश भर में लोकप्रिय हो जाए! यह वह समय था, जब लोग रेडियो पर प्रसारित होने वाले नीरस कार्यक्रमों से ऊब चुके थे। सूचना और प्रसार मंत्रालय, दिल्ली को देश भर में एक ही व्यक्ति दिखाई दिया – पं. नरेंद्र शर्मा! इस भार को संभालना किसी भी अनुभवी व्यक्ति के लिए चुनौती थी, नरेंद्रजी के लिए नहीं! उन्होंने 'विविध भारती' के प्रत्येक कार्यक्रम की रूप रेखा बनाई। कई कार्यक्रम स्वंय प्रस्तुत किये और देखते-देखते देशभर में रेडियो सिलोन के श्रोता 'विविध भारती" सुनने लगे।

आकाशवाणी के इतिहास में "विविध भारती" की यह सफलता स्वर्णिम अक्षरों में लिखी जायेगी, जिसका श्रेय नरेन्द्रजी के अतिरिक्त और किसी को नहीं मिल सकता।

समय अपनी द्रुत गति से बीतता गया। मैं एच. एम. वी. रेकार्ड कंपनी में संगीत विभाग का मैनेजर बना और कई योजनाओं के निर्माण में व्यस्त हो गया। मेरी एक योजना थी "तुलसीकृत रामायण" को एच. एम. वी. के लाँग प्ले रेकार्डो पर प्रस्तुत करना, जिससे कि यह हमारा महान धार्मिक ग्रंथ देश के घर-घर में सुना जा सके। मुझे विश्वास था कि केवल मुकेश ही ऐसे गायक थे, जिनके हृदयग्राही स्वर में रामायण के दोहों और चौपाई अति रसमय लगेंगे। संगीत निर्देशक के लिए चुना मुरली मनोहर स्वरूप को और यहां आकर रुक गया। महीनों सोचता रहा कि मेरे जैसा अज्ञानी इतने बड़े कार्य को किसी के मार्गदर्शन बिना कैसे सम्पूर्ण कर सकेगा ?अकस्मात् ध्यान में यह बात आई कि केवल पंडित नरेन्द्र शर्मा ही अपने पांडित्य व अनुभव के आधार पर रामायण के केवल वे दोहे,चौपाई आदि का संकलन कर सकेंगे, जो भगवान राम की कथा के प्रारंभ से अंत तक के सूत्र को स्थापित रखें और सुनते समय श्रोताओं को यह भी प्रतीत न हो कि कोई मुख्य प्रसंग छूट गए हैं। बड़ी आशा लेकर नरेन्द्र जी के पास पहुंचा। मेरी इस योजना से प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और हर प्रकार से सहायता देने को तैयार हो गये। सात वर्ष तक तुलसी रामायण की रेकॉर्डिंग मुकेशजी के स्वर में मुरलीमनोहर स्वरूप जी के संगीत निर्देशन में हुई। समय- समय पर एक- एक काण्ड के रेकॉर्ड श्रोताओं तक पहुंचते रहे और चारों ओर से प्रशंसा ही प्रशंसा सुनाई देने लगी। इन सात वर्षो में हर काण्ड का संकलन करके, रेकार्डिंग के हर दिन पंडित चंद्रशेखर पांडे के साथ नरेन्द्र स्टूडियो में आठ-दस घंटे बैठते। मुकेशजी के एक- एक शब्द को, एक- एक स्वर को आंखे मूंदे सुनते, त्रुटियां सुधारते और ऐसे संलग्न रहते कि मैं स्तब्ध होकर देखता रहता।

इन सात वर्षों में पंडित नरेन्द्र से मेरा इतना निकट का सम्बन्ध हो गया कि जब भी कभी कोई समस्या आ खड़ी होती, मैं उनके पास जा पहुंचता- चाहे अमीर खुसरो के शताब्दि- समारोह से सम्बन्धित ब्रजभाषा व फारसी की कृतियों की रेकार्डिग हो, या गालिब की

गजलें, या कबीर के दोहे हों, वे इस प्रकार मेरी हर समस्या का समाधान करते कि सब कुछ सरल लगने लगता।

भारत और पाकिस्तान की लड़ाई के समय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जब दिल्ली में लाखों लोगों के सामने भाषण देने का निश्चय किया, तो उन्होंने यह संदेश भेजा कि भाषण से पहले लता मंगेशकर कुछ विशेष परिस्थिति के उपयुक्त गीत गाएं ! जैसे ही दिल्ली से यह आदेश मेरे पास पहुंचा कि मैं सीधा नरेन्द्र जी के पास जा पहुंचा। केवल आधे घंटे में उन्होंने एक नये गीत की रचना की जो हमारे देश की सीमाओं पर अपना बलिदान देने वाली हमारी सेना के जवानों की श्रद्धांजलि थी....

"जो समर में हो गये अमर,
मैं उनकी याद में,
गा रही हूं श्रद्धा गीत,
धन्यवाद में !जो समर...."

दो दिन बाद जब रामलीला मैदान में कोकिल कंठी लता मंगेशकर के कंठ से यह गीत प्रतिध्वनित हुआ तो लाखों लोग स्तब्ध होकर सुनते रहे !

एक और ऐतिहासिक अवसर आया, जब शास्त्रीय संगीत के महान गायक पंडित भीमसेन जोशी ने लता मंगेशकर के साथ मिलकर नरेन्द्र जी के भजनों की रेकार्डिंग की- "राम श्याम गुण-गान।" हर भजन नया था, हर भजन अप्रतिम था। रेकार्डिंग से पहले, हर दिन लताजी, जिन्हें भारत के लोग माता सरस्वती का अवतार मानते हैं, नरेन्द्र के चरण-स्पर्श के पश्चात आशीर्वाद लेकर रेकार्डिंग आरंभ करतीं ! नरेन्द्रजी को देखकर, लताजी व पंडित भीमसेन जोशी को भजन गाते सुनकर, हमारे एच.एम.वी. के स्टूडियो में अध्यात्म का एक ऐसा संचार होता कि प्रत्येक व्यक्ति मौन मुड़कर बैठा दिखाई देता !

कितने प्रसंगों का वर्णन करूं और किन शब्दों में करूं ? मेरी हर निजी समस्या को वह अपना लेते ! मुझे कभी मानसिक क्लेश होता, तो उसका समाधान करने में वह सब काम छोड़कर लग जाते !

कभी जब मेरे सौभाग्य से ऐसा अवसर आता कि मैं बहुत समय उनके साथ बिता पाता, तो घंटों बैठा उनकी बातें सुनता रहता। अंग्रेजी के कवियों पर यदि मैं चर्चा आरंभ करता तो शेक्सपियर,शेली,कीट्स,बायरन,बर्नाडशा आदि पर नरेन्द्र जी घंटों अपने विचार व्यक्त करते। हिन्दी साहित्य पर बात होती तो छायावाद के महान कवियों की कविताओं को समझाते– पंतजी, निराला, महादेवी, आदि की सारगर्भित कृतियां नरेन्द्र जी की व्याख्या द्वारा मुझे बड़ी सरल लगने लगतीं।

दर्शन-शास्त्र का उन्हें घोर अभ्यास था।उर्दू और फारसी के कवियों से पूर्णरूप से परिचित थे और वेद -पुराण, शास्त्र पर जब वह बोलना आरंभ करते तो मैं यह सोचता कि एक मनुष्य अपने लघुजीवन में इतना बड़ा ज्ञाता कैसे बन सकता है ?

आज वे नहीं हैं। उनकी छत्रछाया में इतने वर्ष व्यतीत करने के पश्चात अब जब समस्याएं मेरे सामने आती हैं, तो मार्गदर्शक के बिना शून्य में भटकता रह जाता हूं !

जीवन भर देश के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों से मेरा संपर्क रहा है, अब भी है। पंडित नरेन्द्र शर्मा जैसा महापुरुष दूसरा कोई नहीं देखा !

●

शर्मा जी : एक सात्विक व्यक्तित्व

●चंद्रशेखर पांडेय

स्व. श्री. पं. नरेन्द्र शर्मा के समस्त गुणों की सूची कोई व्यक्ति बनाने लगे, तो यह कठिन कार्य होगा। किसी एक को उनके सभी गुणों का पता सम्भवतः न होगा। वे अंतर में कवि थे, व्यवहार में मृदुल थे, दार्शनिक दृष्टि से परम आस्तिक थे तथा धार्मिकता से उदारमना भक्त थे। ज्योतिष और वैद्यक का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। (उनकी गुण माला का सुमेरु मन मैं उनकी सरलता को मानता हूँ।) सरलता आती है अपनी महानता के बोध के अभाव में। अपनी महानता का आभास न होना आजकल बहुत कठिन है, जब कि महानता का स्पर्श भी जिन्हें नहीं है, वे अपने को सबसे महान समझने का भ्रम पाले रहते हैं। ऐसे युग में मैंने देखा कि शर्माजी को एक क्षण के लिए अपनी महानता का बोध नहीं हुआ। यह ध्यान रखना चाहिये कि स्वाभिमान सरलता का विरोधी नहीं है।

एक काल-खंड ऐसा था, जब हम दोनों फिल्म-क्षेत्र में थे। हमारी एक मित्र-मंडली प्रत्येक रविवार की संध्या वरिष्ठ संगीतकार श्री अनिल विस्वास के माटुंगा वाले घर में जाती थीं। वहा महान विभूतियों की रचनाओं के अंश प्रायः अंग्रेजी में पढ़े जाते थे। सब ध्यान से सुनते थे। एक दिन लौटते समय मार्ग में मैंने शर्मा जी से कहा कि यदि तुलसीकृत रामायण पढ़ी जाय, तो कैसा रहे? वे बोले, "विचार तो अच्छा है, किन्तु ये फिल्म वाले रामायण सुनना शायद पसंद न करेंगे। आप इन्हें पहले आल्हा -ऊदल की लड़ाइयां सुनाइए, फिर राधेश्यामी तर्ज की रामायण के कुछ भाग सुनाने के बाद धीरे से तुलसी रामायण का प्रस्ताव रखिये, तो शायद बात बन जाये।" ठीक इसी क्रम से वहाँ रामायण आरंभ हो गई। मंडली के सदस्य भी बढ़े और तब वह राम-मंडली कही जाने लगी। मैं श्री शर्मा जी की दूरदर्शिता पर चकित हो गया।वह राम-कथा लगभग २५ वर्षो तक चली । बाद में उसके स्थान भी बदले। कुछ दिनों बाद वहीं निकट रहने वाले श्री रामानंद सागर के यहां खिसक गई। कई वर्षो बाद जब उन्होंने भी जुहू में निवास बनवा लिया, तब दो-तीन वर्ष वहां होने के बाद राम-कथा का समापन हो गया। सबसे अधिक समय तक सागर जी के यहाँ ही रामायण

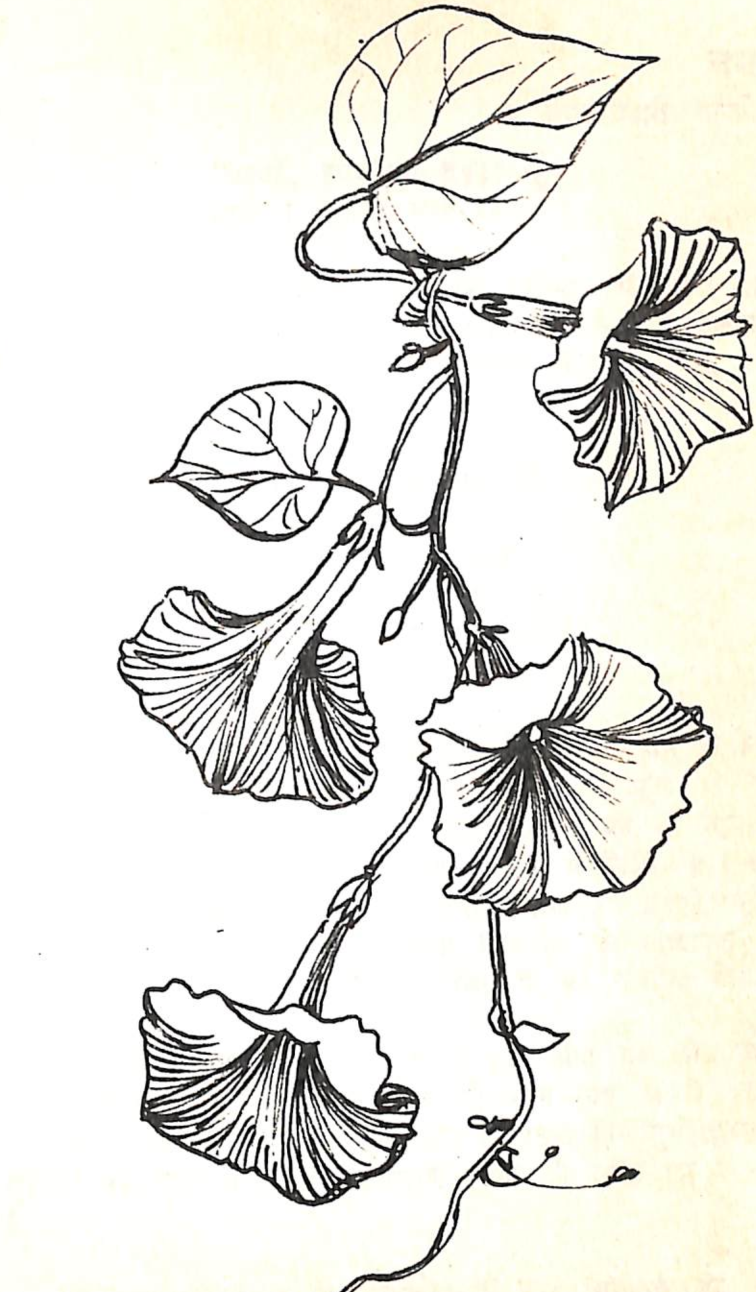
हुई। मै सोचता हूँ कि पच्चीस वर्षो तक फिल्म-क्षेत्र के लोगों को जो रामायण सुनने को मिली, उसका सारा श्रेय श्री शर्मा जी को ही है। क्योंकि यदि वे बुद्धिमता पूर्ण क्रम सोचकर न बताते, तो बहुत संभव है कि मेरा रामायण का प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता और बात वहीं समाप्त हो जाती।

लगभग १० वर्ष पहले मैंने एक नाटक लिखा था "बृहन्नला।" मैंने पंडित जी से उसकी भूमिका लिखने की प्रार्थना की। उन्होने तत्काल स्वीकार कर लिया। भूमिका तो उन्होंने लिखी ही, किन्तु अत्यन्त कार्य-व्यस्त होते हुए भी पूरा नाटक पढ़ा और कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये। तद्नुसार मैंने परिवर्तन कर लिया। पुस्तक छप कर आई तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पूरी पुस्तक में श्रेष्ठ एवम् पठनीय अंश पंडित जी की भूमिका ही है। मैंने फोन करके पूछा कि कल संध्या को आप घर पर हैं न, मै पुस्तक देने आ रहा हूँ। श्री शर्मा जी ने कहा-- केवल इसीलिए आप बालकेश्वर से आने का कष्ट क्यों करते है ? चार-पांच दिन में हम दोनों एच.एम.वी. में मिल रहे हैं, तभी आप ले आइएगा। ऐसी थी उनकी सरलता।

एच्.एम्.वी. ने तुलसी-रामायण के १२ रेकार्ड (एल. पी.) बनायें हैं। ८ में प्रधान गायक स्व. मुकेश जी थे। नौवाँ गाया है श्री मन्नाडे ने। सामग्री का संपादन श्री शर्मा जी ने किया था। और कलाकारों से शुद्ध उच्चारण कराने का भार मेरे ऊपर था। रेकार्डिंग में पूरे समय मैं रहता था। पंडित जी किसी-किसी दिन थोड़े समय के लिए आते थे। एक दिन आकर उन्होंने पिछले दिन की रेकार्डिंग सुनी तो उन्हें लगा कि अमुक चौपाई में जो ठहराव है, वह उचित स्थान पर नहीं है। वे मुझसे बोले- "जिस जगह आपने ठहराव निश्चित किया है, वह भी ठीक है, किन्तु इस जगह होता, तो अधिक ठीक लगता।" मैंने शांतिपूर्वक विचार किया तो पाया कि पं. जी का कहना बिलकुल ठीक है। मैंने अपनी भूल स्वीकार की और वह अंश फिर से रिकार्ड करने को कहा। मैंने सोचा कि कोई साधारण स्तर का व्यक्ति होता तो उसकी भाषा होती "पांडे जी, यह आपने क्या कर दिया? एकदम गलत जगह आपने ठहराव बता दिया। आप इतने पढ़े-लिखे होते हुए भी इतनी साधारण बात नहीं समझ सके ?" किन्तु वे थे पं. नरेन्द्र शर्मा, जिनकी

व्यवहार-मृदुलता की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। अपने को महान और दूसरे को नगण्य समझने की कल्पना भी उन्होंने कभी नहीं की। टी वी में भी अनेक अवसरों पर मेरा-उनका साथ रहा। मैंने सदा उनकी सरलता और मृदुलता के दर्शन किये। आज वे नहीं रहे। अपनी आंतरिक व्यथा का प्रदर्शन भी कुछ अच्छा नहीं लगता।

●



चतुर्थ पुष्प

नमन

● अटलबिहारी बाजपेयी

"आओ, हथकड़ियां तड़का दूं,
जागो रे नतशिर बन्दी !"

इन चुनौतीपूर्ण पंक्तियों ने मुझे इनके रचयिता श्री नरेन्द्र शर्मा की ओर आकृष्ट किया। यह बात १९४० की है। मैं हाईस्कूल का छात्र था। देशभक्ति से भरी रचनाओं में मेरी गहरी रुचि थी :

"दो हों, चाहे एक सांस हो,
जीवित हो, उल्लासभरी हो,
जीवन चिन्ह बनें ये बंधन,
सांस-सांस में आस भरी हो,
क्या सांसों की गिनती जीवन ?
सोचो तो भोले बन्दी !!

पराधीन राष्ट्र की पीड़ा और उस पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए आत्मोत्सर्ग की जो प्रेरणा कवि ने इन पंक्तियों में फूंक दी थी, वह मेरे किशोर मन को कहीं गहरे ही छू गई। यह तो बाद में पता चला कि नरेन्द्रजी ने यह कविता १९३४ में लिखी थी। तब वे प्रयाग विश्वविद्यालय में छात्र थे। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी १९४० में हुई, जब काशी विद्यापीठ के अध्यापक के रूप में साम्राज्यवादी सरकार ने उन्हें नजरबन्दी का नजराना दिया।

नरेन्द्र जी की जिस अन्य रचना ने मुझे बांधा वह थी "चांद मेरा साथी।" प्राय: हम सभी चांद को साथ-साथ चलते देखते हैं। किंतु कवि का संवेदनशील अंत:करण ही उसके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर ऐसी सरल और हृदयग्राही रचना की सृष्टि कर सकता है।

"आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे" - नरेन्द्रजी का यह गीत भी उन दिनों बड़ा लोकप्रिय हुआ था। उसे मैंने अनेक स्थानों पर, अनेक व्यक्तियों को, गाते या गुनगुनाते हुए सुना था। मैं नहीं जानता कि नरेन्द्र जी ने शास्त्रीय संगीत की विधिवत् शिक्षा ली थी या नहीं, किंतु उनके गीतों की गेयता को देखकर यह

जरूर लगता है कि वे भावावेश की गीतों में और गीतों को कर्ण–मधुर स्वरलहरी में बांधना बखूबी जानते थे।

नरेन्द्र जी ने अपने रचनाकालको शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में बांटकर, प्रारंभिक काव्य को "धमनियों में प्रवाहित धधकते हुए रक्त से ओतप्रोत" बताया है। इस काल की उनकी रचनाओं में यौवन की मस्ती भी है और अशिव तथा असुन्दर को चुनौती देने की प्राणवत्ता भी। अगोचर सौंदर्य और संवेदना को गोचर रूप देने में डूबा उनका कवि–मन यंत्रयुग की सभ्यता के स्वर्णिम शिखरों से चकाचौंध नहीं होता, वह उन्हें चेतावनी देता है :

"पश्चिमी प्रभु मर मिटेंगे,
विजय यदि पायी न निज पर!"

रचनाकाल का शुक्ल पक्ष, हो या कृष्ण पक्ष, नरेन्द्र जी ने मनुष्य की महानता में अपनी निष्ठा को सदैव ही बनाये रखा। उन्होंने व्यथा को वाणी दी। संवेदना को स्वर दिया। "मैं सब दिन पाषाण नहीं था" यह लिखकर उन्होंने मानों अतीत के किसी वज्राघात पर पड़े हुए पर्दे को ही उघाड़ दिया। मरघट के पीपल तरु से अपनी तुलना कर उन्होंने अपने अन्तहीन एकाकीपन की ओर इंगित कर दिया। किंतु उन्होंने मिट्टी से, मौसम से, मेघ से, मनुष्य से अपना अटूट नाता कायम रखा। उनके गीतों में पीड़ा है, पलायन नहीं है। मांसलता है, मलिनता नहीं है। वे सपने देखते है, किंतु स्वप्न -लोक में विचरण नहीं करते। न स्वर्ग की कामना करते हैं। उनका विश्वास है :

"धरा वह सुखदा बनेगी, स्वर्ग भी लुट जाये जिस पर
देव बलि-बलि जायें जिन पर, मनुज वह मानव बनेंगे।"

सच्चाई तो यह है कि मनुष्य की महानता में उनका विश्वास निरंतर बढ़ता ही गया। पहले वे मनुष्य को महान बनने की प्रेरणा देते थे, बाद में मनुष्य की महानता की उच्च स्वर से उद्घोषणा करने लगे। उनके बालमन पर आर्यसमाज के जो सुसंस्कार पड़े थे और स्वतंत्रता के संघर्ष ने जिन्हें वर्धमान किया था, वे अन्त तक उन्हें शक्ति प्रदान करते रहे।

अनेक कवि फिल्मों में जाने के बाद या तो काव्य से ही हाथ धो बैठे या निराश होकर वापस लौटे। किंतु नरेन्द्र जी ने अपनी काव्यकला से फिल्मों को भी अलंकृत किया। उन्होंने फिल्मों की धमाचौकड़ी को कभी अपने साहित्यकार पर हावी नहीं होने दिया। उनके रचे अनेक फिल्मी गीत मुझे प्रिय हैं। जो सर्वाधिक प्रिय है, वह है: "ज्योति कलश छलके।" सुप्रसिद्ध संगीतकार श्री सुधीर फड़के के निर्देशन में स्वर-सम्राज्ञी लता मंगशेकर द्वारा गाया गया यह गीत दशाब्दियों तक हमारे मन के तारों को झंकृत करता रहेगा।

मुझे नरेन्द्र जी से कई बार मिलने का मौका मिला। मैंने उन्हें मंचों पर भी सुना। उनके व्यक्तित्व में गंभीरता और स्नेहस्निग्धता का एक अनूठा संगम था। वे कभी वादों के विवाद में नहीं फंसे, न उन्होंने अपने साहित्यकार पर कभी राजनीति को ही रंग जमाने दिया। किंतु उनसे मिलकर, उनकी रचनायें पढ़कर यह भाव बरबस ही मन में जाग उठता था कि जैसे वे अपने ही हैं। आज जब नरेन्द्र जी नहीं हैं, उनके "हृदय-सरोवर का आत्माराम हंस अगम गगन में दूर-बहुत दूर" उड़ गया है, पीड़ा मन को लगातार मथती रहती है कि जैसे कोई अपना ही अब नहीं रहा।
नरेन्द्रजी को मेरा नमन !

"मैं उनका अभिनंद करता हूं ।"

● अनंतकुमार पाषण

आधुनिक हिन्दी कविता को पंडित नरेन्द्र शर्मा ने बहुत-कुछ दिया है। यदि उसका माप-तौल किया जाये तो बहुत-कुछ ऐसा है, जिसका एहसास पाठ्यक्रम-समितियों को नहीं है। जहाँ "आओ हथकड़ियां तड़का दूं।" जैसी जेहादी रचनाएं हैं तो "आज ने सोने दूंगी बालम" और लोकगीत शैली की रचनाएं भी हैं।

"प्रवासी के गीत" में अनुभूति की उत्कटता के साथ अभिव्यक्ति की एक चलित शैली शुरू हुई, जिससे निश्चत ही आधुनिक कविता के विकास को एक उत्तेजन प्राप्त हुआ। इसी युग में वह प्रसिद्ध गीत लिखा गया जिसे ट्रेन में पढ़कर ही उस्ताद बच्चन ने उन्हें अगले स्टेशन पर ही बधाई का एक पत्र दिया- "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे? आज से दो प्रेमीयोगी अब वियोगी ही रहेंगे।"

पंडित नरेन्द्र शर्मा ने हिन्दी गीत को एक नया आयाम दिया। उनकी कल्पना में क्षणिक अनुभूतियां अनंत धाराएं बनी हैं "याद आ गयी पर्वत पर के देवदारु की छाया।"

"ज्येष्ठ का मध्यान्ह" मुक्त छंद में एक अमर रचना है और यति पर उनका अधिकार पठनीय है। ऐसी ही मुक्त छंद की सबल रचनाएं "पलाशवन" में हैं। पन्द्रह मात्राओं के जैसे छंद नरेन्द्र जी ने "मिट्टी और फूल" में लिखे वे अपना मानदंड आप ही हैं।

प्रगतिशील युग में जब एक नयी भाषा और नये मुहावरे की खोज चल रही थी, तब नरेन्द्र जी ने "यकुम मई" लिखी जो प्रगतिशील युग की अमर कविताओं में से एक है। यह मत केवल मेरा ही नहीं डॉ. रामविलास शर्मा का भी है, जिन्होंने मार्क्सवादी आलोचना की नींव हिन्दी में डाली थी।

"हंस" में नरेन्द्र जी का गद्य भी प्रकाशित होता था, अजन्ता की गुफाओं पर उनका एक लेख चर्चित हुआ था। व्यक्तिगत जीवन में वे एक मिलनसार इंसान थे और ज्योतिषशास्त्र में उनकी गति दूर तक थी। पुराने मित्रों में उनका सम्पर्क केवल बच्चन जी से रह गया था। शायद इसका कारण भौगोलिक था।

पंडित नरेन्द्र शर्मा का समग्र साहित्य एक साथ प्रकाशति होना चाहिए। इससे कविता के इतिहास का एक सम्पूर्ण पृष्ठ पूर्ण होगा।

मैं उनका अभिनंदन करता हूं।

अनुग्रह और आशीर्वाद

● कमलप्रभा झवर

जब किसी के भाग्य की सराहना की जाती है, तो प्राय: यह कहा जाता या सुना जाता है कि भगवान का अनुग्रह या पूर्वजों का आशीर्वाद, किन्तु अनुग्रह और आशीर्वाद पाने की पात्रता भी तो होनी चाहिए। सद्विचार, कर्तव्य निष्ठा तथा पुरुषार्थ से ही यह पात्रता जीवन में प्राप्त होती है। आजकल प्राय: सत्ता, मद या धन-दौलत से बड़प्पन मापा जाता है और धन-संपन्न व्यक्ति स्वयं भी अपने-आपको बड़ा मानने लगता है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या स्वयं वह अच्छा भी है ? तात्पर्य यह है कि जो अच्छा है, वही असल में बड़ा है। धन-दौलत, सत्ता तथा सपंन्नता के अभाव में भी अच्छा व्यक्ति बड़ा बना रह सकता है और फिर भी अच्छा व्यक्ति स्वत: ही भगवान का अनुग्रह तथा बड़े का आशीर्वाद प्राप्त करके ही रहता है। ऐसा ही व्यक्तित्व पंडित नरेन्द्र शर्मा में मैंने पाया था।

यह बात लगभग सन् १९४२ की है। आदरणीय पंडित नरेन्द्र शर्मा जी खुरजा जिला बुलन्दशहर उत्तर प्रदेश के जहांगीरपुर गांव से संबंधित थे। शिक्षण प्रारंभिक उनका खुरजा में ही हुआ। जब मुझे उनकी विद्वता, पांडित्य, अध्ययन और आध्यात्मिकता के प्रति असीम अनुराग की जानकारी मिली, तो मैंने उनसे जयशंकर प्रसाद का विशेष अध्ययन, जो मेरे कोर्स में था; मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की। उन्होंने मुझे पढ़ाना सहर्ष स्वीकार किया। उन दिनों, अर्थात् सन् ४२ के आसपास वे देश की स्वतंत्रता के लिए कर्मठता पूर्वक भाग लेने वाले सेनानी के रूप में खुर्जा में कार्यरत थे। प्रसाद की 'कामायनी' का विशेष अध्ययन उनके मार्गदर्शन में जो मुझे मिला, वह मेरे लिए जीवन की अमूल्य निधि के रूप में रहा। इसके पश्चात् भी समय-समय पर उनसे तथा उनके परिवार से निकट संपर्क बना रहा।

काव्य सृजन के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व में अनेक प्रतिभाओं का सामंजस्य था। ज्योतिष का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। आयुर्वेद के उत्तम उपचार, अनेक अनुभव स्निग्ध रहा करते थे। साहित्य के क्षेत्र में तो विश्वविख्यात कीर्ति-स्तंभ बन ही चुके थे।

आज 'महाभारत' के दृश्य जो दूरदर्शन पर इतने भाव से देखे

जा रहे हैं, पंडित नरेन्द्र शर्मा की प्रतिभा व विद्वता उनमें स्पष्ट झलकती है। जीवन में उल्लास, कर्मठता, संयम, मृदुभाषिता तथा स्मितहास, सभी कुछ तो इस छोटे कद के नाटे से व्यक्तित्व में भरपूर था।

आज मैं जो भी हूं, उनके आशीर्वाद मेरे साथ रहे। उनके सौजन्य ने मुझे गतिशील बनाया। वे जहां भी हों, मेरी श्रद्धापूर्ण अंजली स्वीकारें और सदैव उनका आशीष मिलता रहे, इसी भावना के साथ मेरा उन्हें नमन...

'स' गुरुमंत्र के दाता

● श्री कांतिलाल नाथालाल

मेरी और पंडित नरेन्द्र शर्मा की मुलाकात को आज बीस से भी अधिक वर्ष हो गये हैं। उनका नाम भारत में एक अच्छे गीतकार और कवि के रूप में मशहूर है। मेरा जन्म एक व्यवसायी परिवार में हुआ था। मेरे पिता नाथालाल बेचरदासजी रूई के एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। हमारे परिवार में 'बिज़नेस' का माहौल रहते हुए भी पिताजी ने हमारे और भी शौकों (जैसे शास्त्रीय संगीत, सितारवादन) को बहुत प्रोत्साहन दिया। मुझे संगीत सुनने का पहले से ही बहुत शौक रहा है। मेरे बाद के जीवन में उस्ताद विलायत खां साहब तथा स्वर सम्राट और म्युज़िक डायरेक्टर श्री सी. रामचंद्र की मैत्री से मेरा संगीत की ओर लगाव और बढ़ा। शर्मा जी से भी पहचान हुई, जिन्हें मैं फिल्मी हस्ती की तरह जानता था। मुझे 'भाभी की चूड़ियां' फिल्म का उनका एक गीत, "तुमसे ही घर घर कहलाया" बहुत ही पसंद था।

हमारे परिचय के बाद ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गये, मैं उनकी ओर मार्गदर्शन के लिए खिंचता गया। मैं उन्हें अपने 'गुरु' की जगह पर देखता था।

मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाने, ईश्वर के प्रति मेरी श्रद्धा को स्थिर करने और जीवन के हर दुःख का सामना करने की शक्ति प्राप्त करने में उनसे प्रेरणा मिलती।

एक बार जब वे मेरे घर आये, बातों ही बातों में उन्होंने मुझे "स" शब्द का मंत्र दिया। उस मंत्र को मैं आपके साथ बांटना चाहता हूं। शायद आपके भी काम आये। उन्होंने मुझसे कहा, "कांतीभाई, मैं आपको एक आसान-सा रास्ता बताता हूं। आपका स्वभाव और मन सरल है, इसलिए इसे आप आसानी से कर सकेंगे। इन सारे 'स' शब्दों को मंत्र समझकर आप अपना सकते हैं।

शर्माजी ने कहा, "पहला - सत्यता"
दूसरा - सभ्यता,
तीसरा - सहनशीलता,
और चौथा - समानता

मैंने पूछा, "इसका प्रयोग किस तरह किया जाये ?" शर्माजी ने कहा, आप 'सत्य' को पहले पकड़ लीजिए। 'उसके बाद 'सभ्यता' को 'सत्य' से बांध लीजिए। इन दोनों को बांध लेने में आपमें अपने–आप 'सहनशीलता' आ जायेगी। जब आप तीनों को पकड़ लेंगे तो 'समानता' आने में देर नहीं लगेगी। इसी में जीवन का सार हैं।"

मैंने कहा, "मैं आपकी सलाह को जरूर ही जीवन में उतारने की कोशिश करूँगा" ।

इसी तरह वे मुझे जब भी मिलते सांत्वना, हिम्मत और धीरज बंधाते थे। यह बात लगभग १९८४ में हुई थी। मैं हमेशा कोई न कोई बीमारी और व्याधियों में घिरा रहता था। मगर जब भी शर्माजी मुझे मिलते तब बहुत ही हिम्मत देते और मेरा हौसला बढ़ाते।

आज शर्माजी हमारे बीच नहीं रहे। एक न एक दिन तो सभी को देह त्याग कर जाना है। पर जिस तरह शर्माजी गये, उसे देख कर मैं अब भी मानता हूं कि हर मनुष्य को इसी तरह जाना चाहिए-ऋण–मुक्त, यशस्वी तथा कीर्ति के शिखर पर।

जय-पराजय

● पं. विनोद शर्मा

विकास और क्षय से परे
जीवन की सहज सरल अभिव्यक्ति
निर्गुण से सगुण हुई भक्ति
सबके प्रति आदर
सबके प्रति विनय
ऐसे व्यक्तित्व की
किससे मैं उपमा दूं ?
होगा उपमान कौन,
शब्द असमर्थ हैं
वाणी मौन !

●

आखिरी लम्हा

● अम्बरीश गोदीवाला

समय और काल की बंदिश इस धरती को छोड़कर आपने जिस दिन अनंत अनादि की यात्रा के लिए महाप्रयाण किया, उसी दिन सुबह आपसे फोन पर चंद बातें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। क्या पता था कि वह आपसे बातें करने का आखिरी लम्हा होगा ? आप कुछ अस्वस्थ थे, इसीलिए आपसे बातें करने का मन हुआ और...

"नमस्कार जीते रहो... कैसे हो अंबरीष ?"

"सुना है आपकी तबीयत..."

"हां, जरा ऐसे ही कमजोरी आ गई। हो सकता है– योग को कौन टाल सकता है ? I over did it the other day, when I walked seven miles in the city. System... ने कहा कि मेरे साथ बहुत ज्यादती कर रहे हो।"

"क्या non- co- operation चल रहा है ?"

"ये जो चल रहा है वह विद्रोह की क्रिया है। तुम अपनी कहो। काम कैसा चल रहा है ?"

"बस काम न होने देना, यही लोग चाहते हैं। किसी तरह से तकलीफ हो, यही देखते हैं।"

"दुनियां बड़ी कठोर होती है अंबरीश ! फूल को देखना, उसकी प्रशंसा करना, इस अनुभव से प्रेरित होना कविता है, उसी फूल को निचोड़कर उसका इत्र बनाकर खुश होना जिन्दगी है।"

"वाह पापा। सुंदर।" "सुंदरता तो हममें है। व्यक्ति, विचार और वस्तु, इसमें व्यक्ति बड़ा होता है।"

"पापा आपको थकान लग रही है। आपको मिलने आज ही आना है।"

"आना है ?... जरूर आना प्रियम का ख्याल रखना और सब मजे में... ?"

"हां पापाजी नमस्कार।"

"जीते रहो।"

आपने मुझे आशीर्वाद दिया और बिजली की भांति प्रकाश देकर क्षण भर में विराट में लुप्त हो गये। आप मेरे पिताजी के देहांत के बाद हमेशा कहते थे, "राजूभाई अब शरीर में नहीं रहे। उन्होंने

सूक्ष्म में प्रवेश किया है। सूक्ष्म शरीर से मिलने वाला आशीर्वाद ज्यादा प्रखर होता है।'' भौतिक सुख मिलने पर इंसानको मनः शांति नहीं मिलती, वह मैं अनुभव कर रहा हूं। आपके आशीर्वाद से मनः शांति बाहर नहीं, भीतर होती है– यह समझने की शक्ति आपसे मुझे मिले, यही मेरी प्रार्थना है।

शतशः प्रणाम।

एक अनोखा रिश्ता

● शीला राजेंद्र

आपसे मेरा एक रिश्ता था अनोखा । आप थे मेरी ननद के पति । माता–पिता, पुत्र–पुत्री, दामाद–बहू, ये सारे रिश्ते देह के हैं, देह-संबंधित । परंतु इन सबसे भी परे एक रिश्ता होता है, जो अलग ही स्तर का होता है । जाति, धर्म, भाषा, उम्र, लिंग आदि कोई भी उपाधि जिसमें नहीं होतीं, जिसके साथ आनेवाली मर्यादाएं नहीं होतीं । ऐसा ही आपसे एक अनोखा रिश्ता था । समाज, दुनिया जानती है आपको एक कवि के नाते, एक विचारक के नाते । चित्रपट–सृष्टि से लेकर अध्यात्म के क्षेत्र तक आपका संचार था ।

पिछले तीस वर्षों में, तीस महीने तो क्या, तीस दिन भी गिन नहीं सकती आपके सानिध्य के । फिर भी जो कुछ अति–अल्प सान्निध्य पाया है, वह इतना गहरा था कि अल्प–सानिध्य की अल्पता का भान ही नहीं रहा ।

जनम–जनम के रिश्ते की बात लोग बोलते हैं । लगता है कोई शब्द ही नहीं जिसके जरिये मैं व्यक्त करूँ कि कैसा रिश्ता था मेरा आपसे? वह धागा अटूट है, अखंड है । सूक्ष्मतर धागे से बना वह प्रेम का जाला कितना तरल है !

●

अजातशत्रु पं. नरेंद्र शर्मा

●अमृतराव शिंदे

पं. नरेंद्र शर्मा बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। वे हिंदी के प्रख्यात कवि, चिंतक, लेखक एवं साहित्यकार तो थे ही, साथ ही वे संगीत एवं ज्योतिष के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने 'विविध भारती' के संयोजन में आकाशवाणी की जो सेवा की है, वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेगी। उनके निधन से हिंदी जगत एवं आकाशवाणी - परिवार ने एक महारथी खो दिया है, जिसकी क्षतिपूर्ति असंभव है।

मेरा संपर्क पं. जी से सन् १९५६ में हुआ जब वे पहली बार आकाशवाणी बंबई सुगम संगीत के विशेष एकांश में आये। उन दिनों एक बड़ी चिंता की बात थी कि पाश्चात्य संगीत का प्रभाव एक हाईब्रीड (संकर) के रूप में हमारे संगीत पर पड़ रहा था और उसे एक प्रकार से दूषित कर रहा था। चिंता सभी को थी। विशेषकर उनको जिन्हें साहित्य और संगीत से प्रेम था। नरेंद्रजी ने अच्छी-अच्छी रचनाएं चुनकर अच्छे संगीतकारों से उनको संगीतबद्ध करवाया और उनके प्रचार-प्रसार में अनथक प्रयास किया। २-३ वर्षों में ही एक ऐसा परिवर्तन आया कि यह दूषित प्रभाव लगभग समाप्त - सा हो गया।

पं. नरेंद्र शर्मा गीत को छायावादी कल्पना लोक से निकालकर यथार्थ की भूमि पर लाये। इसलिए उनकी रचनाओं को आधुनिक हिंदी काव्य का प्रस्थान बिंदु कहना अनुचित न होगा। संयोग और वियोग के बीच प्रवहमान जीवन की धारा कहीं गहरी, कहीं उथली, कहीं तीव्र, कहीं मंद, कहीं मधुर, कहीं कठोर, कहीं शब्दमय, तो कहीं संगीतमय होती है। अपनी साधना और रचना द्वारा ऐसी सम्मोहिनी जीवन-धारा को संसार में कुछ असाधारण प्रतिभावान् व्यक्तियों ने समय-समय पर जन - सामान्य के लिए सहज और सुगम बनाया है। श्री नरेंद्र शर्मा हिंदी कविता की एक ऐसी ही अनुपमेय प्रतिभा थे।

उनके व्यक्तित्व की छाप जो मेरे मानस- पटल पर सदा-सदा के लिए अंकित है, वह उनके एक सरल, स्नेही, सौम्य रूप की है। नरेंद्रजी की एक अन्य विशेषता यह थी कि वे अजातशत्रु थे, उनकी तरफ कोई भी उंगली उठाने वाला नहीं था, सदैव सभी

लोग उनके प्रशंसक ही रहे। आकाशवाणी जैसे लोक माध्यम को नई शक्ति प्रदान करने, उसे समृद्ध एवं जन प्रिय बनाने वालों में पं. नरेंद्र शर्मा का नाम अग्रणी है।

गीतकार के रूप में नरेंद्रजी प्रख्यात थे, इसके साथ ही उनकी संगीत की परख बहुत अच्छी थी। फिल्मों के लिए उनके गीतों में जो शब्द-चयन, संगीतिकता एवं लालित्य है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरण के लिए उनके गीत "ज्योति कलश छलके" के बोल उभरते ही मन संगीत, अर्थ-गरिमा एवं उसके लालित्य से विभोर हो उठता है।

फिल्मों के माध्यम से हिंदी भाषा को जो प्रचार-प्रसार मिला है, उसके पीछे नरेंद्र शर्मा जैसे ही मनस्वी गीतकारों का हाथ है। उन्होंने फिल्मी गीतों को सुंदर शब्द-चयन, साहित्यिकपुट एवं अर्थ-गरिमा से मंडित किया।

छठें दशक में रेडियो सीलोन फिल्मी गीतों के सहारे भारतीय श्रोताओं के लिए एक आकर्षण बिंदु बना हुआ था। सूचना एवं प्रसारण मंत्री वी.वी. केसकर के जमाने में रेडियो पर शास्त्रीय संगीत का अभाव जन-साधारण को बहुत अखरता था। तभी आकाशवाणी ने प्रसार-गीत नाम से लोक प्रिय गीतों के लेखन तथा प्रसारण की आयोजना की थी। नरेंद्र जी का इस कार्य में बहुत ही योगदान रहा। आज भी उस समय के प्रसार-गीत जन-मन के स्मृति–पटल पर अंकित हैं

'विविध भारती' के प्रारंभ होने से पूर्व आकाशवाणी का एक ही चैनल था, जिसके कार्यक्रम जन-साधारण के लिए कभी–कभी कुछ भारी पड़ा करते थे। इसीलिए विविध–भारती के नये चैनल को प्रारंभ करने हेतु सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने एक नई योजना बनाई और इसके सूत्रधार बने पं. नरेन्द्र शर्मा ! विविध–भारती के नामकरण से लेकर उसकी संपूर्ण संरचना का श्रेय जाता है– पं. नरेन्द्र शर्मा को ,जिनके अथक परिश्रम से यह नया प्रयोग सफल हुआ। नरेन्द्र जी के भाव–प्रवण मानस ने विविध–भारती को इतनी लोकप्रियता दिलाई कि उसके सामने रेडियो सीलोन की छवि धूमिल हो गई। उन्होंने विविध–भारती के पंचरंगी कार्यक्रमों को इतना संवारा-

निखारा कि आज भी वह अति लोकप्रिय हैं। उनके द्वारा दिये गये शीर्षक जैसे "हवामहल", "छाया गीत", "चित्रशाला", "अपना घर" आदि आज भी श्रोताओं को अपने जादू से बांधे हुए हैं। विविध–भारती के कार्यक्रम जन–मन में इतने रच–बस गये कि पंचरंगी कार्यक्रमों की यह रांगोली पं. नरेन्द्र शर्मा के नाम का पर्याय ही बन गयी।

उनका लिखा रेडियो रूपक "ढाई अक्षर प्रेम का" जिसने भी सुना है, वह नरेन्द्र जी की मन–मोहनी गद्य–शैली को कभी भूल नहीं पायेगा। उसी में नरेन्द्र जी ने लिखा था–" संत कबीर ने उसे ढाई अक्षर का मंत्र कहा था तो उनके सद्‌गुरुओं ने भक्ति और आध्यात्मिक अनुभूति का सूत्र। प्रेम को अमृत–वाणी का सार ही कहा गया है और यह भी कहा गया है कि जो इसके सच्चे स्वरूप को पहचान लेता है, वह भेदभाव से ऊपर उठ जाता है।"

सचमुच पं. नरेन्द्र शर्मा इस कसौटी पर कुन्दन सा- खरा उतरते हैं। विगत वर्ष सत्तासी में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद व्याख्यान–माला के अंतर्गत उन्होंने "सांस्कृतिक संक्रान्ति और संभावना" विषय पर भाषण दिया था, जिसे सुनकर लोग अभिभूत हो उठे थे, उनके चिंतन, ज्ञान और रस- सिद्ध शैली से। इस साल जनवरी में प्रयाग में जब कुंभ–पर्व पड़ा तो हमने उनसे निवेदन किया कि वे हमारे लिए उस अवसर पर प्रसारणार्थ एक रूपक लिख दें– अपनी अत्यधिक व्यस्तता में भी आकाशवाणी से अपने अटूट स्नेह के कारण वे मना न कर सके। उन्होंने रूपक की पूरी योजना बनाई, किंतु अकस्मात् उपजी विवशताओं से वह संभव न हो सका।

क्या–क्या याद करें ? छोटी से छोटी बात भी वह बड़े ध्यान से सुनते थे। फिर नपे–तुले शब्दों में अपनी बात कहते थे। जब कभी भी हम किसी संशय में होते, तो समाधान उनसे मिल जाता था। आज जब वह नहीं हैं, तब अनुभव करता हूं अपनी विपन्नता का।

हम भारतीय जीवन को एक सतत प्रवहमान नदी मानते हैं। मृत्यु अंत नहीं है, कारण जीवन अनंत है। ऐसे में याद आती हैं नरेन्द्र जी के एक गीत की कुछ पंक्तियां–

फिर भी न मुझे देना बिसार !
गिर जाऊं आंखों से यदि मैं
अस्ताचलगामी रवि समान !
मूर्छित हो सांध्य-कमल-सा जब
आंसू-जल का जल जात गान !!
पतझर की पीली पत्ती-सी
प्रतिध्वनि न साथ ले मधु बयार !
फिर भी न मुझे देना बिसार !
फिर भी न मुझे देना बिसार !!

श्रद्धांजलि

● डॉ. (श्रीमती) अनीता सेन

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मूर्धन्य विद्वान, कवि, गीतकार स्व. पंडित नरेन्द्र शर्मा जनमानस की अभिरुचि के परिचायक हैं। पिछले आठ-दस वर्षों में उनसे जब-जब भेंट हुई, ऐसा लगा ज्ञान की पुस्तक में एक अध्याय और जुड़ गया। उनकी हर मुलाकात एक संदर्भ को लेकर हुआ करती थी। पहली बार उनसे मिलने गयी थी, एक गीतकार की अनुभूतियों एवं अनुभवों को पढ़ने और समझने। पंडित शर्मा जी गहरे अध्ययनशील व्यक्ति थे, जिनकी ज्ञान की गहराई हिन्दी साहित्य के विभिन्न आयामों को अत्यंत सहजता से छूती, समेटती चलती थी। उस दिन उन्होंने अपने कुछ गीत, कुछ कविताएं सुनाई थीं और अनेक रूप में पंडित जी मिले, जिन्होंने "शेखर कल्याण" के नाम से संगीत एवं साहित्य की साधना में तत्पर मेरे दोनों पुत्रों के प्रयासों की सराहना करते हुए हम लोगों का भी उल्लेख किया था। यह उनकी सराहना एवं प्रशंसाभरे शब्दों का ही परिणाम था कि पहली बार अनुभव हुआ कि लीक से हटकर २१ वीं सदी की ओर बढ़ते संघर्षरत भारत की उपलब्धियों में नए आयामों एवं कोणों का दिग्दर्शन करने वाले रहे, जिनसे पंडित शर्मा जी की गहन विचारधारा तथा भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय हम पाते रहे।

पं. नरेन्द्र शर्मा जैसे व्यक्ति सदैव अमर हैं। वे सही माने में नरों में इन्द्र कहे जा सकते हैं। समय, काल, जाति, विचार, देश इनके प्रसार एवं फैलाव में कभी बाधक नहीं हो सकते। युग-युग तक अजर-अमर वाणी-विलासिता एवं विचार सौहार्द्रता के उन्नायक श्रद्धेय स्व. पंडित नरेन्द्र शर्मा के व्यक्तित्व को हम नमन करते हैं।

संस्मरण

डॉ. अरुण कुमार सेन

स्व. पं. नरेन्द्र शर्मा जी से मेरा आत्मीयतापूर्ण संबंध मेरे दोनों पुत्र चि. अरुण कल्याण एवं चि. शेखर के माध्यम से हुआ, जिन्होंने "शेखर कल्याण" के नाम से मध्ययुगीन कवियों की रचनाओं का मंच–गान पंडित जी के मार्गदर्शन में और उनका आशीर्वाद लेकर बंबई एवं अन्य कई स्थानों में बार–बार किया।

मैं आजीवन हिन्दी का सेवक रहा हूं। बंबई में मेरे दोनों पुत्रों को पंडित जी ने संगीत के माध्यम से हिंदी की सेवा के लिए निरंतर उत्साहित किया एवं उनके ही आशीर्वाद से संभवतः पहली बार रहीम, रसखान, देव, घनानंद, भूषण, ललितकिशोरी सदृश मध्य युग के महान कवियों को, जिनका साहित्य केवल पठनीय था, स्वरों में बांधकर श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। इन प्रयोगों को जो सराहना एवं लोकप्रियता मिली, उसका श्रेय पंडित जी को जाता है। रामचरित मानस के सुंदर कांड को श्री नितिन मुकेश एवं अन्य गायकों द्वारा पहली बार एच.एम.वी. के रेकार्डिंग में जो उच्चारण की शुद्धता एवं पवित्रता का वातावरण मिला, उसमें पंडित जी के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

उनके सीधे, सरल एवं पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व के हम इतने निकट हो गये थे कि ऐसा लगता मानों वे हमारे अत्यंत आत्मीय हैं। उनकी प्रेरणास्पद वाणी, जो आज भी हमारे स्मृति- पटल में अंकित है, उससे हिंदी की सेवा का हमें चिरंतन पाथेय मिलता रहेगा।

अनन्य महानुभाव

● गोपालकृष्ण मोदी

पंडित नरेन्द्र शर्मा से प्रथम परिचय के समय मनमें एक ऐसी अनुभूति होती थी कि जैसे आज हमने एक अनन्य महानुभाव के दर्शन किये हों। उनकी यष्टिरचना ऐसी थी, प्रभावशाली और सुंदर मुखारविंद आंखों पर ऐनक रहते हुए भी उनके चक्षु निर्मल और तेजस्वी दिखाई देते थे।

अल्प वार्तालाप से भी सूक्ष्मदृष्टि, चिंतन और संतुलित विचार-शक्ति का परिचय होने लगता। वर्तालाप में अपने मंतव्य के समर्थन के लिए अनेक प्रमाण देकर वे अपना पक्ष सिद्ध करते थे। उनकी कोई भी बात वितंडावाद से अति दूर रहती थी। जिस अवसर पर एक वितंडावादी व्यक्ति उनके सामने उपस्थित होता था, तब उनके मन में ऐसे व्यक्ति के लिए सिर्फ दया और करुणा के भाव आते थे।

मेरे भतीजे का विवाह उनकी सुपुत्री वासवी के साथ होने से मेरा परिचय पंडितजी से प्रगाढ़ हुआ। बचपन से मेरे मनमें संस्कृत भाषा के प्रति आदर था, किन्तु पंडितजी के संपर्क के बाद वह आदर अनेक गुना बढ़ा और मुझे मानसिक संतोष और अभिमान हुआ कि मेरा निर्णय योग्य था। पंडितजी के परिचय से मैं यह समझने लगा कि वैदिक मंत्रों और उपनिषद के सत्यों का मुझे परिचय हो रहा है और उनसे मैं रहस्यों की प्राप्ति कर रहा हूं।

पंडितजी की मातृभाषा हिन्दी थी, जिसका आधार है संस्कृत, किन्तु जब वे अपना भाषण अंग्रेजी में करते थे, तो अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व और वैदिक संस्कृति की छाया स्पष्ट देखने में आती थी। इस प्रभुत्व का परिचय भारतीय तकनीक संस्थान (आय. आय.टी.) के तीन ज्ञान-क्षेत्रों में उन्होंने जो अर्थपूर्ण व्याख्यान दिये थे, वहां हुआ। तब मुझे प्रतीत हुआ कि भारतीय चिंतन को पंडितजी ने अपने अभ्यास द्वारा आत्मसात किया है। परिणामस्वरूप अक्षर और शब्द के पीछे छिपा हुआ गूढ़ार्थ प्रकट करने में उनको कोई कठिनाई का अनुभव नहीं होता था और सुनने वाले को आश्चर्य होता था कि यह गूढ़ार्थ वे लोग क्यों प्राप्त नहीं कर पाये?

भारतीय फलज्योतिष पंडितजी का एक प्रिय विषय था। वे नीरायन–शाखा के अनन्य उपासक थे। और इस शाखा पर इनकी गहरी श्रद्धा थी। मुझे लगता है कि ज्योतिष का अभ्यास पंडितजी ने बहुजन समाज के पीड़ित अज्ञानियों को दिशा दिखाने के लिए, धैर्य देने और परमात्मा पर इनकी श्रद्धा बढ़ाने के लिए किया होगा। मैं प्रत्यक्ष देखता था कि अनेक लोग उनके मार्गदर्शन से योग्य पुरुषार्थ प्राप्त करते थे, धैर्य धारण करते थे, संकटकाल से मुक्ति पाते थे। ज्योतिषशास्त्र के अभ्यास के परिणामस्वरूप वे पाप–ग्रहों के नाम से लोगों को कभी भयभीत नहीं करते थे, किन्तु इनके पीछे भी सृष्टिकर्ता का एक अटल नियम कार्यरत है, उसे समझाते थे।

मैं स्वयम् सायन–पद्धति का उपासक हूं। मेरे मंतव्य से पंडितजी अच्छी तरह परिचित थे, तथापि वैसे प्रसंगों पर वे अपनी सहिष्णुता और औदार्य दिखाते थे और अपने मंतव्य का सूक्ष्म दर्शन प्रकट करते थे। अगर मैं सच निकंला, तब वे मेरी प्रशंसा करते थे। 'नीर–क्षीर- विवेक' समझना एक महापुरुष का लक्षण है। और ये सारे लक्षण पंडितजी में विद्यमान थे, मैं इनका साक्षी हूं।

संस्कृत साहित्य केअलावा पंडितजी को आयुर्वेद में अत्यंत श्रद्धा थी। यह श्रद्धा दीर्घकालीन अभ्यास से उनमें उत्पन्न हुई थी। इस श्रद्धा के पीछे परंपरा का अंधानुकरण या अनुसरण नहीं था। मेरा अनुभव है, सुखी और धनी व्यक्ति सुवर्णकार की दिशा में जायेगा 'और दुःखी व्यक्ति उनमें भी जिनके स्वास्थ्य में विकृति प्राप्त हुई है– वो तो अवश्य ही वैद्य या ज्योतिष को ढूढ़ेगा।" इन दोनों विद्याओं की दीर्घकालीन साधना के कारण पंडितजी का मार्ग–दर्शन दुःखी लोगों के लिए समाधान का होता था। इन सारी सिद्धियों के बाद भी पंडितजी में मैंने लोकेषणा का भाव कदापि नही पाया। यौवनकाल में दारेषणा और वित्तेषणा से जो व्यग्रता आती है, उससे भी वे मुक्त रहे थे। पंडितजी की स्मृति के विषय में मेरा अनुमान रहा है कि उत्तर भारत के अनेक तथाकथित महानुभावों की विश्वसनीय जन्मकुंडली, जन्म समय, जन्मस्थल और जन्म दिनांक मुझे उस महानुभाव से प्राप्त हुए, जिससे मेरा अनुभव बढ़ा और अभ्यास में वृद्धि हुई। इस योगदान के लिए मैं उनका सदैव ऋणी

रहूंगा।

पंडित जी का विस्तृत अभ्यास संस्कृत और विशेषत: काव्य का रहा। इससे शास्त्रीय संगीत का अभ्यास और इनका प्रभुत्व पंडितजी ने प्राप्त किया। तथापि 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे भारतीय पौराणिक ग्रंथों पर पंडितजी का आधिपत्य विशिष्ट प्रकार का और असामान्य था। एक इनके ही प्रशंसक ने पंडित जी को "मूर्तिमंत अभ्यासतीर्थ "की उपमा दी थी। उनमें भी जब वे तुलसीदास कृत "रामचरित मानस" पर व्याख्यान करते थे, तब बहुजन समाज को भक्तिरस में लीन कर देते थे और चिंतनशील श्रोताओं को अपने विशिष्ट अर्थों में मंत्रमुग्ध कर देते थे। इस प्रकार की दक्षता और कौशल मैंने क्वचित ही देखी हैं। उनके व्याख्यानों की स्मृति अब भी मुझे प्रफुल्लित करती है।

ऐसे एक असामान्य व्यक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन का सुअवसर मिला' इसके लिए मैं परम कृपालु परमात्मा की प्रसादी के लिए परमात्मा का ऋणी हूं और ऐसे महानुभाव को श्रद्धांजलि देते समय मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि पंडितजी अब भी अंतरिक्ष से मुझे प्रेरणा दे रहे हैं। परम कृपालु परमात्मा इस दिव्य-ज्योति को सदैव अपने पास रखें और सायुज्य-मुक्ति प्रदान करें, ऐसी ही मेरी प्रार्थना है।

दिव्यात्मा

● जगमोहन रूंगटा

स्वर्गीय श्री नरेन्द्र शर्मा एक प्रखर विद्वान एवं सुलझे पुण्यात्मा पुरुष थे । उन्हें एक चलती फिरती डिक्शनरी कहा जाये तो अत्युक्त न होगा । सर्वदा दूसरों को उचित परामर्श एवं राय दी । शर्माजी को आयुर्वेद तथा ज्योतिष का भी पूर्ण ज्ञान था और बहुतों को अपने प्रकाश द्वारा यथोचित लाभ दिया ।

एक बार धार्मिक वार्तालाप के समय प्रश्न उठा कि चिता-भस्म का विसर्जन श्रेष्ठतर कहां हो? सुझाव श्री शर्मा जी का समुद्र का रहा, क्योंकि सभी नदियों का संगम समुद्र में होता है ।

चलचित्र उद्योग में उनका सराहनीय योगदान था । उनके निधन से एक बड़ी खोट फिल्म उद्योग में पड़ी और लंबी अवधि तक महूसस होती रहेगी ।

प्रभु इस दिव्य आत्मा को श्रेष्ठ लोक एवं शांति प्रदान करे ।

पुण्य-स्मरण

● कन्हैयालाल सेठिया

स्व. पंडित शर्मा सांस्कृतिक चेतना-पुरुष थे। उनसे मेरा प्रथम मिलन १९५१ में बंबई की एक कवि-गोष्ठी में हुआ था, जिसमें भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, नीलकंठ तिवारी कवि-बंधु उपस्थित थे।

बंबई-जैसे अति व्यस्त महानगर में पं. नरेन्द्र शर्मा का आत्मीय सान्निध्य मेरे लिए अत्यन्त प्रीतिकर था। उस समय वे शिवाजी पार्क में निवास करते थे और प्राय: हर रविार को मैं उनके यहां जाया करता था। उसी काल में उनकी कृति 'अग्निशस्य' प्रकाशित हुई थी। उन रचनाओं से मेरा गहरा जुड़ाव था। उनकी कृति "पलाशवन" के गीत भी मुझे बहुत प्रिय थे। एक अन्य कृति "प्रवासी के गीत" की कविता "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे..." भी मैं जब–तब भाव विभोर हो कर गुनगुनाया करता हूं।

वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने गद्य–पद्य दोनों में अधिकारपूर्वक लिखा। लंबे समय बाद जब मैं १९७१ में पुन: बंबई गया, तब तक वे अपने नव–निर्मित गृह में रहने लगे थे। मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनका पहला प्रश्न था कि "आजकल क्या लिख रहे हो" ? तब तक वे अपने मधुर गीतों के कारण जन–साधारण तक पहुंच चुके थे। उनका एक गीत "बादल दल–सा निकल चला ये दल मतवाला रे..." तो देश का मार्चिंग सॉंग बन गया था। जब कभी मैं उनके यहां जाता था तब प्राय: चाय पर गंभीर चर्चाएं होती थीं। वे भारतीय संस्कृति के जीवन्त प्रतीक थे। उनके पिछले वर्षों की रचनाओं में एक ऋषि-दृष्टि है जो व्यक्ति की चेताना को गहरे में स्पर्श करती है। भारतीय पौराणिक साहित्य के वे गंभीर अध्येता और मर्मज्ञ थे। इन दिनों दूरदर्शन पर प्रदर्शित होने वाले "महाभारत" के कथानक से तो वे भारतीय जन मानस में सदा के लिए अमर हो गये।

●

सहज-पुरुष नरेन दा

● डॉ. पद्मा 'सुधि'

तत्वदर्शी और क्रान्तिदर्शी कवि इस संसार में विरले ही होते हैं। अधिकतर स्वप्नदर्शी और तलदर्शी कवि ही देखे गये हैं। नरेन दा कर्म–भक्ति–ज्ञानयोग के समानान्तर उपासक थे। मैंने पन्द्रह दिन तक उनके घर रह कर उन्हें काव्य–सृजन की प्रक्रिया से गुजरते हुए देखा है। किस प्रकार वह योगनिद्रा की प्रक्रिया से इस धरती के कठिन धरातल पर आकर आफिस जाने की तैयारी में लग जाते थे। ''कवि एक जानाति कविजनः परिश्रमम्'' यह प्रक्रिया मुझे भी सृजन के समय घेरती है। नरेन दा के पास अथाह ज्ञान की पूंजी थी। दृष्टान्तों का उदाहरण देकर वह कोई भी समस्या सुलझा लेते थे। उन्होंने कई बार मेरे अंतःसंघर्ष में मुझे सहारा दिया। ''शरण और अशरण दोनों ही मनुष्य के भीतर हैं। कभी वह शरण में आता है और कभी अशरण के सामने निरीह असहाय होकर झुक जाता है, अपनी शरण में जाओ सुधि, तुम्हें सुख ही सुख मिलेगा।'' यह ''बुद्धं शरणं गच्छामि'' का महामंत्र उन्होंने ही मुझे दिया था। इस मंत्रसिद्धि के बाद मैंने कभी अपने को निःसहाय नहीं समझा और एक सशक्त व्यक्तित्व बन गई। नरेन दा ने औपचारिक रूप में चाहे संस्कृत–अध्ययन नहीं किया था, किन्तु उनका संस्कृत–ज्ञान भी अनन्त था। डॉ. मोतीचंदजी के अनन्य प्रशंसक थे वह। जब पुरातत्व विभाग ने १९५९ में ''चतुर्भाण'' ढूंढ निकाले तो नरेन दा ने मुझे बताया कि प्रकृति के गर्भ में न जाने कितना पुरातन संस्कृत–साहित्य और छिपा हुआ है। मैं भी नरेन दा को संस्कृत–साहित्य की विशेषताओं और सूक्ष्मताओं के विषय में बताती थी और बाद में पता चलता था कि वह इससे अधिक जानते हैं। इस प्रकार ज्ञानोपलब्धि मुझे अधिक प्राप्त हो जाती थी। वह भारतीय–संस्कृति के अनन्य उपासक थे। १९५९ या ६० में जब वह अमेरिका गये थे तो वहां से लौटकर उन्होने बताया कि अमेरिका कहाँ हमसे विशिष्ट है और हम उससे किस दिशा में वरेण्य हैं। संगीत और कृष्ण की भांति ताल देकर उंगलियों का ठेका देना उनकी आदत थी। ''द्रौपदी'' खण्डकाव्य उन्होंने लिखा और मुझे बताया कि उन्होंने किन प्रतीकमानों से द्रौपदी का चरित्र–निर्माण किया है। एक प्रति ''द्रौपदी'' की उन्होंने मुझे भेंट भी की

नरेन दा न झूठी श्लाघा करते थे और न कराते थे। वह कभी–कभी मजाक में कहते थे कि विवेकानंद का नाम नरेन्द्र था पद्मा। मैं

कहती थी "और आंपका नाम भी, धन्य हों विवेकानंद"। वह हँस देते थे। उनकी वृश्चिक राशि और मेरी सिंहराशि कई बार टकराई। किन्तु यह टकराहट सीमित थी। मुझसे २७ वर्ष बड़े थे नरेन दा, किन्तु मेरे धरातल पर आकर वह मित्रों-सी बात करते थे। कभी एक दम बड़े भाई बनकर गंभीर हो जाते थे, तो कभी मुझे अपने समकक्ष लाकर खड़ा कर देते थे। मैं उनकी गुण-ग्राहक थी और वह मेरे। स्पष्टवादी और सत्यवादी, बुरे को बुरा कहने वाले और अच्छे को अच्छा। वह अवश्य कवयित्रियों की कविता व गीतों के रसग्राही थे, किन्तु प्रलोभन या छलना और वंचना के वशीभूत नहीं। नारी को शक्ति मान कर उन्होंने नारी-जाति को सम्मान और स्नेह दिया, अवहेलना या शोषण नहीं। इस दृष्टि से सचमुच वह शक्ति के उपासक थे।

नरेन दा एक पत्नीव्रत तथा अपने कर्तव्यों के प्रति सजग थे। विद्वानों, पंडितों का यथोचित सम्मान करना और उनका संसर्ग उन्हें बहुत भाता था और राज (पावर) से उदासीन थे, किन्तु अत्यधिक स्वाभिमानी।

नरेन दा को मैं अपनी किशोरावस्था से ही जानती थी। उनकी पुत्रियां वासवी, मोंघी, लावण्या तथा पुत्र परितोष मेरे साथ क्रीड़ा-किल्लोल करते थे। चिरंजीव परितोष ५-६ वर्ष का था और मुझे 'पद्माडी" कहकर चिढ़ाता था और मैं उसे पहाड़ी कह कर हँस देती थी। एक हँसी-खेल और रस से भरा था जीवन और उनके घर का वातावरण। सुशीला भाभी उन्हीं के अनुरूप गुण-सम्पन्ना थीं। वह भी एक अच्छी कहानी-लेखिका हैं। नरेन दा ने अपनी भतीजी गायत्री को भी पाला-पोसा तथा उसका विवाह भी राकेश शर्मा जी से कराया, जो आजकल अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में रीडर के रूप में नियुक्त हैं। गायत्री भी मुझे बहुत प्यार करती रही। आधे दर्जन लोगों का परिवार और अर्जन करने वाला केवल एक! खर्चो की खींचातानी होती थी, जिन्हें सुशीला भाभी बड़े सहजरूप से निपटा लेती थीं। इतनी निस्पृहा स्त्री मैंने विरले ही देखी, जो पति के अनुरूप सरल, झूठे आडंबरों से दूर होकर सीधा-सादा जीवन बिताए! इस बात की साक्षी थी उनकी आलमारी, जिसमें गिनी चुनी ६-७ साड़ियाँ।

एक दिन मोती-मूंगे के हार पहने देख मैंने भाभी से पूछा कि

क्या आभूषणों की शौकीन हैं आप ? भाभी ने उत्तर दिया कि प्रत्येक पुत्री के पैदा होने पर नरेन दा ने उन्हें मूंगे, मोती और रूबी का एक-एक सेट उपहार स्वरूप दिया है। शायद भाभी की बारम्बार पुत्री होने की झेंप को नरेन दा ने उपहार भेंट कर मिटाया था और उन्हें प्रोत्साहित किया था ताकि उनके मन में हीन-भावना जागृत न हो जाये। कितना सौंदर्यमय व्यवहार था उनका ! ससुराल में सभी ही थे उनके, किन्तु नरेन दा बाहर से जितने रागमय दिखाई देते थे, भीतर से उतने ही वैरागी थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा खुर्जा शहर में स्वर्गीय जगदीशचंद्र माथुर (आई.सी.एस.) जो स्वयं एक ऐतिहासिक नाटककार और हिन्दी के साहित्यकार थे, उनके पिता की देख-रेख में हुई थी। न जाने माथुर साहब के पिता की पंडिताई से नरेन दा इतने प्रभावित क्यों थे कि सभी कायस्थ-परिवारों को वह सुसंस्कृत और ज्ञानी मानने लगे थे। इस भावना और संदर्भ को लेकर मेरे नौ भाई और माताजी तथा भाभियों से भी वह तथा उनका परिवार संयुक्त हो गया था सुशीला भाभी मेरी मां को अपनी सास मानती थीं। हमारे परिवार की संगीतमयी प्रवृत्ति से वह तथा उनका परिवार बहुत प्रभावित था। एक दिन सपरिवार मैंने नरेन दा को दिल्ली की चाट खाने का घर पर निमंत्रण दिया। उस दिन रवीन्द्र जैन (जो उस समय तक, फिल्मी दुनिया में आये भी नहीं थे) जो अभाग्य से अंधे हैं, उनको भी उनके मनोरजंन के लिए घर पर बुलाया। श्री रवीन्द्र जैन के संगीत के नव-रस तथा जिह्वा के षड्रस से ओतप्रोत नरेन दा उस दिन कितने खुश थे, मानों मेरा सारा परिवार और उसका अनुराग सभी उन्हीं का है। मेरे भाइयों और परिवार ने यदि किसी कवि को पसंद किया, तो वह नरेन दा ही थे।

मेरे विवाह पर मेरी सौंदर्य-अभिरुचि देखते हुए उन्होंने ललित-कला अकादमी से प्रकाशित राग-रागनियों की एक विशाल पुस्तिका भेंट की। १९५६ से लेकर १९६२ तक का सामाजिक परिवेश इतना आडम्बरहीन था कि तब सभी कवि और साहित्यकार सहज रूप में परस्पर मिलते थे। न कोई बड़ा था और न कोई छोटा। मैं अठ्ठारह वर्ष की थी किन्तु मुझे सभी ने, श्री बच्चनजी, सुमित्रानंदन पंत, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, महादेवीजी, भगवती चरण वर्मा जैसे महान कलाकारों ने मान्यता देकर अपने समकक्ष ला खड़ा किया था।

विवाह से पूर्व, मेरे वर को देखने कई साहित्यकार पहुंचे थे। नरेन दा और अमृलाल नागर ने भी मेरे भावी पति को देख कर अपनी हरी झंडी लहरा दी थी। संकोचवश श्रीमती तेजी बच्चन के पूछने पर कि मेरा विवाह होने जा रहा है, मैंने सरासर झूठ बोल दिया था "नहीं तो"। विवाह के बाद वह इस बात पर नाराज ही रहीं। नरेन दा के एक गुण ने मुझे बहुत प्रभावित किया था, वह था जीवन में सहजता। अन्त में सहज शब्द से ही प्रभावित हो मैंने सहजोदर्शन का भी ज्ञान प्राप्त किया। विवाह से पूर्व और उपरान्त मैं उन्हें दिल्ली में मिलती रही। बंबई में भी मेरे मामा के घर नरेन दा मुझसे मिलने आते रहे।

अमेरिका से लौटकर मुझे अपनी आयातित इटेलियन कार लेने के लिए बंबई जाना पड़ा। कस्टम वालों के अनुसार हमारा काम चार दिन में समाप्त होने वाला था, किन्तु जहाज अभी तक नहीं आया था। मैं और मेरे पति नरेन दा और भाभी का आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर रहे थे। अचानक "मन्ना" (मेरे पति डॉ. वीरेन्द्रनाथजी) फ्लू से पीड़ित हो गये और उन्हें १०४ बुखार हो गया। इलाज तो वैद्यनाथ श्री नरेन्द्रजी का चल रहा था। जिस सहजता से भाभी ने अपने "कुँवरजी" की जो सेवा की, वह देखते ही बनती थी। मेरे पति के सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखना, उनके खाने- पीने का ध्यान रखना, मुझे भी खुश रखना। कितनी सेवा की थी हम दोनों की ! आज तक इसी बात के लिए दोनों की मैं आभारी हूं। इस बीमारी से पतिदेव काफी कृशकाय हो गये थे। बीच-बीच में, श्री जयराज, कृष्णा, राजकपूर और उनके बच्चे भी हमें देखने आते। पद्मा खन्ना तथा किशोर कुमार सभी फिल्मी हस्तियां उनके घर आतीं और हमें शुभकानाएं देतीं। मैं इस परिवार की एक बड़ी बहन बन गई थी और परितोष और तीनों बहनें अपने जीजाजी के संसर्ग में कभी पिक्चर, तो कभी पार्कों में घूम रहे थे। आनंद ही आनंद था। इतना कुछ पाकर क्या मैं इस परिवार को भूल सकती हूं ? अंतरमन की सभी सीमाएं टूट गई थीं, आत्मा विस्तारित थी और प्रेम भी विस्तारित।

१९७० में हमारा स्थानान्तरण गोरखपुर से पूना हो गया, मिलीटरी एरिया में जहां मुझसे मिलने २-३ बार श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार, श्री सत्यकाम विद्यालंकार और डॉ. प्रभाकर माचवेजी आये। मैंने

पत्र लिखकर पूज्य भाभी व नरेन दा को कई बार बुलाया, किन्तु निरुत्तर ! १९६८ से १९७७ तक मैं तीन बार उनसे मिलने गई, किन्तु घर पर नरेन दा नहीं मिले। निराश-हताश भाभी से मिलकर चली आई। तीनों बहनों के विवाह हो चुके थे और उनकी सन्तानें भी हो चुकीं थीं। घर एकदम शांत रहता था। न चहल-पहल, न पहले जैसा रस ! केवल भाभी, अकेली भाभी। सभी बहनों के "ऐनकडोट" सुनाती थीं और मैं भी इस अकेलेपन से दुखी वापिस आ जाती थी। फिर भी भाभी नानी बनकर भारी-भरकम हो गई थीं। मैं भी अपनी बेटी के पालन-पोषण तथा पूना यूनिवर्सिटी के रिसर्च प्रोजॅक्टों में मग्न। १९७९ से झेलम गाड़ी शुरू हो गई थी, जिससे पूना वालों को दिल्ली जाने के लिए बंबई नहीं आना पड़ता था। १९८२ तो वीसा बनाने के लिए बंबई गई थी, क्योंकि अमेरिका विज़िटिंग प्रोफेसर बनकर पढ़ाने जा रही थी, किन्तु उसके लिए भी सबेरे जाकर शाम को पूना भाग आती थी। कितनी कोशिश की कि बंबई जाऊं और भाभी से मिलूं।

१९८८ को जनवरी-फरवरी में नरेन दा श्री बी.आर. चोपड़ा के साथ 'महाभारत' के लिए भाण्डारकर इन्स्टीटूट आये थे। उसी दिन मैं अवकाश लेकर घर बैठी थी। बहुत दुख हुआ कि नरेन दा इतने निकट आये और मैं फिर भी मिल नहीं पाई। १२ वर्ष हो गये थे उन्हें देखे हुए। शायद वह भी आशा लेकर आये थे कि मुझसे भाण्डरकर में मिलें। भाभी ने मिलने पर बताया कि ३ वर्ष पूर्व भी वह पूना पन्द्रह दिन रहकर गये और मेरा पता खो जाने के कारण मुझसे मिल नही पाये। यह सब दुःख मुझे अकेले भोगना पड़ा, क्योंकि इसी मायावी संसार में मैं कितना खो गई थी ! प्रायश्चित हुआ। बहुत दुःख हुआ।

मैंने १९८८ के मई माह में सारे बंधन तोड़े और अपनी दोनों पुत्रियों को लेकर बंबई पहुंच गई। मुझे इस बार अवश्य मिलना था नरेन दा और भाभी से। भाई विनोद भोजानिया ने हमें अपना अतिथि बनाया और मेरे लिए एक ड्राइवर और कार तैयार थी। बंबई मैं दोपहर को पहुंची और संध्या को मैं भाभी के पास। परितोष को तो मैं बिलकुल पहचान नहीं पाई। परितोष एक सुन्दर नवयुवक के रूप में मिला। चाँदी-सा परितोष मूंछ-मुछन्दर हो गया था। वह 'पद्माड़ी' को पहचान गया था। भाभी ने बताया कि वे बी.आर.

चोपड़ा के साथ "महाभारत" के निर्माण-कार्य में लगे हुए हैं। शायद रात को ही भेंट हो सके। असमंजस में पड़ गई। किन्तु सोचा कि मुझे हर हालत में उनसे मिलना है। थोड़ी देर भाभी और परितोष से बातचीत करके समय बिताने के लिए बच्चियों को लेकर मैं लिंक रोड पहुंची। उनकी पसंद की शॉपिंग कराई। श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव भी नरेन दा से मिलने आये थे। भाभी ने बताया उनकी भी भेंट नहीं हो पाई। वह नरेन्द्र दा पर फिल्म बनाना चाहते थे। पता नहीं नौ बजे रात्रि को मिल पायेंगे या नहीं। किन्तु भाग्य प्रबल था। नरेन दा घर आकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। नरेन दा मिलते बिलकुल उसी सहजता से, जैसे १९५६ में मिले थे। देशान्तर और समयान्तर की दूरियां मिट गई थीं एक क्षण में ही! लोगों की दृष्टि में वह वृद्ध थे, किन्तु पान चबाते हुए मुझे बिल्कुल वैसे ही लगे जैसे १९५६ में थे। वैसे ही तेजस्वी और भेदभाव रहित! मुझे देखते ही बोले- "मैं इतने दिनों से सोच रहा था कि ये लड़की कहां चली गई? इतनी शक्ति-सम्पन्ना थी, कलाकार थी, कुछ कर भी रही है या नहीं?" मैंने झट से उन्हें अपनी सद्यः प्रकाशित अंग्रेजी की चार पुस्तकें दिखाईं। हिन्दी की भी इस बीच आठ पुस्तकें छप गई थीं। जब मैंने उन्हें यह जानकारी दी तो उनकी बांछे खिल गई। बोले- "मुझे मालूम था कि तुम कभी सृजनहीन होकर नहीं बैठ सकतीं। मैं बहुत खुश हूं कि सृजन में ही है।" फिर मेरी दोनों पुत्रियों की ओर देखकर बोले- "वाह, वाह। मुझे बेहद प्रसन्नता है पद्मा कि तुम्हारी लड़कियों का पालन-पोषण पूना में हो रहा है- भारतीय संस्कृति का सबसे सुन्दर केन्द्र। बहुत अच्छा शिक्षण हो रहा है। तद् -उपरान्त उन्होंने पद्मजा और आत्मजा से बातें कीं। उन्हें बातें करते-करते दर्शन की ओर ले गये। स्त्री-शक्ति की आशावादिता में ही जीवन और संसार की आशावादिता है। इत्यादि-इत्यादि। उसके बाद नरेन दा कला-संसार की ओर बढ़े और उनके हिन्दी-अंग्रेजी के गाने सुने। बारम्बार उनकी सादगी और सरलता से प्रसन्न हुए। भाभी ने भी मेरी दोनों बेटियों से बातचीत का सूत्र बांधा। उन्हें हमारे संबंधों के बारे में बताया अपने दौहित्रों के विषय में बच्चों के मुख से विस्तृत घटनास्पद रोचक किस्से सुनाती रहीं। नरने दा बच्चों की ओर उन्मुख हो कर बाले- "तुम्हारी भाभीजी बहुत बड़ी चित्रकार हैं"। फिर तो क्या था चित्रकारी के नमूने पेश होने लगे और दोनों पुत्रियां बेहद खुश! भाभी दोनों बच्चों को दूसरे कक्ष में ले

गई। नरेन दा मौका पाकर चुपचाप बोले– "पद्मा तुम सिंह राशि की हो न ? आजकल सिंह राशि वालों के लिए दिन अच्छे नहीं हैं। अपने को बचाना, कोई भी रक्त रुकावट और भावना–घात का कारण पैदा हो सकता है और तनाव के कारण किसी भी बीमारी का शिकार हो सकती हो। मई १९८९ के बाद तुम्हारे दिन चार वर्ष तक बहुत बढ़िया आ रहे हैं। तुम फिर विदेश जाओगी। तुम्हारी यात्राएं शुरू हो जायेंगी।"
मैंने अपने पति के पेट की खराबी के बारे में बताया तो उन्होंने झटपट कागज लेकर एक आयुर्वेद का नुस्खा दे दिया। अपने पाठकों को उनकी सद्यः स्नात आशु–वैद्यकर्म से वंचित न रखूं इसलिए उनका यह नुस्खा नीचे दे रही हूं। पाठक भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं। यह दवाई ३५ दिन की खूराकों में बांटने के लिए बताया गया नुस्खा इस प्रकार है :-

जटमासी १० ग्राम, शंखपुष्पी १० ग्राम, ब्राह्मणी चूर्ण १० ग्राम, माकांग्नि १० ग्राम, ज्योतिष्मती (खड़ी साखर) ७० ग्राम, आरोग्यवर्धिनी ५० ग्राम, आम्लचूर्ण १०, प्रवालपिष्टी १० ग्राम, कुढ़जलोह १० ग्राम।सबका पाऊडर बनाकर ३५ खूराकें बनायें। अत्यधिक प्रयत्न करने के बाद भी मैं सभी चीजें एकत्रित नहीं कर पाई। किन्तु उनकी भविष्यवाणी की ओर सजग रही।

दिसम्बर में हिमालय–भ्रमण करने के उपरान्त मेरी तबीयत खराब होने लगी। जनवरी में ही मेरी नाक में क्राईब्रोसिस रोग होने के कारण उसका ऑपरेशन हुआ और एक मास बाद नाक के उस विषबीज को डाक्टर कुरेदता रहा, जब तक वह जड़ से से नहीं उखड़ गया। उसी के उपरान्त घर आकर मुझे अनायास १९०–१४० ब्लडप्रेशर हो गया और सोते–सोते चक्कर आने लगे। सारे ही स्वास्थ्य–संबंधी परीक्षण हुए और फिर पाया गया कि मेरे हृदय की गति स्वभावतः तीव्र है और मुझे एन्जाईन है (हृदय–पीड़ा) इसके लिए मुझे एक दम आराम करना पड़ेगा। प्रूफ रीडिंग बंद हो गई आफिस जाना बंद और परहेजी भोजन। यह बात मुझे ९ फरवरी १९८९ को मालूम हुई। इन सब घटनाओं से प्रभावित हो मैं निरन्तर नरेन दा की भविष्यवाणी के विषय में सोच रही थी कि उन्होंने मुझे सावधान किया था। सोचा उन्हें पत्र लिखकर खबर दूंगी। किन्तु १–२ दिन बाद वह मुझे सावधान करके स्वयं चले गये।

अचानक टी.वी. में उनके निधन का समाचार मिला। मेरा भविष्यवक्ता सदा के लिए चुप हो गया। मैं सबको आमंत्रण दे कर आई थी और उन्होंने मुझसे कहा था कि उन्हें भांडारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट के लिए पूना आना है। वे सभी पूना आकर मेरे घर ठहरेंगे। मैं प्रतीक्षा करती रही। सोचती रही जो आतिथ्य उन्होंने मुझे दिया उसको उनके आने पर चुका दूंगी। किन्तु उन्होंने मेरा आतिथ्य स्वीकार नहीं किया और अन्तहीन यात्रा पर निकल गये। यह कांटा मुझे चुभ रहा है। और चुभता रहेगा कि जिस सहजता से उन्होंने मुझे भविष्य के संकट से सावधान किया था, उसी सहजता से केवल अल्प काल के हृदय-रोग के उपरान्त ही वह चले गये। मैं सो नहीं पा रही हूं। हृदय में ही रो रही हूं, अपनी हृदय-पीड़ा के कारण नहीं, किन्तु इसलिए कि जो लोग मेरे हृदय से परिचित थे, वे एक के बाद एक सभी मुझे छोड़ कर जा रहे हैं। मेरी भावनाएं अब यह हृदय-संवाद किससे करेंगी ?

"श्रद्धेय"

● पद्मिनी संघवी

श्रद्धेय पंडितजी के बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना ही होगा। अतः जो कुछ कहूंगी, वह अपने "पापाजी" के बारे में ही होगी। जहां तक श्रद्धा का सवाल है, पापाजी के तुल्य तो बहुत विरले ही होंगे, जो उनके समकक्ष आ सकते हैं। यहीं आकर वर्णन की तकलीफ खड़ी हो जाती है कि कहां से आरंभ किया जाये? क्योंकि, जिस तरह शास्त्र में नेति-नेति कहकर वर्णन मिलता है, यदि उस तरह मैं कुछ कहना चाहूं तो न्यायोचित न होगा। अतः मानव-समर्थ शब्दों के माध्यम से प्रयास करूंगी कि मैं ऐसे देवपुरुष के विषय में कुछ तो कह सकूं।

जब भी कभी जीवन के प्रश्नों से उलझ कर मन व्यथित हुआ, मुझे सर्व प्रथम पापाजी का घर याद आया और सदैव मैं और मेरी पुत्री दौड़कर उनकी गोद में उनके पवित्र प्रेम की गंगा में नहाकर स्वच्छ हो आये। जब-जब उनके समीप बैठे, उनके पवित्र-प्रेम-रस आस्वाद कर हृदय के मैल को धो सके। इतनी सहजता से उनके आशीर्वाद प्राप्त होते और मन भर जाता। कई बार अपने स्वास्थ्य के प्रश्नों को हल करने दौड़ी और उनकी शरण में तत्क्षण कुछ न कुछ नित्य पाकर ही आयी।

एक और अनुभव हुआ हमेशा। श्रावण मास में जब-जब मेरे यहां कदंब के फूल आये और मैंने उन्हें भिजवाये, तो उनमें इतना ही आनंद फूटता हुआ पाया कि जितना "श्री कृष्ण" को कदंब फूलों को पाकर हुआ करता होगा। श्री कृष्ण को तो सशरीर मैंने नहीं देखा, किन्तु पापाजी के आनंद के भाव को हमेशा सहेजकर-संजोकर रखा है और इसी से अंदाजा लगा सकती हूं कि आनंदानुभूति क्या होती है?

कुछ और अनुभवों की लड़ियां चलचित्र-सी मेरे चक्षुपटल पर लहरा रही हैं, किन्तु वे इतनी अनगिनत हैं कि कहां से आरंभ करूं? परन्तु जो भी कुछ कह सकूंगी, उसे आपके समक्ष लाने की कोशिश करूंगी।

जब कभी कोई पुस्तक पढ़ते हुए अर्थों का घटन कठिन लगा कि दौड़कर पहुंचे पापाजी से पूछने और वहीं शांत हो गये सब

प्रश्न ? 'ॐ' की तरह पूर्ण और शून्य की तरह अनन्य पापाजी की आत्मा सदैव की तरह मुक्त रही और मुक्त है। उससे ज्यादा कुछ भी कहना, इतना ही कठिन होगा कि जितना सूर्य को प्रकाश दिखाना। अतः अंत में एक बार मैं और कहूंगी कि सर्वसमर्थ हमारे पापाजी की छाया हम सब पर आज भी उतनी ही है कि जितनी कभी उनके जीवित होते हुए होती थी। मैं तो उन्हें कहीं खोया हुआ पाती नहीं। वे सदैव हैं और रहेंगे नित्यमुक्त ॐ आनंदम्।

श्रद्धांजलि

● रमा वालिया

नरेन्द्र जी एक कवि तो थे ही, किंतु उसके साथ-साथ वे एक प्रखर ज्योतिषशास्त्री, वैद्य, मनोवैज्ञानिक एवं पूर्ण रूपेण तत्वज्ञानी भी थे। एक ही व्यक्ति में इतने सारे गुण, एक साथ आत्मसात् हुए हों, ऐसा बड़ी मुश्किल से देखने को मिलता है। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसी वस्तु थी जो सबको उनसे अति समीपता से बाँध देती थी। उनका समग्र व्यक्तित्व कुछ ऐसा प्रकाशमय था कि उनका माधुर्य उनके समीप सबको एक अजीब आकर्षण से खींच ले जाता था। उनके पास बैठकर अध्यात्म की बातें सुनने का मन होता था। उनके सात्विक व निर्मल-पवित्र मुखार्विंद पर एक अजीब आभा छलकती थी।

वेद-पुराण और शास्त्रों के निचोड़, कुछ इतनी सरल भाषा में देते कि सीधे हृदय में उतर जाते। स्वयं की अनुभूति में आया हुआ ज्ञान, चिंतन या मनन से उपजा हुआ ज्ञान उनके स्वयं के जीवन को चरितार्थ करता था। ऐसे ज्ञानी, संत, एवं तत्वचिंतक के साथ मुझ-जैसी गृहणी को चर्चा करते हुए संकोच हुआ करता था, किंतु उनके सरल व निर्मल स्वभाव ने मेरा संकोच दूर कर दिया। मेरे प्रश्न अत्यंत प्रेम से सुनते। घर पहुंचती तो खड़े होकर कहते "आइये रमाबहन"। वो सत्कार-माधुर्य, और उनके शब्दों की प्रतिध्वनि अभी भी मेरे कानों में गूंजती है। उनके उस स्वर झंकार में जो आत्मीयता और प्रेम जितना ओतप्रोत रहता था वह कहना कठिन है। मेरे पिता जितना प्रेम यदि किसी ने मुझे दिया हो तो वो भी नरेन्द्र जी ही थे।

उनके साथ की चर्चा में मेरा एक ही प्रश्न होता था, क्योंकि वो थोड़े में बहुत समझ लिया करते थे। मुझे मेरे प्रश्न के सब जवाब थोड़े में ही मिल जाते थे। उन्हें ये सब कैसे मालूम पड़ता था? एक बार मैंने उनसे पूछा कि मेरे प्रश्न करने से पहले ही आप उनका जवाब किस प्रकार दिया करते हैं? तो उन्होंने जवाब दिया कि "ये तो आपका वाइब्रेशन काम करता है, मैं तो तालाब में एक कंकड़ डालता हूं और उससे वहां वर्तुल होता है," ऐसी थी उनकी नम्रता, सरलता, जैसे कोई मेगनेट हो। कृष्णमूर्ति और नरेन्द्र जी, ये दोनों तत्वचिंतकों पर मुझे इतनी श्रद्धा है कि जितनी किसी और पर नहीं।

कोई प्रश्न जब बहुत जटिल होता तो वे कहते "क्यों इस सब झंझट में पड़ती हो, जो छोड़ना चाहिए, वो सब छोडते जाओ और जो बाकी बचेगा, वही है "सत्य" और वही है "आत्मा का स्वरूप।" ऊँकार मंत्र के विषय में उन्होंने इतना सरल और गूढ़ अर्थ समझाया, जिसे मैंने इतने दिनों में बिना समझे ही जपा। वे हमेशा कहते कि "जीवन में बिन्दु की भांति ही रहना, रेखा मत बनना और यदि रेखा बन जाओगी तो बिखर जाओगी।" इस प्रकार मेरी उल्टी सीधी-विचारधारा को शुद्ध मार्ग पर ले जाते।

एक बार मैं बहुत ही डिप्रैशन में थी और मुझे लगता था कि मैं पागल हो जाऊंगी। उस समय मेरी मित्र शीला राजेन्द्र ने कहा कि "आप अपनी बात नरेन्द्र जी से कहिये, और वे आपकी समस्या का समाधान समझा देंगे।" आप मानेंगे नहीं कि जब उनके घर से बाहर निकली तब पूर्णतः स्वस्थ होकर निकली। उनके साथ दो घंटों तक बातें करती रही और मुझसे जरा भी परेशान हुए बिना इतने प्रेम से मेरी बातें सुनीं, और इतनी अच्छी तरह मुझे समझाया कि मैं मेरे डिप्रैशन से बाहर निकल आई और अपने-आप को बचा पाई।

एक बार मेरे पुत्र का "बायपास" ऑपरेशन किया जाने वाला था, तब वे अत्यंत व्यस्त थे और उन्हें पूछे बिना मैं निर्णय नहीं ले पा रही थी, तो मैंने उन्हें फ़ोन किया। उन्होंने कहा कि मैं उन्हें फ़ोन पर ही अपने बेटे की कुंडली बताऊँ, उसी प्रकार मैंने किया भी और उन्होंने तुरंत जवाब दिया कि "आप जरूर ऑपरेशन करवाइये, कोई खतरा नहीं है और हिम्मत से काम लें" उनके इन शब्दों से मेरा खोया हुआ आत्मविश्वास वापस प्राप्त हुआ। हम जो ज्ञान जोड़-तोड़ कर भी इकट्ठा नहीं कर पाते, अंतकाल में भी जो नहीं पा सकते, वो उनके चिंतन-मनन किये हुए प्रकाश रूपी ज्ञान, उनके व्यवहार में इतनी सरलता के साथ प्रकट होता था। उनकी लेखनकला में ये सब आनंदरस प्रकट रूप से प्रकाशित होता था।

उनके घर का वातावरण इतना शांतमय, एवं प्रेम से पूर्णरूपेण

भरा हुआ रहता था कि श्रद्धा से अपना सिर नमन करते हुए जाएं। मैं जब सिर झुकाकर प्रणाम करती तो वो भी इतना ही झुकते, और चरर्णस्पर्श का सौभाग्य लेने ही न देते। एक दिन जब पूजा में से उठे और बाहर आये, तब मैंने जबरदस्ती उनके पांव पकड़ लिये। मेरी पंद्रह साल की इच्छा पूर्ण हुई। मेरे चरणस्पर्श का आग्रह इसलिए था, क्योंकि उनकी पवित्रता, निर्मल प्रेम, एवं करुणा का थोड़ा भी अंश यदि मुझमें आ सके, तो अपने-आपको धन्य मानूं। संतजन के हाथ व पांव जिस शक्ति के स्रोत का वहन करते हैं, यदि उसके थोड़े से छीटें भी मुझे मिल जायें, तो काफ़ी हैं। उनकी पत्नी सुशीलाबहन साक्षात लक्ष्मी का अवतार लगती हैं। केवल रूप में ही नहीं, किंतु गुण में भी वे साक्षात् अन्नपूर्णा है। उनके यहां रोज़ ही कितने मेहमान आते-जाते रहते हैं और उन सब के लिये हंसते हुए चाय-पानी, नाश्ता वगैरह सदैव हाज़िर रहा है। सांसारिक जिम्मेदारियाँ उन्होंने इतनी सहजता से अपने ऊपर ले ली थीं कि श्री नरेन्द्र जी को कोई चिंता नहीं करनी पड़ती थी। सुशीला बहन के व्यक्तित्व में नम्रता और संतोष प्रकट होता था और वैसे ही संस्कार उनके बच्चों में भी देखने को मिलते हैं।

मैंने तो अपने पितातुल्य गुरु खोये, चाहे वे पार्थिव देह से हमारे पास नहीं, किंतु उनका मुखार्विंद और तेजोमय मुखार्विंद और उनका प्रेम और उनकी तेजस्विता का खजाना सदा ही मेरे पास रहेगा।

एक श्रेष्ठतम् व्यक्ति

● डॉ. राजकुमार निगम

पंडित नरेंद्र शर्मा के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे १९६० के दशक में मिला और तभी से उनके दिल्ली से बम्बई स्थानांतरण होने पर भी मेरा उनसे मिलना बराबर बना रहा। मेरी उनसे अंतिम भेंट उनके स्वर्गवास के करीब पांच महीने पहिले, सितम्बर १९८८ में हुई थी। अन्य तमाम भेटों की तरह यह भेंट भी अत्यंत रोचक थी। पंडित जी एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें सात्विक गुणों से परिपूर्ण कहा जा सकता है। वे सात्विक गुणों की खान थे। उनकी विनम्रता, प्रियवादिता, एवं उदारता, उनका सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति निस्वार्थ प्रेम,उनकी कर्मनिष्ठा, समाज सेवा की भावना, प्रगतिशीलता तथा धर्म-निरपेक्षता के साथ- साथ हिन्दू सनातन धर्म में अटूट विश्वास, धर्मशास्त्रों से लेकर दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं साइंस व टेकनॉलॉजी; कोई भी विषय हो उनके पांडित्य ज्ञान आदि का अभ्यास उनसे थोड़ी देर में ही स्पष्ट हो जाता था। उनका ज्योतिष शास्त्र, खगोल विद्या तथा आयुर्वेद का अध्ययन भी बड़ा गहन था। सर्वोपरि वे देश के गण्यमान्य लेखक, कवि और गीतकार तो थे ही हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त उनकी अंग्रेजी व उर्दू के साहित्य में भी बड़ी अभिरुचि थी। वे देश की राजनीति में भी सक्रिय रह चुके थे उस समय जब स्वतंत्रता आंदोलन और अंग्रेजी शासन का दमनचक्र अपनी चरम सीमा पर था। लोग देश की राजनीति में थोड़ा - सा भाग लेने में ही ब्रिटिश सरकार के शिकार हो जाते थे। फिर पंडित जी तो एक समय पं. जवाहरलाल नेहरू के सेक्रेट्री रह चुके थे तो वे दमन चक्र से कहां बच पाते ? बाद में देश के स्वतंत्र होने पर जब पदलोलुपता ने सभी नेताओं तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को अपनी लपेट में ले लिया था, गांधी जी के शाश्वत आर्दशों में आस्था रखने के नाते उन्होंने अपने पिछले राजनैतिक बलिदानों या योगदानों के एवज में किसी प्रकार के सरकारी पद एवं आर्थिक लाभ उठाने का कोई प्रयत्न तो क्या, कल्पना तक भी नहीं की। वरन् उन्होनें अपने को पूर्णतया साहित्य-सृजन में तथा आकाशवाणी के माध्यम से जनता के मनोरंजन के लिए "विविध भारती" जैसे प्रोग्राम बनाने में लगा दिया और हाल में दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले "महाभारत" सीरियल के परामर्शदाता, कथावस्तु तथा गीतों के संयोजक के नाते उन्होनें देश के जन-जीवन पर अपनी एक ऐसी छाप छोड़ी कि जिसका अनुभव वर्षों तक देश की भावी पीढ़ियाँ करती रहेंगी। इसी प्रकार एच. एम. वी.

के लिए "तुलसीकृत रामचरितमानस" से अत्यन्त मार्मिक चौपाइयों का चयन किया, जिन्हें मुकेश जी और मन्ना डे जी ने गाया है, यह उनकी एक बड़ी देन है ।

पंडित जी के तमाम गुणों को संक्षेप में ही वर्णन करने में पृष्ठ भरे जा सकते हैं, तब भी लेख अधूरा रहेगा । इस पृष्ठभूमि में मैं इस संस्मरणीय लेख में उनके संबंध में उनकी दो बातों का जिक्र करना चाहूंगा ।

पंडित जी की विनम्रता तो अत्यन्त अदभुत थी । अनेक बार ही उनके यहां बंबई में मेरा जाना हुआ । उनके यहां मुझे अनेक कलाकारों, साहित्यकारों को जानने व मिलने का सुअवसर मिला । इन महान व्यक्तियों से नरेन्द्रजी जब मेरा परिचय कराते तो वे ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया करते कि औरों को मेरा उनके परिवार के एक सदस्य होने का आभास होता था तथा ऐसे लगता था कि जैसे वे देश के एक प्रमुख प्रगतिवादी अर्थशास्त्री को उन लोगों से मिला रहें हो । कई एक बार मेरा जाना उनके यहां हुआ जब सुप्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर उनसे परामर्श करने आई हुई थीं । पंडित जी फर्श पर बैठे हुए उन्हें परामर्श दे रहे थे उनके बारे में या किसी गीत या कथा प्रसंग के संबंध में । उनके परामर्श देने में विनम्रता थी और वे आदरस्पद भाव से "लता जी" करके ही संबोधन करते थे। बाद में मेरे पूछने पर उन्होनें कहा, "नारियाँ लक्ष्मी और जगदम्बा रूपा हैं । अत: उनके नाम के साथ "जी" (आदर) का लगाना सर्वथा उचित है तथा उन्हें ऊँचा आसन देना भी ?" सच में यह कितना भिन्न अनुभव है , जबकि लोग स्त्री की कमियाँ ही देखते हैं । उनके चरित्र पर छींटाकशी व चोट करते हैं । पंडितजी उन्हें देवीं मानते थे । पंडितज़ी की विनम्रता उनके परिवार के हर सदस्य में भी देखने को मिलती है ।

पंडित जी के उपकारों से शायद ही उनके सम्पर्क में आनेवाला कोई वंचित रहा होगा । सहज में ही लोगों की समस्याओं का, उनकी शंकाओं, विडंबनाओं का समाधान कर देते थे, जिसे सोचकर बाद में लोग पंडितजी को कोटि -कोटि धन्यवाद देते थे, मेरे ही जीवन में कई बार गंभीर परिस्थितियाँ आईं । उस अवसर पर पंडित जी की राय, ज्योतिष से निकाला हुआ भविष्य फल, बिलकुल सही

सिद्ध हुए और संकट के समय मुझे पंडितजी के बताये हुए मत से बल मिला । उनके अनेक उपकारों में एक उपकार विशेष उल्लेखनीय है । उनकी ही प्रेरणा तथा मत से अपने फार्म की जमीन पर गुड़गाँव के निकट हम काटीपुरी में भगवान शिव का मंदिर बना सके, जो हर दिन लोगों की धार्मिक आस्था बढ़ा रहा है। पंडित जी ने इस मंदिर को कल्पेश्वर महादेव की संज्ञा दी। श्री कल्पेश्वर महादेव के स्वरूप की व्याख्या उन्होनें करीब एक घंटे तक ऐसे गहरे व शाश्वत् शब्दों में की वह आज भी मेरे कानों में गूंजती है । उसका दिव्य प्रकाश हर समय मेरे सामने रहता है।

पंडितजी पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी समाजवाद में अटूट विश्वास रखते थे। वे पूंजीवाद व साम्राज्यवाद के कड़े आलोचक थे और जब भी इस विषय पर बात होती, उनका दृष्टिकोण विश्वव्यापी होता तथा भारत के इतिहास की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर भी ।

मेरे मत में पंडित जी के अनेक शाश्वत् रूप थे और वे एक से एक बढ़कर तेजपुंज थे । उनका हर रूप, हर विचार आज और भविष्य में भी मेरा मार्गदर्शन करता रहेगा। मेरा ऐसा मत एवं विश्वास है कि केवल मेरे ही नही, वरन् अन्य सभी लोगों के जीवन में भी जो भी उनके संम्पर्क में आये हैं - पंडित जी के अनेक रूप, विचार और मत सत्य सिद्ध होंगे ।

चरणांजलि

● राजकमल

हमारे महान भारत देश के महान विद्वान परम् तेजस्वी परम् श्रद्धेय एवम् परम आदरणीय पंडित श्री नरेन्द्र शर्माजी के बारे में कहना या लिखना मेरे लिये बहुत कठिन कार्य है । फिर भी पंडित जी के आशीर्वाद से कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूं । प्रथमतः, मैं हमारे देश के साहित्य के पितामह को शत्-शत् नमन कर, प्रणाम करता हूँ ।

पंडित जी द्वारा उचित गीतों को स्वरबद्ध करना एवम् गाना यह मेरे लिए सुखद अनुभूति एवम् परम् सौभाग्य की बात है । पंडित जी के जाने से जो क्षति देश के सहित्य जगत को हुई है, उससे कहीं अधिक हमारे बी. आर. टी. वी. के "महाभारत" को हुई है, क्योंकि, "महाभारत" जैसे महान कथानक को जिस तरह पंडित जी ने रूप दिया, वह असाधारण है । उनकी अनुपस्थिति सदैव हम सबको रहेगी और अब हम उनके आशीर्वाद से इस महान कथा को (पंडित जी के शब्दों में) "अथ से इति..." तक ले जायेंगे, यह हमारा पूर्ण विश्वास है । कृष्णः ॐ कृष्णः वंदे जगत्गुरुम् ।

●

"श्रद्धा-सुमन"

● रुक्मनीदेवी

आज जब वर्ष ८९ के जून माह में पंक्तियों को लिखने बैठी हूं, तो स्मरण हो आता है ८८ का जून माह व उससे पूर्व बीत गया समय । उस समय कल्पना ही नहीं थी कि आज के दिन ८९ में "पापा" साथ नहीं होंगे । सत्य कितना क्रूर होता है फिर भी उसे स्वीकार करना पड़ता है । दिनांक ११ फरवरी से आज १६ जून तक ४ माह का समय बीत गया है । यह अवधि इतनी लंबी व भारी प्रतीत होती है कि इसके बारे में सोचना ही भयावह लगता है । यही तो मानव हृदय की कमज़ोरी है कि जब चित्त पिघलता है, स्नेहवश होकर तभी संस्कार पड़ते हैं । लेकिन "पापा" कहा करते थे कि इसे दुर्बलता क्यों कहा जाये । ये भावनाएं ही तो मानव की संपदाएँ हैं । मानव हृदय की इसी धरोहर के फलस्वरूप ही "नारायण" ने "नर" को प्रतिनिधित्व सौंपा है और "नर" का नित्य सखा रहना भी स्वीकारा है "नारायण" ने ।

भावनाओं को बुद्धिमत्ता के चंगुल में फंसाकर कुचलना अनुचित है । हम मोह त्यागने की दार्शनिकता भले ही जताएं लेकिन जब तक इस देह में प्राण रहता है वह मोह तो स्वाभाविक है । "गीता" में लिखा है कि शरीर तो नाशवान है इसके लिए शोक करना वृथा है । इसी विषय पर "पापा" से एक बार चर्चा हो रही थी । मुझे जब कभी मोह का आभास हुआ तो स्वयम् को दुर्बल अथवा कायर समझा । लेकिन "पापा" ने चंद क्षणों में ही इस भ्रम का निवारण कर दिया । देह का मोह तथा उसके विछोह में वेदना का अनुभव विसंगत नहीं है । ब्रह्मस्वरूप आत्मा तो चेतन तथा जड़ सभी में एक समान निहित है । लेकिन इस अविनाशी तत्व की अभिव्यक्ति तो नाशवान देह के माध्यम से ही संभव होती है। अव्यक्त के इस व्यक्त रूप का अपना निराला ही व्यक्तित्व है। इस व्यक्तित्व की बेजोड़ सार्वभौमिकता है । इसी विशिष्ट व्यक्तित्व से ही प्रेम अथवा घृणा की जाती है । जब इस व्यक्तित्व से मोह हो जाता है, तो उसके विछोह में कष्ट होना तो स्वाभाविक ही है, क्योंकि इस विशिष्ट व्यक्तित्त्व का पुनरावर्तन कभी नहीं होता है । "पापा" के इस मंतव्य में मुझे फिर कभी आत्म-ग्लानि का अनुभव नहीं हुआ । जब भी "पापा" की बातें याद आती हैं तो

"अश्रु–धार" रुक नहीं पाती है । आंसू चाहे खुशी के हो या गम के, वे तो प्रेम की पराकाष्ठा जताते हैं । जैसा कि पापा ने लिखा है :– ।

'अश्रु हमारी आंखों में हो, –
तुम आशा विश्वास हमारे ..."

सच तो यह है कि अपनी साहित्यिक उपलब्धियों का उल्लेख तो पापा कभी नहीं करते थे । उन्होंने हिंदी भाषा में कई गीत लिखे जो कि फिल्मों के माध्यम से बड़े लोकप्रिय हुए । कई बार गीत को सुनते वक्त शब्दों व संगीत में आत्म–विभोर होकर गीतकार के नाम की तरफ ध्यान नहीं जाता है । लता मंगेशकर द्वारा गाया हुआ यह गीत...

"बांध प्रीति–फूल डोर, मन लेके चित चोर, दूर जाना ना ..." मुझे बेहद पसंद है । एक बार सुधीर फड़के ने दूरदर्शन पर यह गीत गाया तब मुझे मालूम पड़ा कि इसके गीतकार तो "पापा" हैं । इस घटना के कुछ ही दिनों बाद मैंने एक सुगम संगीत के आयोजन में कार्यक्रम का प्रारंभ इसी "गीत" द्वारा किया । सभी सुनने वालों को बहुत ही पसंद आया । जब मैंने "पापा" को घर आकर यह बात बताई कि "गीत" के बोल लोगों को बहुत अच्छे लगे तो मुझे मेरे अपने गायन की ही प्रशंसा सुननी पड़ी ।

इसी प्रकार "पापा" द्वारा लिखित भजन "राम श्याम गुण गान" जिसे कि पंडित् भीमसेन जोशी व लता मंगेशकर ने गाया है । इस "डिस्क" के विमोचन–समारोह के प्रारंभ में "पापा" व उनके परिवार के साथ मुझे भी आमंत्रित किया गया था । समारोह के प्रारंभ में ही मुझे बड़ी विनम्रता से कहने लगे, "आपको एक कष्ट देना चाहता हूं" । मैंने कहा, "आप आदेश तो दीजिए" । तो कहने लगे "मेरा निवेदन है कि आप इस डिस्क का विमोचन करें । चूंकि आप पंडित माणिकबुआ ठाकोरदास से संगीत सीख रहीं हैं तथा राम व कृष्ण, सूर्यवंशी तथा चंद्रवंशी दोनों राजघरानों से आप हैं अत: आप को ही मैं योग्य मानता हूं।" एक साहित्य मनीषी के श्रीमुख से अपने बारे में यह बात सुनकर मैं तो गद्‌गद हो उठी । मैं जानती थी कि "पापा" को उनकी तारीफ़ सुनना

पसंद नहीं है । इसलिए मंचपर तो उनके बारे में ज्यादा नहीं कहा । लेकिन कुछ पत्रिकाओं में विशेष करके "बॉम्बे मैगजिन" व "इंडिया टुडे" में आलेखों द्वारा "पापा" के प्रति ढेरों उद्‌गार प्रकाशति कर डाले । जब यह आलेख उनको बताने गई तो डर लग रहा था कि कहीं फिर डांट न दें ।

जब वे उत्साह बढ़ाने के लिए मेरी प्रशंसा करते थे तो साथ ही साथ कई बार उनकी डांट भी सुनना अच्छा लगता था । क्योंकि जब कभी भी कुछ भूल कर बैठती थी तो "पापा" के सामने उसका प्रायश्चित भी कर लेती थी । मैं कई बार कहती थी कि "यह तो मेरा कन्फेशन बॉक्स" है । जहां केवल भूलों को स्वीकार ही नहीं करती हूं बल्कि आप तो उन्हें सुधार भी देते हैं । कई बार ऐसा भी हुआ कि "पापा" द्वारा सावधान किए जाने के पश्चात् भी नासमझी से कुछ गलत रवैया अपना लिया और गलतफहमी का शिकार भी बनना पड़ा ।

पिछले वर्ष मैं लंबे समय के लिए अस्वस्थ रही । हमारा परिवार "पापा" की बताई हुई आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन ही करता है । लेकिन जब कई दिन तक ज्वर उतर नहीं रहा था तो वे मुझे देखने आए । उन्हें मालूम था कि मैं कमजोर हो गई थी । अत: अन्य दिनों की तरह ज्यादा बोल नहीं पाऊंगी और न ही अपनी रजपूती शान के स्वभाववश वाद-विवाद कर पाऊंगी । तो कहने लगे कि "आप तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएंगी और फिर राष्ट्रसेवा का कार्यक्रम पुन: प्रारंभ हो जाएगा । आपकी जन्म कुंडली में प्रबल ग्रह बृहस्पति जो है- तो आप अपना खयाल तो कभी रख ही नहीं सकतीं । आपका कार्यक्षेत्र तो "वृहद्" है । फिर भला अपने- आप तक कैसे खुदको सीमित रख सकती हैं ?" कितनी वात्सल्यपूर्ण परंतु दृढ़ सीख थी उनकी ! उनकी इन्हीं व्यावहारिक बातों में रोजमर्रा की बातों में ही जीवन का रहस्य सरलता से समझ में आता है ।

जीवन-यापन के लिए पोथी पढ़कर अथवा विद्वत्ता के सहारे ही आवश्यकता नहीं पड़ती । दैनिक सूझ-बूझ द्वारा ही संचरता है जीवन । यहां तक कि ज्ञान-उपार्जन के लिए भी ग्रंथ टटोलने से कुछ नहीं बनता । हां, विचारों को केंद्रित करने के लिए तथा उन्हें

व्यवस्थित रूप में ढालने के लिए रचनात्मक लेखन बहुत ही आवश्यक है। "रचनात्मक" कार्यक्षमता के लिए उन्होंने एक मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य बताया है। "स्त्री" अथवा प्रकृति का तो नियम ही "सर्जन" है। अत: स्त्रियों में रचनात्मक सर्जन की अद्‌भुत क्षमता निहित है। स्त्री की यह क्षमता जब तक वह प्रजनन अवस्था में रहती है, तब तक दबी हुई रहती है। लेकिन जैसे ही वह इस अवस्था को पार कर जाती है, स्त्री में निहित यह ऊर्जा विविध प्रकार से रचनात्मक कार्यों में प्रस्फुटित हो उठती हैं, जबकि पुरुष में रचनात्मक शक्ति का प्रादुर्भाव स्त्री की प्रेरणा से ही होता है।

जीवन में उतार-चढ़ाव तो हर मोड़ पर आते हैं। लेकिन कभी-कभी निरंतर संघर्ष से उकताकर जिंदगी काटे नहीं कटती। कुछ उपाय नहीं सूझता है। जैसे युद्ध-क्षेत्र में विषाद युक्त अर्जुन श्रीकृष्ण से मार्गदर्शन के लिए निवेदन करता है ठीक वैसे ही अंतरद्वंद्व में घिरा यह मन समाधान पाने के लिए विह्वल हो उठता है। संकट की ये घड़ियां अत्यंत विषम प्रतीत होती हैं। लेकिन पापा के सत्संग से तथा उनके गूढ़ परंतु सहज व सुलभ परामर्श से विकट मार्ग भी सुगम बन जाता। पापा के जाने के बाद सहसा मुझे ऐसा लगा कि यदि उनका मार्गदर्शन मुझे नहीं मिलता तो शायद अब तक जीवन का अंत करने का भयंकर कृत्य कर बैठती अथवा मेरा मस्तिष्क किसी मानसिक व्याधि से ग्रसित हो जाता। वे अपनी प्रखर बुद्धि के द्वारा, ईश्वरीय सूक्ति के द्वारा, आयुर्वेदिक तथा ज्योतिष शास्त्रों के ज्ञान द्वारा मेरी रक्षा करते रहे हैं। इसकी चर्चा मैंने उनके सामने कभी नहीं की, क्योंकि उनको स्वयम् अपनी प्रशंसा सुनना कतई पसंद नहीं था। आज हम देखते है कि साहित्य, धर्म और छिछले ज्ञान का सहारा लेकर लोग न जाने क्या-क्या ढोंग रचाते हैं। लेकिन साहित्य मनीषी पंडित् नरेन्द्र शर्मा, जिन्हें साक्षात् मानवीय ज्ञान-कोष कहा जाय तो जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी, अपनी विविध उपलब्धियों के बारे में वे कभी जिक्र तक नहीं करते थे। मुझे उनके आध्यात्मिक स्वरूप का अनुभव है। कर्म, ज्ञान व भक्ति की पराकाष्ठा की उपलब्धि के उपरांत भी उन्होंने इसका आभास जादूई चमत्कारों या सिद्‌धियों के द्वारा नहीं किया। मैं जब भी बंबई से बाहर प्रवास पर जाती थी, तब उनके दर्शन करके, व उनका आशीर्वाद लेकर जाती थी। कभी-कभार बहुत व्यस्त कार्यक्रम रहता था, तो फोन पर ही बात कर लेती थी। पिछले कई महीनों

से वे "महाभारत" टी.वी. सीरीयल के कारण बहुत व्यस्त रहा करते थे। दि. २९ जनवरी को मुझे जयपुर जाना था, दो दिन के लिए। उसके बाद ३१ जनवरी को मद्रास तथा दिल्ली जाने का कार्यक्रम था। मैंने सोचा जयपुर से आकर दूसरे दिन तो मद्रास जाना है तो "पापा" से फोन पर ही बात कर लूंगी। जयपूर में २९ तारीख को मीटींग चल रही थी और मुझे लगा कि क्यों न आज शाम को ही लौट जाऊं? कुछ अंतर-प्रेरणा (टैलीपैथी) से ऐसा महसूस हुआ।

"क्षत्रिय सभा" के सदस्यों से क्षमा मांग कर उसी शाम बम्बई लौट आई। दिनांक ३० जनवरी को मैंने अपने ड्राईवर के साथ संदेशा भिजवाया कि "पापा" यदि बी.आर. चोपड़ाजी के यहां से लौट आए हों, तो मैं मिलना चाहूंगी, क्योंकि कल सवेरे मद्रास जाना है। ड्राईवर ने लौटकर कहा कि, "पापाजी आपकी प्रतीक्षा ही कर रहे हैं और कहा- "अवश्य आइए।" मुझे जरा अलग-सा प्रतीत हुआ। क्योंकि मैं जब भी पूछती थी तो "पापाजी" हमेशा यही कहते थे कि, "आराम से आइए कोई जल्दी नहीं हैं।" शाम के वक्त उनको मिलने गई और हमेशा के जैसे वें मुझे कार तक पहुंचाने आए। तब मुझे क्या मालूम था कि वे अंतिम आशीर्वाद दे रहे हैं? मैं दूसरे ही दिन मद्रास गई और वहां से दिल्ली। १२ फरवरी को बड़ौदा में मेरे गुरुजी पं. माणिकबुआ ठाकोरदास के संगीत कार्यक्रम का आयोजन था। अत: मैंने दिल्ली से ता. ११ फरवरी को "राजधानी" एक्सप्रेस से बड़ौदा तक टिकिट बुक करवाई थी, जब कि मेरा पुत्र मानवेंदर सिंह बंबई तक आनेवाला था। ११ फरवरी की शाम को दिल्ली से रवाना होने से पहले मैंने अपना इरादा बदल दिया। और टिकिट बंबई तक एक्सटैंड करवा कर सीधे बंबई पहुंची। "पापा" की तबीयत तो ११ की शाम को ही बिगड़ गई थी। मुझे बंबई पहुंचते ही उनके परलोक सिधारने का दुखद समाचार मिला। अंत: प्रेरणा के कारण ही मैं यहां आ गई और उनको अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित कर सकी। सभी लोग अचंभा कर रहे थे। वहां बड़ौदा में गुरुजी और कई मित्रों ने भी मेरा इंतजार किया होगा।

उनके चले जाने के पश्चात् भी जब मन "किंकर्तव्यविमूढ़" होता है, तो प्राय: "महाभारत" के अंशों में अथवा उनकी बताई बातों

में हल स्वतः मिल जाता है।

उनके संस्मरण तो एक विशाल समुद्र समान हैं, जिनकी सीमा नहीं आंकी जा सकती है। उनका व्यक्तित्व तो श्रीकृष्ण के समान कृपा-सरोवर है। जो भी उनके संपर्क में आया उसको समान रूप से स्नेह आप्लावित किया।

श्रद्धा के दो फूल

● श्याम गणात्रा

"कर्मण्यवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन्" "गीता" के उपरोक्त सूत्र को जिन्होंने अपने जीवन में आत्मसात कर लिया था, ऐसे हिन्दी साहित्य जगत के मूर्धन्य गीतकार व साहित्यकार पं. नरेन्द्र जी शर्मा के निधन पर मैंने वातावरण में कुछ पल के लिए शून्यता का अनुभव किया था। श्रद्धेय पंडित् जी ने अपने कठिन परिश्रम से जीवनफुलवारी को सजाया था। इस फुलवारी में खिले विभिन्न फूलों के सुवास से मानव का मन आनंद-विभोर हो जाया करता था। साहित्य साधना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य था। सरस्वती मां की उन पर असीम कृपा थी। "भाभी की चूड़ियां" हिन्दी चलचित्र के लिए लिखा हुआ उनका लोकप्रिय गीत "ज्योति कलश छलके" आज भी कानों में गूंजता रहता है। वे सदैव आशावादी और कर्मठ रहे। मैंने जीवन के अंतिम क्षण तक उनमें जवानी का जोश पाया था। उनकी यह इच्छा थी कि बंबई जैसी महानगरी में एक "हिन्दी भवन" हो, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने हिन्दी भवन निर्माण समिति बनवाई। जिसके वे अध्यक्ष भी थे। उनका यह स्वप्न साकार हो इसलिए हम भगीरथ प्रयास अवश्य करेंगे।

●

श्रद्धांजलि

● पं. यादवेन्द्र शर्मा

मोह से न मोह रहा, तेजस्वी जीव गया।
तन ने जब तजे प्राण, परम तत्व मिल गया॥
छूटे सब संबंधी, काल-भय विगत हुआ।
संस्मृतियां शेष रहीं, शेष भस्म हो गया॥
होनी हुई अनहोनी, बोल-बोल कह गया।
राम-नाम सत्य है, हजार बार कह गया॥
बंधन टूटा अटूट, टूट-टूट रह गया।
करनी तो भरनी है, रुद्ध कण्ठ कह गया॥
होकर अशेष शेष, चिह्न शेष रह गया।
देह धूल हो गई, गुबार शेष रह गया॥
मिट गई अशांति, किंतु शांति शब्द रह गया।
सब को प्रणाम प्राण अंतिम बिदा कह गया॥
जन्मे जहाँगीरपुर, प्रवासी बने बंबई के।
सहृदय सखा थे, पुरानी और नई के॥
शोक-मग्न हुए सब आपात निधन जब सुना
देश-कुल-कविता का तारा अब नहीं रहा।
नर थे नरेन्द्र! तुम्हें राजकुल मान गया।
राष्ट्र ही नहीं, सारा विश्व पहचान गया॥
चित्र महाभारत की कथा के प्रणेता थे।
सरस गीतकार, ऋषि सच्चे आत्म-चेता थे॥
धरती का लाल अकस्मात् काल ले गया।
स्वर्ग से निहार रहे सबका स्वर गूँज गया॥
वासवी मनाती शोक, परितोष हार माने।
गायत्री की मनोव्यथा कोई क्या जाने ?
लावण्या, मोंघी से बाप का दुलार गया॥
सुशीला का प्राणपति, बिना कहे कहाँ गया ?
किसी का दुलार-प्यार, किसी का सुहाग गया।
चोपड़ा के घर का संचित अनुराग गया॥
हमको निभानी सब प्रीति-रीति किंतु वह
अपनी ही माटी से मोह तोड़ चला गया।
कहै यादवेन्द्र विधि तेरी गति कौन कहे ?
तन-मन का साथी वह साथी बेमिसाल गया।
अर्पित हैं श्रद्धा सुमन तुम्हें तात श्री !

आज अश्रुओं में उर बार- बार बह रहा ।

स्वामीपाड़ा जहांगीरपुर, खुर्जा, बुलंदशहर की ओर से स्व. कविवर पं. नरेन्द्र शर्मा के प्रति ।

●

वैराग-योगी

● हितेंद्र कुमारी दांता

परम पूज्य श्री नरेन्द्र जी जैसे अद्वितीय परम विद्वान विरल व्यक्तित्व वाले महापुरुष के लिये कुछ लिखना या कहना अत्यन्त कठिन है।

उनका हृदय मानवीय संवेदना तथा परोपकार से सदा छलकता था।

सौजन्यता की साक्षात मूर्ति और परम तत्वज्ञानी थे; संसार के बीच में रहकर भी वैरागी थे, योगी थे।

देश-प्रेम की सर्वोच्च भावना से उनका हृदय ओत-प्रोत था, जिसका प्रदर्शन उन्होंने कभी नहीं किया। हमेशा यही कहते थे कि कितने भी दु:ख आयें, संकट में धैर्य व साहस को खोना नहीं और अपने सिद्धांतों को न भूलना ही सच्चा मानव धर्म है।

उनसे मिलकर एवं उनके संपर्क में आकर जो भी थोड़ा उन्हें जान पाई हूं, समझ पाई हूं- क्योंकि उनको पूर्णतया समझना तो असंभव था, मैं अपने-आपको धन्य-कृतार्थ समझती हूं तथा उनकी पुण्य स्मृति को अश्रुपूरित नेत्रों से करबद्ध हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

●

अविस्मरणीय क्षण उनके साथ

● श्यामसुंदर शर्मा

प्राय: आज यह कहा जाता है कि प्राचीन काल-सा परिधान, सादगी, विद्वता व स्वाध्याय वर्तमान से लुप्त होता जा रहा है। परन्तु उक्त चारों गुणों का संगम मुझे एक ही व्यक्ति में देखने का सुअवसर मिला।

उन दिनों मैं राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का शोधार्थी था। मेरे शोध का विषय था "नरेन्द्र शर्मा- व्यक्तित्व एवं कृतित्व।" मैं अपने उक्त शोध से उभरी कुछ समस्याओं के समाधानार्थ पंडित नरेन्द्र शर्मा जी से साक्षात्कार हेतु बंबई पहुंचा।

पंडित जी का निवास किसी समय का बंगला, पर आधुनिक, पश्चिमाभिमुख, दुतरफा खुला, सामने लान तथा फूलदार लता गुल्मावेष्ठित फ्लैट था। बाहर–भीतर सर्वत्र स्वच्छ, शांत वातावरण था। मुख्य द्वार पर दस्तक देने पर एक अति सभ्य, सुसंस्कृत, शिष्ट, सुडौल युवक ने द्वार खोला। आप पंडित जी के सुपुत्र चि. परितोष थे। अभिवादनादान-प्रदानोपरांत मैंने अपना परिचय व आने का मंतव्य कहा। श्री परितोषजी मुझे अंदर ले गये और बैठक में बैठाया। बैठक मध्यमाकार, साफ-सुथरा, सादगी युक्त कमरा, जिसमें किसी प्रकार की अनावश्यक वस्तु-प्रदर्शिनी व तड़क-भड़क नहीं। एक तरफ पंडित जी का अध्ययन लेखन–सामग्री युक्त स्थान तथा दूसरी तरफ दुग्ध-धवल चादर आवेष्ठित गद्दा। पंडितजी उस समय बरामदे में रखे तख्त पर बिराजे एक बृहदाकार ग्रंथ संभवतया "महाभारत" के अध्ययन में लीन थे। मेरे आगमन का कारण बताने पर पंडित जी तत्काल बैठक में पधारे। मैंने प्रणाम किया। प्रत्युत्तर में ठीक वैसा ही प्रतिअभिवादन मिला। साथ ही बैठने का आग्रह। गौर वर्ण, एकहरा बदन, स्वच्छ धुला खद्दर का धोती-कुर्ता, चश्मे के भीतर से झांकती मर्मज्ञ आंखें तथा मुखमंडल पर अनुभव, विद्वता, व शालीनता का अपूर्व मेल। परिचय, मतंव्य व अपनी शोध-विषयक कठिनाइयों-विशेषकर उनकी कुछ कृतियों की अनुपलब्धता बताई। अधिक नहीं कहना पड़ा, क्योंकि इसी आशय का एक पत्र डाक द्वारा पहले प्रेषित कर चुका था। पंडित जी का सुझाव था कि अनुपलब्ध कृतियां उनके प्रकाशक या फिर प्राचीन समृद्ध पुस्तकालयों से उपलब्ध हो सकती हैं। पर वास्तव में उनकी कुछ कृतियां प्रकाशकों व पुस्तकालयों में भी सुलभ नहीं थीं। इस पर पंडित जी ने कहा,

"अभी दो चार दिन तो मैं एक अति आवश्यक कार्य में व्यस्त हूं। उसके पश्चात् ही कुछ कर सकूंगा। इस समय तो मेरी निजी प्रतियां भी उपलब्ध नहीं है।" पर मैंने इतने दिन रुकने की अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब मुझे पंडित जी ने विलेपार्ले पूर्व स्थित एक सीनियर हायर सेकन्ड्री स्कूल (बी.एल. रूइया हाईस्कूल) के प्रधानाचार्य श्री इन्द्रबहादुर सिंह साहब से मिलने तथा दो दिन बाद पुनः स्वयं उनसे मिलने का परामर्श दिया। कितना विशुद्ध निर्लेप व्यक्तित्व था !मैं श्री सिंह से मिला। उन्होंने मुझे "भारत भारती, परिषद बंबई" द्वारा कविवर पंडित नरेन्द्र शर्मा को समर्पित "ज्योति कलश" नामक अभिनंदन ग्रंथ की एक प्रति सुलभ कराई।

दो दिन पश्चात् पूर्व परामर्शानुसार मैं पुनः पंडित जी से मिलने उनके निवास स्थान पर गया। परन्तु वे किसी अन्य अत्यावश्यक कार्यवश बंबई से बाहर गये हुए थे। पर फिर भी मेरे मिलने आने की बात वे नहीं भूले थे और प्रवासार्थ प्रस्थान पूर्व "प्यासा निर्झर" नामक अपनी अति दुर्लभ कृति की एक प्रति मुझे देने हेतु कह गये थे। उक्त पुस्तक "प्यासा निर्झर" के प्रथम पृष्ठ पर पंडित जी के करांकित सुपाठ्य अक्षरों में श्याम स्याही से लिखा था–

"श्री श्यामसुंदर शर्मा को शुभकामनाओं सहित २९–६–१९८८ नरेन्द्र शर्मा, ५९४, उन्नीसवां रास्ता, खार, बंबई-४०० ०५२"

और अभी अन्य कोई कृति उपलब्ध न करा सकने की असमर्थता, तथा न मिल सकने का खेद व्यक्त किया।

यद्यपि दिनांक ११ फरवरी १९८९ को स्वनामधन्य पंडित जी इहलोक लीला समाप्त कर देव लोकवासी हो गये हैं, पर उक्त भेंट पर उनकी सादगी, शालीनता, विद्वता व स्वाध्यायी प्रकृति ने मुझ पर एक अविस्मरणीय अमिट छाप छोड़ी है।

उन्हें देखकर यह कहना अनुचति लगता है कि प्राचीन काल का परिधान, सादगी, विद्वता तथा स्वाध्याय वर्तमान से लुप्त होता जा रहा है।

●

मेरा वह चित्र आज भी अधूरा है

●सा. भ. पोलाजी

यदि कोई मुझसे पूछे कि - "तुमने आदि शक्ति देखी है ?" तो कहूँगा-"जरूर देखी है, वह आदिशक्ति है श्रद्धेय पंडित नरेंद्र जी शर्मा, जिनके दर्शन मात्र से शुचिता के निरभ्र आभा-मंडल का दर्शन होता था।"

कोई चित्रकार किसी दिव्यता को प्रतिभासित करने के लिए एक आभा-मंडल चित्रित करता है। ऐसी ही एक दैवी प्रकाश-परिधि चारों ओर देखने का सौभाग्य मिलता रहा था।

श्री.बृ.ल.रुइया विद्यालय के प्रांगण में हिन्दी साहित्य जगत् के सरस्वती - पुत्रों के दर्शन का लाभ होता रहा है। कवि-सम्मेलन हो या विद्यालयीन कार्यक्रम, हमारे प्रधानाचार्य जी अपने विद्यार्थियों के सामने भव्यता-दिव्यता का परिचय रखने हेतु सभी दिग्गजों को निमंत्रित करते रहे हैं। हमारे विद्यालय की एक चित्रकला तथा रंगोली-प्रदर्शनी के उद्घाटन के अवसर पर पंडित जी के प्रथम दर्शन हुए- होठों पर असाधारण मधुर मुस्कान उनकी छवि उनका तेज ! उनका शब्द-चित्र मेरे लिए मुश्किल है पर चित्रांकित करने की कोशिश की है। रंगोली की प्रर्दशनी का शीर्षक था-'चन्द्रमा' । प्राचीन काल से चन्द्रमा का आकर्षण, मानव की उस नक्षत्र पर उतरने की ललक ऐसे अनेक विषय रेखित करते-करते अन्त में 'कवि का चन्द्र और चन्द्रमुखी की रंगोली बनाई थी मैने। रात्रि की घनी नीली गर्द पार्श्वभूमि पर वह चाँदनी आज भी ललित रूप में किसी ठहरे चित्र की नाईं मेरे उर में अंकित है। रात, उसमें पूर्ण चन्द्रमा को देखकर उठती सागर की लहरों के बीच घूँघट ओढ़े सुंदर चंद्रमुखी की कल्पना, पंडित जी ने पीठ पर हाथ रखा, आशीष देते हुए अभिप्राय लिखा.....

"आनन्द को सजीव स्वरूप देना अव्यक्त को व्यक्त कर देना तो है ही, साथ ही उसे ग्रहण करने में हमें समर्थ भी बना देता है।

बधाई और अभिनंदन
-नरेन्द्र शर्मा
२६-१-१९६८"

चरण-रज धूलि माथे पर लगाई; पारस-स्पर्श हुआ और मै पुलकित हो उठा। रूइया स्कूल को अपना घर मानते थे आप। इस घर

जब-जब आप पधारे हैं- बड़े स्नेह से पूछा है आपने मुझे।

एक याद-- कवि गोष्ठी का आयोजन जब भी हुआ हमारे कला-कक्ष के सभागृह में हुआ। व्यासपीठ की पार्श्वभूमि में माँ सरस्वती का विशाल शिल्प बना हुआ है। ऐसे व्यासपीठ पर माँ सरस्वती के चरणों में बैठे इस सरस्वती-पुत्र से ओजपूर्ण जीवंत स्वरों में अनेक रचनाएँ तथा राम-धुन भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ऐसी ही एक कवि-गोष्ठी में चित्रावलियों से पूर्ण सभागृह को साहित्यमय किया था मैंने, जिसमें श्री महावीर जी अधिकारी और अन्य मान्यवर कवि- साहित्यकारों के बीच पंडित जी ने सस्नेह कहा था-" पोलाजी ने अनेक साहित्य-मंच, कविता के रचना चित्र, पुस्तकों के मुख-पृष्ठ आवरण सजाये हैं। हिन्दी के इस सेवक का उचित सम्मान होना चाहिए।" आपके उन गौरवपूर्ण शब्दों का स्मरण कर पोला (खोखला) आज भी आकंठ भर जाता है, पुलकित हो उठता है। इससे भी बढ़कर और कुछ होता है क्या ?

२२फरवरी ८९ का दिन था वह ....प्राचार्य श्री इन्द्रबहादुर सिंह को पंडित जी पुत्रवत मानते थे। उस दिन प्रातः काल से ही वे पंडित जी की श्रद्धांजलि में काव्य रचना में लगे थे। मैं उस पर चित्र बना रहा था। अचानक प्राचार्य जी की अस्वस्थता को प्रथम बार देख रहा था मैं। जिनके सामने शब्द हाथ जोड़कर खड़े रहते थे, उनसे कविता पूर्ण नहीं हो रही थी- कलम अटक गयी थी उनकी ....

उनके शब्द-प्रभु ही जब अन्तिम यात्रा पर चले गए थे, तो शब्द उतरते भी कैसे ?
मेरा वह चित्र आज भी अधूरा है.......

"और उन्होंने छू दिया मैं पूरा हो गया"

● इन्द्रबहादुर सिंह

अंतरंगता : मैं तब नया-नया ही बंबई आया था और बंबई के साथ समरस होने के दौर से गुजर रहा था। कितना भी बेमेल हो आदमी, अपने-आपमें सराबोर कर लेने में बंबई को किसी दैवी शक्ति का वरदान हासिल है। उत्तर प्रदेश से मध्यप्रदेश और मध्यप्रदेश से महाराष्ट्र आने पर मेरी गंगा, मेरी नर्मदा जुहू में पांव धरते ही सागरधर्मी और समरस हो गईं। पावनता-विशालता का यह संगम मेरे लिए एक स्थायी अनुभूति बन गई और बंबई मुझे भाने लगी। बंबई का आंचल बहुत बड़ा और छायादार है; सभी समा जाते हैं और सभी की तपन शांत-शीतल हो जाती है। इसीलिए घोंघें-सीपी-मोती सभी इस बंबई के समानधर्मा नागरिक हैं; सबकी अपनी-अपनी अस्मिता है।

छोटी जगह से इतनी बड़ी, विचित्र और कल्पनातीत नगरी में आने पर मेरा चौकन्ना होना स्वाभाविक ही था--मेरा इलाहाबाद, जो तब नैनी-फाफामऊ तक फैला मुझे इतना विराट लगता था, सांताक्रुज से भी छोटा और अवैभवपूर्ण लगने लगा। 'बंबइयों' से समरस होना इतना सहज नहीं होता। दूर से भीड़ हमवार, एक शक्ल दिखती है, लेकिन यहां का एक-एक आदमी अलग-अलग आदमी होता है। नभचर, थलचर, जलचर के प्राणि-विश्व का वैविध्य-वैशिष्ट्य लिए यहां के रहनेवालों को ठीक-ठीक और पूरा-पूरा जान पाना दुसाध्य कार्य है। सभी सावधान की मुद्रा में, अपने से हटकर दिखने वाले लोगों के साथ तालमेल बिठाने में जब मैं बहुत कठिनाई का अनुभव कर रहा था और मेरी विकल्प-बुद्धि पछाड़ खाती कभी-कभार जब 'आओ लौट चलें' के लिए उद्वेलित करती, तो मैं एक तनावपूर्ण अनिर्णय की स्थिति से गुजरने का अनुभव करता। द्विधा की इस स्थिति में मैं हैमलेटियन (टू बी ऑर नॉट टू बी...) होता जा रहा था, तभी महाप्राण निराला की परंपरा के एक अक्खड़ प्रभृति कवि पं. श्रीनाथ द्विवेदी (अब स्वर्गीय) से मेरी भेंट हुई, जो पंडित नरेन्द्र शर्मा की षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर एक अभिनंदन-ग्रंथ निकालना चाहते थे। उन्हें कोई नवयुवक चाहिए था, मुझे कोई वृद्ध। प्रथम मिलन में ही हम एक-दूसरे के अंतरंग हो गए। किसी बंबइया से यह मेरा पहला जुड़ाव था। वे कवि थे और मैं कविता-पसंद आदमी।

यहां के कवि-सम्मेलनों में मैंने महादेवी जी, भारती जी, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', वीरेन्द्र मिश्र आदि को जब देखा और बच्चन जी और पंडित नरेन्द्र शर्मा के बारे में सुना, तो अनायास ही रचनात्मकता को लेकर मैं अनेक अंतर-उद्वेलनों से आलोड़ित हो उठा-- जैसे कोई टुटपुंजिया बेशुमार दौलत देखकर विचलित हो जाता है। लगा जैसे कविता के इन नंदनवनों को देख-सुनकर मेरे अंदर कोई अदना दूब कुलांचे भरने लगी हो। जो भी हो दूब की अपनी पूंजी लेकर मैं भी नंदनवनों के अभिवादन हेतु पंक्ति में खड़ा हो गया। पं. द्विवेदी जी को मेरे अंदर की इस दूब की आकुलता की आहट हुई होगी और उन्होंने मुझे पंडित शर्मा (तब 'सरस्वती पुत्र' के संबोधन से अधिक विख्यात) के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया और मैं अंकिचन धन्य हो गया। पितातुल्य वत्सल एवं स्नेहल दृष्टि से पंडित जी ने मुझे देखा और अंतस तक समो लिया और मैं उनकी मौनता में मुखरित हो उठा। अनुभूति का कैसा विलक्षण क्षण था वह, जब मैंने उनके चरण-स्पर्श किए, तो उन्होंने दोहरे भाव से झुककर मुझे अपनी बाहों में भींच लिया था। मां के स्पर्श के बाद किसी ऋषि-पिता का यह स्पर्श आज भी मुझे अभिभूत कर जाता है और मैं उन क्षणों में पूरा-पूरा समा जाता हूं। 'सुखी मीन जिमि नीर अगाधा' के सुख से भर जाता हूं। मेरे पाने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया था। मैं आधा-अधूरा था, नेह से उन्होंने मुझे छू दिया और मैं पूरा हो गया। 'इन्द्रबहादुर सिंह केअर ऑफ पंडित नरेन्द्र शर्मा' की गरिमा और गौरव का प्रसाद पाकर अनुभूतियों में विंध्याचल-सा बन जाने का अनभुव करने लगा।

'ज्योति-कलश' से जुड़े कुछ प्रकरण : जहां शैतान जाने से डरता है, मूर्ख मुस्कराता हुआ चला जाता है। न जाने क्या समझकर पं. श्रीनाथ द्विवेदी ने मुझसे कहा कि पंडित नरेन्द्र शर्मा के अभिनंदन ग्रंथ 'ज्योति-कलश' का पूरा कार्य मैं संभालूँ और संपादन भी करूं। मुझे मालूम नहीं किस भाव से उन्होंने अंधे को यह रत्न पकड़ा दिया था, किंतु मैं तो नैनतारा ही हो गया। तपाक से, बिना किसी संकोच के, अपनी औकात-कूबत का भान किए बिना ही, उनके इस प्रस्ताव को (शायद ही उनका यह आशय रहा हो) मैंने ऐसे लपक लिया मानों मैं इस कार्य के योग्य ही था और मुझे अवसर अब मिला था। आदरणीय द्विवेदी जी मेरी यह तत्परता

देखकर निहाल हो उठे। अखाड़िया तो थे ही, सो उन्होंने मेरी मूर्खता से हाथ मिला लिया और मेरी उत्साहपरायणता पर उन्होंने सब कुछ हार जाने की बाजी लगा दी।

मुझे याद हैं वे दिन जब स्व. द्विवेदी जी के इस व्यवहार के कारण उनके अनेक मित्रों, कर्णधारों, शुभचिंतकों तथा कार्यकर्ताओं ने उनका साथ छोड़ दिया और वे मुझ जैसे अबुद्ध, अधकचरे तथा परिणामों से अनभिज्ञ एक युवक के कंधे पर हाथ टेके सारस्वत-यज्ञ हेतु निकल पड़े थे। ईश्वर उस दिव्यात्मा को बैकुंठ प्रदान करें।

'ज्योति-कलश' को पूरा होने में भी लगभग डेढ़-दो वर्ष लगे थे। अनेक प्रकार के विरोधों-अवरोधों-अभावों के दौर से गुजरना पड़ा था। थक जाते, तो पंडित नरेन्द्र शर्मा के पास चले जाते और मां भागीरथी के समान 'दर्शन-मज्जन-पान' से 'त्रिविध ताप' मिट जाता। ग्रंथ पूरा ही नहीं हुआ, हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इसे अद्वितीय एवं अभिनव अभिनंदन-ग्रंथ के रूप में स्थान ही प्राप्त नहीं हुआ, वरन् नरेन्द्र शर्मा से संबंधित शोध-विषयों के परिप्रेक्ष्य में भी प्रचुर सामग्री प्रदान करने वाला यह एक अप्रतिम प्रामाणिक संदर्भ-ग्रंथ भी साबित हुआ।

'ज्योति-कलश' के संपादन-प्रकाशन से जुड़े अनेक प्रकरण हैं, किंतु सभी का उल्लेख करना प्रासंगिक न होगा। पंडित जी अपने अभिनंदन तथा अभिनंदन-ग्रंथ को लेकर अन्य साहित्यकारों-कवियों की भांति उत्कंठित नहीं थे। उनका आत्मस्थ भाव सदा बना रहा। हमारे लिए जो बहुत बड़ी बात थी और जो किसी भी रचनाकार के लिए महत्वपूर्ण घटना हो सकती थी, उनके लिए सहज निष्काम भाव से निर्लिप्त बने रहने की थी। हम समझते थे कि उनके लिए बहुत महान कार्य कर रहे हैं और इसके कारण पंडित जी कहीं न कहीं आनंद तथा गौरव की अनुभूति कर रहे होंगे और हम प्रिय से प्रियतर होते जा रहे होंगे, किन्तु वे ठहरे निरा राम-भक्त विरक्त भरत-- राज-पाट पर पादुका और पादुका पर सिर रखकर सोनेवाले वीतराग संन्यासी ! 'हर्ष-विषाद' से परे यह प्रकृति-पुरुष बड़ा असमंजसकारी लगा। न कोई आंकाक्षा, न एषणा, न तृष्णा, न कोई सुझाव, न निर्देश, न अपेक्षा। कौन लिख रहा है, कौन नहीं, स्याह लिख रहा है या सफेद-- सबसे मुक्त पंडित नरेन्द्र शर्मा

सतत् स्मित मुद्रा में, शरीर के सभी छोरों में अरुणिमा की आभा बिखेरते किसी खिले कमल की भांति कीच की संगति से निरापद निर्मल जल-राशि की तरंगों पर सुशोभित। पद्मासन में खिले हुए पद्म की भांति पंडित नरेन्द्र शर्मा के इस अद्भुत दैवी रूप का जिसे दर्शन-लाभ हुआ होगा, केवल वे ही भाग्यशाली इस रूप का अनुभव कर सकते हैं। इतनी निस्संगता भी अखरती है। लोगों के तो दूल्हा बनने के आनंद की साध जीवन भर नहीं जाती और ये महाराज थे कि बचपन में ही इंद्रियों को नियंत्रित करने के लिए रस्सी बांधे फिरा करते थे। आकाश के चाँद को घड़े में पकड़ने की कला में निपुण यह बालक बड़ा होने पर नरेन्द्र (नर+इन्द्र) बनने के सिवा और बन भी क्या सकता था ? पंतजी का 'मुट्टाड़ नरेन' ऐसा ही 'खिलंदरा', बना रहा, जो कभी पाल्हा छूने के लिए नहीं दौड़ा। अत: अभिनंदन की वेदी पर 'ज्योति-कलश' हम जैसा भी टेढ़ा-मेढ़ा प्रतिष्ठित कर सके, उसका ध्यान किए बिना यह सरस्वती पुत्र ज्योति छलकाता गया और हम 'ज्योति-कलश छलके' गाते गए-- गंगाजल से ही गंगा का अभिषेक किया हमने।

वरिष्ठों ने निर्णय किया कि अभिनंदन-समारोह के अवसर पर एक लाख की थैली भेंट की जाए, किन्तु पंडित जी को इस प्रस्ताव से अवगत कौन कराए-- यह बात तय नहीं हो पा रही थी। वरिष्ठों के बीच बैठे कनिष्ठ यानी मुझ पर निगाह गई। पहली बार बांछें खिलती हुई मैंने देखी थी। फिर मूर्ख की उपयोगिता समझ में आई और ले-देकर यह गुरुतर तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य-भार मुझे सौंपा गया। पहले की तरह ही मैंने समझा कि इस कार्य के लिए भी मैं सर्वाधिक उपयुक्त पात्र हूं। मन ही मन गुलाब हो गया। शेखचिल्ली की तरह झूमने लगा कि पंडित जी को जब यह 'खुशखबरी' दूंगा, तो खिल उठेंगे। घर में अम्माजी (श्रीमती सुशीला शर्मा) से काफी घुल-मिल गया था और वासवी वगैरह से उम्र में बड़ा होने का भी भान कम न था। मैं इस सुखद समाचार को सुनाने के लिए अधीर हो उठा। अंदर ही अंदर आशंका भी होने लगी कि कहीं किसी दूसरे के द्वारा यह खबर 'लीक' न हो जाए, नहीं तो मेरा महत्व समाप्त हो जाएगा।

दूसरे दिन पंडित जी को उनके घर का टेरेस देखने के बहाने ले गया। अनेक प्रकार की अनावश्यक बातें (?) करता रहा।

पंडित जी सार्थक बोलते रहे और मैं निरर्थक सुनता रहा। बहुत अखर रहे थे उस दिन पंडित जी ऐसी बातों के लिए। 'भारतीय मनीषा और चिंतन' के गूढ़तम रहस्यों को समझा रहे थे और मैं अंदर ही अंदर उकता रहा था। नीचे कक्ष में पं. श्रीनाथ द्विवेदी तथा मेरे कुछ अन्य वरिष्ठ 'क्या हुआ?' की उत्कट प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। इसका बोध होते ही किसी निर्झर की भांति वाणीपुत्र पंडित जी के झरते ज्ञान-प्रवाह में पत्थर फेंकने जैसा उद्धत व्यवहार करते हुए मैंने 'एक लाख की थैली' भेंट किए जाने के प्रस्ताव से अवगत कराते हुए उनकी अनुमति हेतु निवेदन किया। पंडित जी को इससे पहले शायद इस प्रकार के अशिष्ट व्यवहार का अनुभव न था। वे हठात् काठ हो गए। जैसे सावन सूख गया हो। जैसे सूरज थम गया हो। सारी गतियां एक सकते में जैसे ठहर गयी हों। पंडित जी ने आंखें भींच लीं और भयानकरूप से शांत हो गए। चेतना-पुरुष जड़ हो गया। पूरे वातावरण में एक सन्नाटा-सा छा गया। अंदर तक मैं काँप उठा। यह क्या हो गया? ऋषि-हत्या हो गई। अक्षय कोष को थैली की बोली लगा दी। 'पैराडाइज लॉस्ट' की भयावह स्थितियों में मैं क्षय का आतंक अनुभव करने लगा। समुद्र में डूबते किसी निरीह प्राणी की तरह मैं पंडित जी के श्री-चरणों में गिर पड़ा और अपनी धृष्टता के लिए क्षमा-याचना करता हुआ फूट पड़ा। मुझसे अनर्थ हो गया था। पंडित जी ने आंखें खोलीं। चित्त-प्रभंजन के कारण रक्तिमवर्ण नेत्र अभौतिकरूप से असहज लगे। मौन भंग करते हुए जैसे कोई साधु प्रायश्चित करता है, बोले- 'इन्द्रबहादुर! मुझे याद आ रहा है, तब मैं काशी में रहता था। मेरे गुरु ने कहा था-- नरेन्द्र एक दिन लोग तुम्हें खरीदना चाहेंगे, तुम्हें लोभ से जीतना चाहेंगे और तब तुम अपने जीवन का अंतिम चरण व्यतीत करने काशी आ जाओगे। काशी ही तुम्हारी रक्षा करेगी। लगता है मेरे गुरु की भविष्यवाणी फलीभूत होने वाली है और काशी जाने के मेरे दिन करीब आ गए। आप लोग मेरा मूल्य थैली से लगा रहे हैं।''

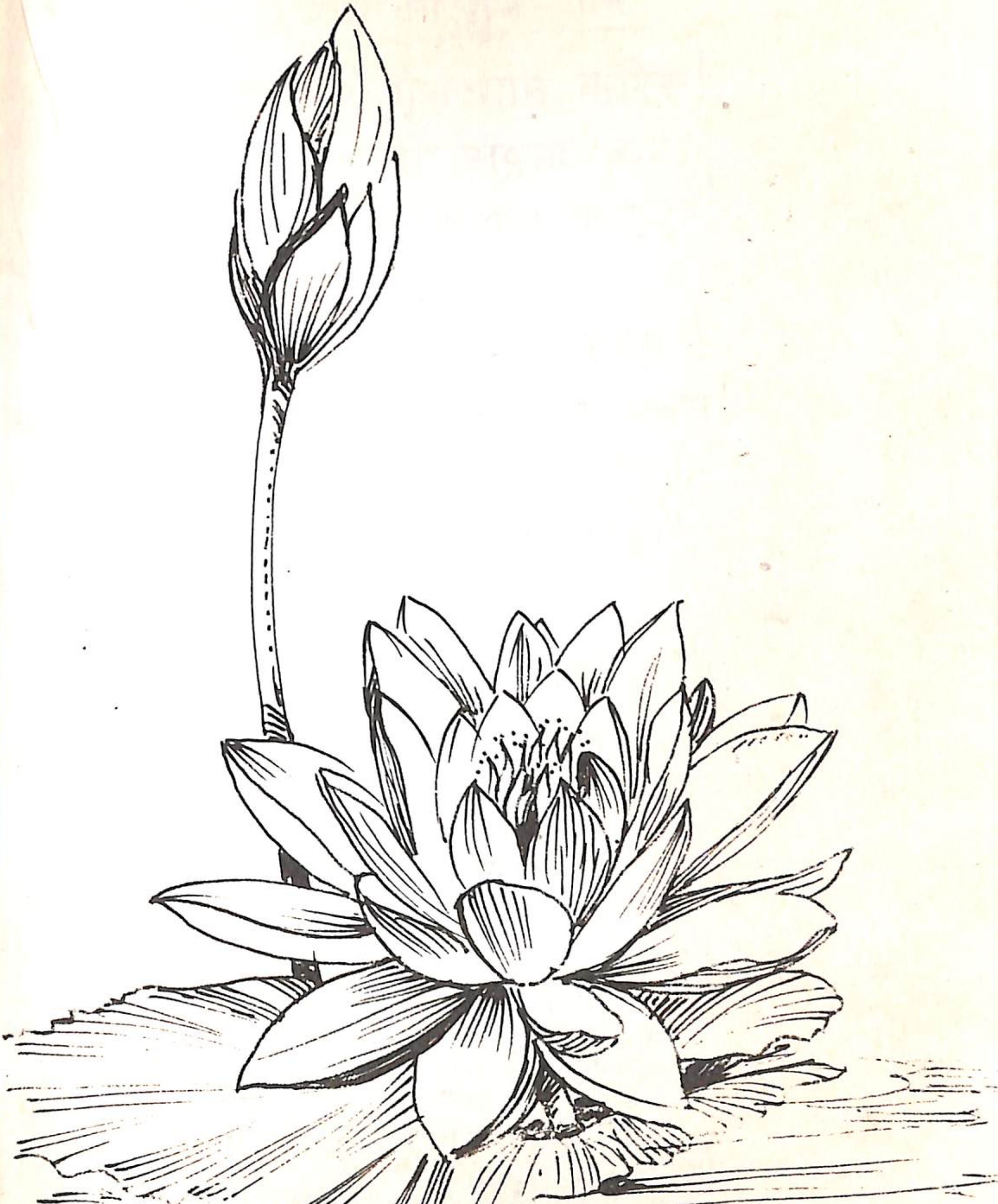
निढाल पंडित जी के चरणों में पड़ा मैंने बार-बार क्षमा-याचना की। वे नरेन्द्र थे और मैं तो नाम मात्र का इन्द्र था। यदि वास्तव में भी मैं देवराज इन्द्र रहा होता, तो भी इस वामन मानव नरेन्द्र का याचक ही होता। उनकी अगाधता थहाने चला था, तट पर ही डूब गया। रत्नाकर को घोंघो-सीपियों का उपहार देने की इस

धृष्टता और मूर्खता को केवल रत्नाकर ही क्षमा कर सकता है। उन्होंने अपनी बांहों में मुझे समेट लिया और मेरी पीठ थपाथपा दी। आज भी पंडित जी की वह मुद्रा, जिसका साक्षात्कार शायद मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को न हुआ हो, मेरी स्मृतियों में कभी-कभार कौंध उठती है। वह भी ऋषि का ही रूप था। मुझे अनुशासित और संस्कृत करने में इस घटना का अद्‌भुत योगदान है।

एक दूसरी घटना है।हम बैठे हुए गपशप कर रहे थे। चाय पीते-पीते एक दौरा फिर पड़ा। पूछा- 'पंडित जी ! शिरडी के साईंबाबा और सत्य साईं बाबा के बारे में आपका क्या ख्याल है ?' अपने स्वभाव के अनुरूप कुछ देर तक मौन रहने के पश्चात बोले- 'क्या आप साईं बाबा के भक्त हैं ?' मैंने कहा 'नहीं।' 'सत्य साईं बाबा से आपका कुछ लेना-देना है ?' मैंने कहा 'नहीं।' पंडित जी ने सहज भाव से कहा- 'जब आप भक्त नहीं हैं और न ही उनसे कुछ लेना-देना है, फिर क्यों असंग में पड़ते हैं ?' बात जारी रखते हुए उन्होंने कहा- 'देखिए, इस संसार में सुसंग, कुसंग और असंग-- ऐसे तीन संग होते हैं। भाग्यशाली व्यक्ति को सुसंग का सुयोग मिलता है। कुसंग जिंदगी में नहीं तो मरने से पहले मनुष्य छोड़ जाता है। यह असंग ही है, जिसमें वह फंसकर मरता है। अब आपका साईं बाबा से कुछ लेना-देना नहीं, फिर भी असंग में फंसे हुए हैं। असंग से निकलना ही मुक्ति का मार्ग है।'

ऐसे ही अनेक प्रकरण हैं, जो पंडित के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करते हैं। जो भी पंडित जी के संपर्क में रहा, इन जीवन-मंत्रों का लाभ मिलता रहा। उनका अपराजेय आचरण था। वे केवल विचारों के स्तर पर जीने वाले प्राणी नहीं थे। ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी पं. नरेन्द्र शर्मा स्वयं में तीर्थराज प्रयाग थे।

●



पंचम पुष्प

राम का गुन-गान

राम का गुन-गान करिए!
राम प्रभु की भद्रता का,
सभ्यता का ध्यान करिए!

राम के गुन, गुन चिरंतन!
राम-गुन-सुमिरन रतन-धन!
मनुजता को कर विभूषित,
मनुज-मन धनवान् करिए!

राम के गुन सरस सावन,
कुटिलता-कल्मष-नसावन,
राम-गुनगन-गान गंगास्नान
— गंगास्नान करिए!

सगुन ब्रह्म, स्वरूप सुंदर!
सुजनरंजन भूप सुखकर!
राम आत्माराम —
आत्माराम का सम्मान करिए!

निधिपति - प्रतिनिधि

राम निधिपति, भरत प्रतिनिधि राम के!
अपरिणामी राम, कारण भरत शुभ परिणाम के!

और ऐसा कौन, संस्कृत विकृत को जो कर सके?
प्रकृति की ममता, अहंता जीव की जो हर सके?
कह सके जो, राम ही निधिपति अयोध्याधाम के?

अवध बन जाता वधस्थल, वधस्थल बनता अवध;
भरत के कारण न सज्जनता सहज तजता अवध!
भरत ने क्षण किए करतब विधाता वाम के!

अवध सार्थक है भरत के नंदिग्राम-निवास में;
सांख्य प्रकृति-प्रधान सार्थक भरत-योगाभ्यास में!
राम सायन, भरत निरयन सूर्य अन्तर्याम के!
त्याग-भाग-विवेक, अविचल टेक, अविरत साधना;
भरत-व्रत में निहित राजा राम की संभावना!
भारतीय गृहस्थ प्रतिनिधि हों भरत निष्काम के!

भरत की कर्तव्य-मति में नागरिक अधिकार हैं;
भरत भारत के सुभग भवितव्य के आधार हैं!
मन हमारे सगुण मंदिर हों भरत-गुण-ग्राम के!

सुलभ-दुर्लभ

दान का अनुभव सुलभ है, किन्तु अनुभव-दान दुर्लभ!
सुलभ है अभिमान मन में, किन्तु जग में मान दुर्लभ!
सुलभ है व्याख्यान जिसका, बहुत दुर्लभ ज्ञान उसका—
जन्म का रोना सुलभ है, मरण की मुसकान दुर्लभ!

नरेन्द्र शर्मा

५९४, उन्नीसवां रस्ता,
खार, बम्बई-५२.

मिलन

मिले मेले में, प्रिये, हम परस्पर पूरे अपरिचित!
अधूरे दोनों; परस्पर इसलिए पूरे समर्पित!
लगे हम ज्यों ही गले, मेला अचानक उठ गया था;
चले जब हम साथ, प्रति पद पंथ में सब कुछ नया था!

देख प्रति पद नए को, मन में लगीं यादें पुरानी-
याद हो आया, कभी मैं गुसाईं था, तुम गुमानी!
बालपन के मित्र — जीवन भर रहे दोनों वियोगी;
कौन-सी पीड़ा, निषिद्ध समाज के हाथों न भोगी?

रहे अविवाहित, विवाहित जन्म भर हम हो न पाए!
हुए जन्मान्तर कि मन का रत्न अनुपम खो न जाए!
नाम-रूप अनेक धारण किए, कारण से अपरिचित;
अकारण मिल गए मेले में, नियति-गति रही अविदित!

ध्यान यात्री को नहीं गंतव्य का रहता जगत में!
निर्णयात्मक क्षण पड़ा रहता न जाने किस परत में!
परत पर परत खुलती है, खिला जाती कुसुम को;
चिति अपूर्व के बिना, प्रिय, देख हग पाते न तुमको!

क्षण नियत है, जो समय की सुरभि मुरझाने न देता;
सुअवसर वह, सुअवसर को हाथ से जाने न देता!
प्रत्यभिज्ञा और क्या है? — इस सुअवसर को न खोना;
सूत्र में जन्मांतरों के मेरु माला का पिरोना!

नरेन्द्र शर्मा

५९४, उन्नीसवां रस्ता,
खार, बम्बई-५२.

मिले मेले में अपरिचित, सुपरिचित हो कर चले घर!
सदा सहयोगी रहेंगे, साथ है निरुपाध भीतर!
प्रिया पत्नी पतन में उन्नति, सतत सहधर्मिणी है—
देह-यात्रा की सखी, सस्नेह शुभ सहकर्मिणी है!

सप्तपद-व्रतबद्ध जन को सीढ़ियाँ हैं युगलमंगल!
प्रणय-पथ में पितृयों की पीढ़ियाँ हैं स्नेह-संबल!
पितृ-ऋण-मोचन करें हम श्राद्धदैविक स्वधा-धन से;
धर्म-कर्म निबाह कर, अवकाश लें आवागमन से!

खिला सारस्वत कमल जिसमें, दिखा मानस सरोवर;
सुनाई पड़ रही पावकभृंग-ध्वनि श्रुतिमधु मनोहर!
बाँट ऋषियों की धरोहर, बढ़ें ऋत-पथ में प्रहर्षित—
चढ़ें पर्वत के शिखर पर, पथ ऋचाओं से प्रदर्शित!

सत्य, ऋत का पुत्र गणपति, द्वाररक्षक शिवसदन का—
पूज्य कुलदैवत—प्रथम वंदन करें सिन्धुरवदन का!
वह अनादि अनंत, अग-जग में चतुर्दिक ध्रुव गजानन,
सुरक्षित जिससे सतत शिव-चरण-तल आनंदकानन!

शक्ति कुलदेवी हमारी जगज्ज्वालामालिनी माँ—
जाम्बुनद-भूषण-विभूषित नित्य सौभाग्यशालिनी माँ!
प्रणति शरणागत हमारी करें जब स्वीकार माता,
कर प्रकाश-प्रसाद वितरित देव ऋण मानव चुकाता!

नरेन्द्र शर्मा

५९४, उन्नीसवां रस्ता,
खार, बम्बई—५२.

परा का पहरा निरंतर दे रहे हैं विरज अच्युत—
शब्दब्रह्म-स्वरूप हनुमत को नमन है विनय-संयुत!
राम भी हैं ऋणी जिनके, ऋण न उनका हम उतारें;
विरज वज्रांगज करें रक्षा सदा, जब हम पुकारें!.

शब्द, जिनका गुण — वही निर्गुण गगन शिव हरिहरेश्वर!
ज्ञानगंगाधर अविस्मरणीय हैं हर चंद्रशेखर!
सुकल्याणी उमा के प्रति सुदाक्षिण कल्याणसुंदर—
हों सदैव कृपालु प्रेमी युगल पर, भू पर, भुवन पर!

गेह शाश्वत स्वर्गसीमा अन्तरात्मा में प्रतिष्ठित—
गेह में [illegible] मतिवती मर्यादा सदा सक्रिय अनिद्रित!
देह मंदिर है, शिवा-शिव प्रतिष्ठित जिसमें निरंतर;
मिले मेले में अपरिचित, सुपरिचित यह हमारा घर!

———— ० ————

नवयुग की दुलहन

नवयुग की दुलहन बैठी है खँडहर हुई हवेली में।
नई सुबह हँसती है उसकी मेंहदीलगी हथेली में।

आँगन खुरच रही है बैठी, पदनख पाटल पाँखों से,
खोद खोद कर पूछ रही इतिहास विगत, नत आँखों से;
लिपटी बैठी है भविष्य की गतिविधि- पीली सेली में।

माँटी के खाट-खटोले, वह सूरज की किरनकनी,
कनकरेणु में वेणु बजाता आता होगा श्यामधनी;
केका-रव गूँजेगा उसकी चपल चाल अलबेली में।

आलिंगन में बँधते-बँधते ललक-पुलक क्रीडा होगी,
आज कजतकथा विहुँसते से बारह [illegible] क्रीडा होगी;
आँगन में अंकुर फूटेगा सावन-रैन अकेली में।

ॐ

सैन्यगीत

हिन्दुस्तान हमारी आन,
आन हमारी हिन्दुस्तान।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान! हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान!

हम इसके, यह देश हमारा।
बलिदानी वीरों का प्यारा।
कर्मवीरता का सूरज है,
वीर धर्म का है ध्रुवतारा।
हिन्दुस्तान हमारी शान,
शान हमारी हिन्दुस्तान।
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान! हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान!

यह अपना घर, अपना आँगन।
है कन कन इसका मनभावन।
जन जन के जीवन का रक्षक,
रक्षित है अक्षत सिंहासन।
हिन्दुस्तान हमारी जान,
जान हमारी हिन्दुस्तान!
हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान! हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान!

सैनिक ने पहना है बाना।
सीखा है मंजिल तक जाना।
मर्यादाओं का प्रेमी है –
हिन्दुस्तानी दिल मर्दाना।

॥ भारत का संविधान ॥

[नरेन्द्र शर्मा]

भारत है बलिदानी वीरों का आत्मदान !
भारत है एक, एक-भारतीय संविधान !

संविधान सार्वजनिक मांगलिक प्रतिज्ञा है;
भारत प्रभविष्णु, जन सहिष्णु की अभिज्ञा है;
भारत का संविधान आप्तों का आत्मदान !

ससम्मान सामूहिक स्वीकृति का मूलमंत्र;
आधारित हो जिस पर विधिवत् अनुकूल तंत्र -
जन-जन जिसमें विशेष, जन-जन जिसमें समान !

अश्रु-स्वेद-शोणित से सिंचित यह कल्पवृक्ष;
सम्मति से संबोधित भूमि-व्योम-अंतरिक्ष;
भारतीय सत्ता का सिंहासन-हंसयान !

है यह संकल्पवृक्ष भारतीय जनगण का;
जनगणके द्वारा है अधिकारी रक्षण का;
संविधान जनगण का संरक्षक मूल्यवान !

प्रावधान सावधान परिवर्धन-हेतु यहाँ;
नित्य और नूतन का संबोधन-सेतु यहाँ,
भारत का नाम यहाँ, भारत का है निशान !

सम्मुख संप्रश्न एक, एक यह समस्या है;
भारतीय संविद् क्या, संविध भारत क्या है;
उत्तर है — प्रतिनिधि हम, निधिपति है वह महान!

भारत के योग्य बनूँ, सविनय मैं प्रार्थी हूँ;
भारत मेरे न योग्य — कहूँ अगर, स्वार्थी हूँ;
भारतीय विधि-निधि का स्वार्थी को कहाँ भान!

विद्यमान-वर्त्तमान, संवर्धन-सुसंभाव्य;
भारत का संविधान, भारत का महाकाव्य;
संविधान, प्रतिभारत भारत का सामगान!

भारत है बलिदानी वीरों का आत्मदान!
भारत है एक, एक भारत का संविधान!

राजकुमारों को निरख, हर्षित जनसमुदाय ।
आज हस्तिनापुर नगर, फूला नहीं समाय ॥

*

जानें जो बोलें नहीं; बोलें जो अनजान ।
कर्ण स्वयं कैसे कहे, क्या उसकी पहचान ॥
जन्मजात कुंडल-कवच, जिनका वर्ण सुवर्ण ।
पालक का है वर्ण जो, सो बालक का वर्ण ॥

*

शंखनाद ने कर दिया, समारोह का अंत ।
अंत यही, ले जायगा कुरुक्षेत्र पर्यन्त ॥

अथ स्वागतम्, शुभ स्वागतम्!

आनंद मंगल मंगलम् —

नित प्रियं भारत भारतम्!

नित्य निरंतरता नवता,

मानवता समता ममता!

सारथि साथ मनोरथ का —

जो अनिवार नहीं थमता!

संकल्प अविजित अभिमतम्!

कुसुमित नई कामनाएँ!

सुरभित नई साधनाएँ!

मैत्री मति क्रीडाङ्गण में,

प्रमुदित बंधु भावनाएँ —

शाश्वत सुविकसित इतिशुभम्!

— नरेन्द्र शर्मा



षष्ठम् पुष्प

ON THE SANDS OF TIME

Shakespeare said "Death comes when comes." He believed in the Destiny of Providence. But when B.R. Chopra says "This is no way to die," he perhaps means that Pandit Narendra Sharma could have afforded dying some other way. Perhaps Mr. Chopra feels that he could have postponed his death and could have avoided dying so abruptly. This all goes to suggest that Mr. Chopra believes in the Divinity of Man. Narendra Sharma certainly had that divinity in him to choose his death. Who knows that it was the chosen way of Narendra Sharma, the Rishi to die like that ? In the context of B.R. Chopra's Mahabharat, Pandit Narendra Sharma has played his role of Bhishma Pitamah to die the "Ichcha Mrityu" (Desire Death) -- leaving Mahabharat half-way. Whereas others acted Mahabharat, Narendra Sharma lived it. He did not know the things just for knowledge sake. He was a precious combination of unfathomed knowledge and life of boundless joyousness.

Narendra Sharma was ever the Narendra Sharma. He needs no prefix or suffix unless you need glorifying one. He lived the world, the world never lived him. The world could never prevail "to be too much" with Narendra. No worldly temptation could defile the purity of his thought and sanctity of his action. He matched everyone, but none could match him. He had an unending treasure of knowledge never to repeat himself. There was always a 'God's Plenty' to offer new gifts each time. He was extra - ordinarily ordinary. Seemingly so simple, so accessible,so small, tiny stature to be outstood, but once you threw a pebble into his fathoms, he stirred out all oceanic - hiding in him the vast and deep ocean of knowledge and wisdom. Then he would pour out the brilliance of pearls at his bottom. He was everything-- the poet, the philosopher, the patriot, the revolutionist, the pioneer, the professionalist in radio, T V and film, the astrologer, the writer, the journalist, the connoisseur of art, music and dance, the laureate, an orator and WHAT NOT ? But basically he was a Kavi - Rishi, and his other forms were just tributaries.

Shesh- Ashesh is the Holy Urn. It contains the valuable remniscences of the luminaries. It contains the precious tears of bereavement mourned in earnest sincerity. It contains the

holy prayers paying homage to the departed Soul. We all hold this Holy Urn in the immortal memories of Pandit Narendra Sharma who now lives in the ethereal world with his beloved life - partner Smt. Sushila Sharma and whom the Almighty Death now cannot part with.

We are deeply thankful to the authors, who have contributed their sentiments and feelings in the context of Pandit Narendra Sharms and 'Shesh - Ashesh' is an otucome of their association with us. I, as the editor of Shesh - Ashesh personally feel privileged to have been all the way along with such distinguished stalwarts in the luminous galaxy of various spheres. We also regret the undue delay in taking out this Granth due to reasons beyond our prevailings. We once again thank you all for your participation and patience to bear with us.

And lastly to share the emotion of all, I am reminded of Tennyson's following lines:
"And the stately ships go on
To their haven under the hill,
But O, for the touch of a vanish'd hand
And the sound of a voice that is still !

-- **INDRABAHADUR SINGH**
EDITOR

INDEX

A THOROUGH GENTLEMAN

●Anil Biswas

There he was, poet Narendra Sharma, talking to Devika Rani when I arrived at Bombay Talkies after my tour of Punjab in 1943. We were introduced, and there were immediate vibes between us. It was as though we had known each other for a long time.

At that time, the need for a poet at Bombay Talkies was necessitated as , after their two successful films, 'Basant' and 'Kismat', the two poets, Pradeep and P.L. Santoshi, had gone their separate ways, the first to join Rai Bahadur Chunilal's group and the latter to plan his own projects.

When and how Narendra was called, and by whom, I did not know and it did not matter. Suffice to say, it did not take us much time to instinctively hit it off together. Our next production 'Hamaari Baat', was being planned and after the story was finalised, music was the second important subject. And then it was there the first lyrical poem in the form of a truly romantic song 'Main unki ban jaun re'. Let me explain a little further 'Lyrical poem and 'romantic song'. In my career of a decade in the film world (by then), I had given music for two scores films. But the songs were always situational, never really romantic film song.

Thereafter, it was the combination of two creative elements - the words, and the music. There was never an occasion when I could object to any word of his songs as unmusical. Who can forget songs like 'Saanjh ki Bela, Panchi akela' or 'Sarson Peelee dhaan sunehley, Saajan mera Sanwaria', or 'Mere aangan mein chhitki chaandni'?

We worked for these two pictures 'Hamaari Baat' and 'Jwar Bhaata' (in which incidentally, Dilip Kumar made his debut). By 1946, however, Bombay Talkies started disintegrating, and we had to seek new pastures.

This was our introductory period. We did not come together for any film after that for the simple reason that

when I was called, the lyricist was already selected, and when he was called, the music director was already there.

But this did not slacken our contact. We stayed almost across the way from each other in Shivaji Park. By then, another literary giant had come to stay in between our houses - Pandit Amritlal Nagar. There was hardly a day when we did not meet at one of the other's place. The renowned Chhayawadi poet, Sumitra Nandan Pant, sometimes used to visit Narendra, and we all used to meet on my open verandah. At this sangam different currents of Hindi literature used to merge, and the result was a complete Bliss. You may well ask as to how it was enjoyable for me, a Bengali ? There were two reasons; one, I also started my life in Calcutta as a lyricist; two, as both Bengali and Hindi stemmed from Sanskrit, we had no difficulty in understanding either the words or the nuances of our creations. Yes, I say ours, because they used to force me to recite some of my own poems - insignificant as they were. All the same, they used to enjoy complex in that august gathering. This is when the lotus bud of Hindi started opening in my mind's eye, and I lost myself in the real beauty and fragrance of the lotus that was Hindi literature.

I had constructed my own house by then and an idea struck me to start regular sitting of like-minded friends. We started a meeting on Sundays calling it Ravi-Vasar. Here we decided not to speak about films at all, but discuss only literature and philosophy. Soon, many friends gathered. There were Narendra, Mahesh Kaul, Dr. Safdar 'Aah' Sitapuri, Pandit Chandrashekhar, Mr. Sengar, C.L. Kavish, Ramanand Sagar and other poets like Ghosh, Sahir and Majar, whenever they were in town. On that day it was open house for literary people only. Epics like Ramayana, Mahabharat and Geeta and work of J. Krishnamurthy, Khalil Gibran, and many other luminaries of letters and philosophy used to be read and discussed. Another beautiful aspect of this meeting was that the poet had to bring and recite a poem written during the week. It went on till 1952. Then it disintegrated, the details of which are beyond the sphere of this article.

sometime during this period, Narendra had joined A.I.R. as producer. Here he found a free avenue for his creative imagination. He was not bound by the dictates of the

producers in the name of so-called public taste. Here, he designed a beautiful programme Kavi Aur Kalakar. Four different poets would recite their poems and different artistes would sing them. In this programme, Lata, Talat, Mukesh and Shailesh Mukerjee sang songs of Narendra, Dr. Safdar, Deepak and Bharat Vyas. His next and most important gift to A.I.R. was the programme of Vividh Bharati, which was named and totally conceptualised by him. We inaugurated this programme at Cowasji Jehangir Hall with two of his compositions, 'Naach Re Mayura' sung by Manna Dey, and 'Rakh Diya Nabh Shunya Mein Kisne Tumhe Mere Hriday', sung by Lata Mangeshkar. 'Naach re Mayura' is merited as one of our finest compositions for the point of view of a harmonious blend of words and music. Manna Dey, as proclaimed in one of his recent interviews, has rated this song as one of the best non-filmy songs that he has sung.

By this time, I was also disillusioned with the industry and its so-called fad of modernity in film music by which was meant plagiarism of western pop songs. I, too, joined A.I.R. in 1963 as the Director of National Orchestra, and thereafter, Chief Producer of light music in 1965. Here, we again became collegues, as he was then Chief producer of Light Music. We produced many programmes together. I have also tuned some of his lovely literary poems like'Aaj ke Bichude na jaane kab Milenge' and 'Choumukh Divala Baar dharungi Choubare pe Aaj'. For the programme of Kavi aur Kalakar, I had tuned another of his gteat poems 'Yug Ki Sandhya' sung by Lata. Here, we were not bound by the so-called public taste, and produced these songs for the deserving listeners, who would understand, enjoy and appreciate the nuances of music and words.

Now, for some of his startling qualities. He was a man of great principle. He was at home at once both in English and Hindi. He was a great orator. I have never heard him read from a prepared paper on any subject except once at a film seminar in Delhi, where we both read papers.

This brings to my mind incident when one of his poems came to my rescue in a critical situation. After the same seminar, Naredra, Pankaj Mallik and I were invited to Teenmurti House to meet the Prime Minister, Pt. Jawaharlal Nahru. After the preliminary formalities, the Prime Minister

requested Pankaj Mallik to recite a song. Mallik sang the popular Tagore number 'Ekla Cholo Re' where upon he suddenly turned towards me and requested me to sing in Hindi, Not expecting this, I was suddenly at a loss as to what song to sing. All at once I saw Narendra moving amongst the guests, and quickly recalled his poem. 'Rakh Diya Nabh Shuny Mein'. Although I sang but two lines I saw Pandit gaze fondly at his daughter, Indira Gandhi, when the word 'Indu' was mentioned in the second line.

He was natural and spontaneous speaker with a free flow of language and expression. He was apt at putting across a bitter point without offending the sensibilities of listener. He was a thorough gentleman, and revered by all around him for his sagacity and his soft-spokenness. I have never seen him losing his poise or his patience; he had a tremendous sense of propriety.

It is a not much publicised fact that besides being a poet and literary figure, he was also an excellent astrologer. Being a close family friend, he had cast the horoscopes of all my grand children.

I met him for last time at his home in October, 1987. He was then busy giving the final touches to the serial 'Mahabharat.'

POET NARENDRA SHARMA

●Atma Ram

Poet Narendra Sharma has passed away and left a great vacuum in the hearts of his friends, admirers and millions of countrymen who have for generations heard through his poetry and lyrics, his message of love and beauty. Today's time of conflicts, sufferings and tensions, a man of only Sharmaji's stature exuded peace and tranquillity in every word that he spoke and wrote. One wonders from where he derived his inner strength which was like a beacon light for ships in dark, stormy nights in the vast sea for his help. His deep study of our Indian Epics, his intimate knowledge of Tulsi Ramayan, his high stature as a poet in Hindi literature, and his close association with today's mass media, radio, television and films, made him the most outstanding personality of the mass media in the country.

Sharmaji, all his life, remained a man of faith in the divine law at a time when the world around us seems to be falling to pieces in seeking materialistc ends. His firm faith in his God,'Ram', gave him that certainty and confidence which attracted all the weary and suffering individuals to him for guidance, including some very famous ones such as Lata Mangeshkar, Raj Kapoor and others who perhaps felt lost in the mids of modern day conflicts. His knowledge of astrology (to which I have not subscribed since I do not think it as an exact science), his intuitive understanding of human nature, and his insight into our epics and literature made him the ideal guide for many a troubled soul who met him, or read him, or listened to him on the radio or TV. They went away satisfied with a new vigour to face the problems of life.

It did not trouble Sharmaji that some of his views were contrary to modern, scientific and rational thinking; for he knew that the rational mind eventually succumbs to love and faith which are above and beyond reason. He spoke of love and faith in one God and made one cast away the desire for materialistic ends.

I first learnt of Sharmaji's beautiful lyrics when I saw Navketan's "Afsar" which was produced by Chetan Anand in 1946. The film had Dev Anand and Suraiya in it and Sharmaji's song "Nain Diwane Ek Nahin Mane" superbly tuned by late S.D. Burman and sung by Suraiya was a highlight in the Picture. "Afsar" did not do well at the box office, but Its music can be heard even today, after more than forty years, Such was the enchanting quality of Sharmaji's lyrics that his songs continued to please listeners for generations, long after the pictures for which they were written were forgotten.

My late brother Guru Dutt, a legend in his own time and more so today, must have come into contact with Sharmaji either in Bombay Talkies or in Navketan, where Guru Dutt later directed his first film "Baazi". I remember Guru Dutt spoke of Sharmaji with great reverence since the two met often in those days, in late forties, when Guru was an asstt. director with Gyan Mukherjee and Amiya Chakravorty, and Sharmaji was in Bombay Talkies or was free lancing.

It is significant that Sharmaji was private secretary to Pandit Jawaharlal Nehru from 1940 to 1942 at the height of the freedom movement in our country. Yet, he does not seem to have taken the least advantage of his high connection for himself or his family, as most others would have done. But therein lay his weakness, from the point of view of today's time and his strength of character from the point of view for all times.

Sharmaji's honesty and integrity of character was stamped in everything he spoke, wrote and lived. It is interesting to note that in 1953 he joined the All India Radio and started Vividh Bharati. He was with All India Radio till 1972 and it is significant that during this period he was permitted to write lyrics for films but he did not do so, and stuck to his assignment with All India Radio, with single minded devotion. His contribution to Vividh Bharati and All India Radio is a fine record of his talent, gifts and his

administrative skills, inspite of being a poet, which he passed on to hundreds of others.

He retired from All India Radio in 1972 and was immediately signed by Raj Kapoor to write for "Satyam, Shivam, Sundaram." Whatever Raj Kapoor's personalised view of life which was reflected in his film, Sharmaji's lyrics came across to millions of people in a clear and vivid manner like a gem from our past Sanskrit culture. It was as though Sharmaji's view of life had got a chance to be put across in Raj Kapoor's film.

During the occasional meetings I had with him in the last thirty years, I found him accessible to one and all film personalities, high and low, politicians, social workers, writers, friends and relatives. He had an open house and everyone felt at home at Sharmaji's, his wife Sushila, and his son, Paritosh, playing host, gracefully. I always wondered how he never seemed tired after spending so much of his time descussing, advising and, of course, writing. I still wonder where he got his energy from, even in his mid seventies....

Sharmaji was close to the film industry and was also highly respected in the field of literature, the mass media and Government. In a sense, he was the true ambassador of the film industry to the world outside, and particularly to the Government. An industry which has been misunderstood all along for the facade of prosperity put on by some of us, particularly the stars, an intellectual, an artiste of Narendra Sharmaji's stature brought about the right feeling for the film industry, one of concerns for an artistic form which it reaches out to the masses. The public, and those in Government looked upon him as an artiste of high merit, a man of integrity, an idealist, and one who showed the way to millions. His life of simplicity and contentment seemed far away from the rat race with which we all live.

As Sharmaji would have us look to the Bhagwat Geeta, he performed his duties in the 75th year of his life, two hours before his death, just as he had

done all his life. B.R. Chopra and the "Mahabharat" unit totally depended upon him for the highly successful serial "Mahabharat" for which Sharmaji gave all the basic ideas, characterisations, selection of verses, guidance for costumes and sets, etc. He would be consulted by the unit almost any time of the day or night, since there was no other walking encyclopaedia like him.

Sharmaji himself prescribed ayurvedic medicine to those who came to him for advice. However, I am told that two years before his death, he went through a thorough allopathic medical check up which found him in good health. But two days before his death on 11 Feb, '89, just seventeen days before his 76th birthday, he had gone walking nearly seven miles into town. However, his daughter tells us that walking was not unusual since he never gave up his habit of long walks. The end came when he had a massive heart-attack at 5.30 p.m. on 11th Feb, '89 and he passed away before it was 10 p.m., the same night, alas too soon for all of us who had great affection for him. Sharmaji will be remembered for many of his writings, but I find it difficult to forget those words which I have heard over and over again in the bhajans sung beautifully by Lata Mangeshkar and Bhimsen Joshi. Every word of his song reminds one of his love and faith in Ram and Krishna.
"Ram Ka Gun Gaan Kahiye Shyam Ka Gun Gaan" and "Sumati Sita Ram"

Sharmaji has left us, but his work will live with us for all times, inspiring everyone to follow his example of a good life, purposefully lived.

A DEEP IMPRESSION

●A.T. Singhvi

My association with Pandit Narendra Sharma has been very fruitful. For this, I am indirectly grateful to The Times of India, because it is within the portals of this institution only that I had the fortune of first meeting Panditji, when we had planned to bring out bumper issues of our immortal epics 'Ramayana' and 'Mahabharat' in the comic forms for the first time in India under the banner of 'Indrajal Comics.'

Judging by his physical appearance, Panditji, (Narendra Sharma) was short in structure, fair, slightly built, simple one in Dhoti and Kurta, but nontheless possessed some inner intellectual charm which attracted you like a magnet and of course once you conversed with him, you were overawed, for he was very learned man and had vast insight on varied subjects. So learned though he was, he was very humble and this very nature accompanied by his simplicity endeared him to one and all.

Each meeting with Pandit Narendra Sharma left a deep impression on my mind and always made me aware on the vastness of knowledge in this universe and how much ever one learnt it was like in the words of Howton, "Picking up some pebbles on the sea shore while the whole universe is unexplored before us".

His sudden demise has certainly left an intellectual void, I shall miss the person of such a calibre who are rare to come by.

●

THIS IS NO WAY TO DIE

●B. R. Chopra

Standing on the promontory of time, I look before and after into the timeless space and search for a face in the clouds. The fleeting clouds pass by. Suddenly a cloud materialises into the face,the ever-smiling face of Pandit Narendra Sharma. I ask him, "Why have you left us and so soon?"

He says : "It is not in our power to live or die.
For fates of men rule from above the sky.
I was called and I had to say good bye."
But he never had time to say good bye.
On that fateful saturday, I talked to him on phone in the afternoon, a cheerful voice, a bubbling full of live voice spoke to me. He had not been feeling too well for a couple of days. I enquired after his health and he beamed back with enthusiasm."I am absolutely all right. Let us have the sitting tomorrow."
'But tomorrow is Sunday.'
'So what? We can meet at your house.'
'Time ?'
'The usual 11 a.m.'
'Then we could take our lunch together.'
'Why not?'
So, that was all fixed. A meeting on sunday. Instead, I met his body.

In the evening around seven, there was a phone call from his daughter. The voice was trembling. It said - 'papaji is not too well and he says that tomorrow's meeting may not be possible. We are shifting him to a nursing home.' I had a few friends for dinner at the house and could not immediately run up. But my mind was all in tension. It was certainly not with my guests. Around nine, there was a phone call which my son Ravi took. When he came back after attending the phone, he told me - 'Dad, I am going to see Panditji at the nursing home.'
'Anything wrong?' I asked.
'No he is all right. I will just go and look him up.' He went. But somehow my heart continued to be in panic after this phone call. Perhaps it was the premonition.

At the dining table, to the utter surprise, of my family and friends I did not eat anything. I could not give the reason. I just could not eat. My wife did not take anything either. Then came my son. I rushed to him. He said - 'Panditji is all right.'

That night I could not sleep. For reasons not known to me. In the morning when I came out of my bathroom, I found two of my family doctors, Dr. Kapoor and Dr. Hemant Kumar sitting in my room. I was surprised. I could hardly know the reason. Then my wife and my son came in. To my inquisitive looks Dr. Kapoor said "Bhai Saheb, we are here to give you a sad news and we want you to be brave. Panditji has left us. In fact he died last night itself but knowing your attachment to Panditji and your weak heart they wanted to break the news only in the presence of a doctor.'

This was a bolt from the blue. This was the last thing I could expect. I don't know what happened to me then. How I was able to bear the news. The Doctors did not record my blood pressure. They simply watched me take my head in my hands, shedding silent tears. I decided to present a brave face and I did, inside I felt completely broken.

Panditji had become a part of me, a part of my life. My friendship with him was not very old. I was no doubt a fan of his poetry. We had met a few times, but I could not claim any intimacy. It was "Mahabharat" which really brought us together. And in "Mahabharat" he soon became an inspiration. A great guiding force. He became the guide and adviser. He was in fact, the pilot of the Team. Both, as a scholar and as a man he was just superb. Difficult to say who was better; the scholar or the man.

Even now it is difficult to believe he is gone. His spirit still continues to haunt us and our sittings. He is still the guiding spirit - literally the guiding spirit. I can never forget him. Nobody can. But I must tell him if he be listening - 'This is no way to die. How could you let us down? This was never a part of your character.'

BATTERY CHARGING STATION

●Gul Anand

Pandit Narendra Sharma had the youth and energy of 16-year old youth and brain of 100 - year old person. He was bubbling with energy. I found him like a battery charging station. Anyone being feeling low or depressed just had to sit in his company for two minutes and the youthful energy, unparalled enthusiasm and jest for life and knowledge would charge up the visitor in two minutes flat. This was his unique quality, besides being an authority on Indian Mythology and Poetry. His contribution and concern for me was also unique. For the first time, he wrote the disco song for my film "Jalwa".

●

A LETTER TO A FRIEND

My Dear Narendraji,

I hope you remember the first time we met at Bombay Talkies, when Mrs. Devika Rani had then taken over. She planned to furnish it with intellectual talent and plan outstanding films which would have cultural backgrounds.

Shri Bhagwati Charan Verma and yourself joined the company. You were in charge of lyrics and also collaborated on seven plays. Our attraction was mutual with our literary background. We found many things in common, English poets and dramatists. You were fond of Shelley and Keats. I was fond of Byron. We used to exchange our thoughts. ''Hamari Baat'' was your first film. You had written all the lyrics, who can forget the lines you had penned "Badal Dal sa'' ''Woh aye chanda ke rath me''- "Aye Bade Saba Ithalati na Aa'' they were acclaimed by every one. In the course of our friendship we found so many things in comman; love of books, philosophical discussions, human psychology and astrology. Whenever we had leisure, we used to travel by local train and go to Fort, searching bookstalls and buying whatever we wanted.

Even then you had a trait, which you professed all through, the purity of Hindi Language. You would not compromise for ordinary rythmic songs popular in film music.

It was in that period you had an admirer in Raj Kapoor, who was then an assistant Director. You had the quality to be respected both as a scholar and a person - a combination so rare. Sometimes we used to talk of your prison days, how you and Dr Keskar assisted Pandit Nehru as Personal Secretary.

After Bombay Talkies, you went to new posture on your own. I used to be frequent visitor at your place. Then came the happy occassion of your marriage. So the Godiwala family and your life partner Shrimati Sushilaji, who was also a writer and a painter.

I also remember the occassion of attending a Kavi Sammelan with you at Indore for Shri Maithali Sharan

Gupta and on our trip to Indore, we paid our respects at the Mahakali Temple, when you told me that Ujjain was the centre of learning in bygone times. We both revelled on our visit to the rains of Mandu. It was a memorable trip. I was an onlooker when hundreds of your admirers gathered around you.

It was then at Bombay Talkies we bought a plot of land together and built our homes and remained neighbour for a number of years and it was there I met Shri Sumitra Nandan Pant and admirer of yours to whom I had taken an instant liking. We were there working in different institutions. About our talks late in the night (about philosophy) I used to take down notes and discuss it at our next meeting. Some times we were joined by Shri Dilip Kumar and Raj Kapoor. Our families grew up together and bond was strengthened.

I had the good fortune of meeting eminent personalities - poets, music directors and people who respect you.

We had our annual family function on Dassera. I knew you were not religious as commonly accepted. You had spiritual learnings and you introduced me to your preceptor Nyaya Ratna "Vinodji" in Poona. We made visits to him both at Bombay and Poona for which I am grateful to you.

Our children got married, the occasion we both shared. I also remember your trip to United States as a "Visiting Professor" sponsored by the Govt. of India. I still have the tie and your letter you wrote to me from Los Angles. After your return we discussed the life style of Americans, their way of life and philosophy. It was the first time I had seen you in a western attire after that you always wore Khadi dhoti-Kurta. I could not read your poetry but you read if for me. It was beautiful in thought and content.

We had one more thing in common - a habit we acquired and that was PAN-chewing a proper diversion. I also remember your strong Gandhian views and your love for Ramayan especially the "Sunderkand" which you used to read everyday. I used to watch you silently.

Our meetings became rare as we both were involved in our daily life. I always came to you for advice on problems,

domestic and professional. As time passed, our children grew up with education and got married. We had the pleasure to see and hold our grand children. The way of a complete life. Conscious of our responsibilities as it should be.

You were one of those persons with a vision for the future of our country. TIME does not matter, you said. "Generations will pass by, but our cultural heritage will shine forth to make our country one of the leading ones with our ancient Cultural Heritage, and make us feel proud that we are Indians."

I learnt much from you regarding our spiritual heritage as I was handicapped due to my ignorance of not studying Hindi. You completed my education. I shall always remember our association, our hope, our aspiration; How to be a better human being, to look upon every one with love and compassion and bring happiness and peace to troubled souls.

I love you for that.

Yours,
JAIRAJ

A RARE GIFTED PERSON

●Kavita Krishnamurti

I had the great fortune of meeting Pandit Narendra Sharma in the year 1975. A friend of mine had some work with him and I accompanied her to his residence. After my first glimpse of him, I knew I had met a very great man. He had a tranquil face, a calmness and peace that comes from spirtuality and enlightenment.

My friend and I had doubts regarding certain aspects of the 'Ramayan' . We put forward our questions, and I shall always remember the lucidity and clarity of his explanations. What I admired most was the fact that though he had achieved eminence and worldly success as a poet, he had the rare gift of being able to stay detached from materialism.

I have had the honour of singing a couple of songs written by him for the serial "Mahabharat". Though I had met him only a few times, I shall always treasure the privileged moments I had with him.

●

A CREATIVE TALENT

●K. N. Singh

"I first met the late Shri Narendra Sharma sometime in 1944 at Bombay Talkies when "Jwar Bhata" was under production. He was such a quiet, self-effacing man that I did not discover until almost the end of the production that he was the dialogue writer of the film. That was the time when another literary figure of renown, Shri Bhagwaticharan Verma, was also writing for films. Another common friend was Dr. Moti Chandra, Curator of Prince of Wales Museum, Bombay, who was my neighbour living a few buildings away. I would meet Sharmaji whenever he called on Dr. Moti Chandra. He was great scholar of Hindi literature and Hindu mythology. Pandit Narendra Sharma had a Master degree in English literature from the Allahabad University. He was author of several books, and he wrote some of the most memorable lyrics for films. His humanity and modesty combined with his great erudition made him extraordinary person in the world of films. His contribution to the television serial "Mahabharat" is well known. In his death Indian cinema has lost a highly gifted creative talent."

●

SHRADHANJALI

●Lajju Kapadia

Dear Shree Narendraji called me his advocate. We all know that his truth, honesty and genuine concern for everyone did not need one. He just belonged.

He was totally and completely Indian and lived and breathed in him our cultural heritage . Like one of the saints of our epics, he believed in goodness. So he had faith in India's future glory.

His detailed and vast funds of knowledge of mythology, astrology and Ayurveda helped him in his lifestyle, which was simple and natural. He was always there to give solace and sympathy to all.He guided like a kindly light. Problems moral, social, mental, medical and marital all started taking different routes under his enlightened outlook. Confused and worried souls went to him and the burdens became manageable. Naturally, there are no easy replacements for such a person.

Narendrajee was extremely unassuming and avoided limelight. Almost a Fakir in his daily habits, he lived his life in the present world with commitment and cause.

In today's polluted, currupt and artificial world he was as rare as fresh air. A friend, philosopher and guide who was always available simple and spontaneous. His gentle gesture quietly accepted me warmly. He would tell me "grow along with me Lajjuben, the best is yet to be." His giving was of himself and his precious time. These moments of sharing which must have enriched and fulfilled him. Giving without expecting.

Narendrajee could walk miles, travel by train, bus or taxi because he cared. He did not suffer from nerves. Only the other day when I mentioned Kundalinis awakening to him. "Oh Lajjuben". He said seriously "Both you sisters (his wife and me) have already awakened Kundalinis". "No jokes" I said, "or I will not speak to you." "Never mind," came the reply "I will speak to you."

Somehow I feel that Narendrajee has not died, he still lives in his lovely children and Sushilaben, a way of life

that lives in our midst. His prayers to the gods, always walking by his side.

PANDIT NARENDRA SHARMA:A CREATIVE INTELLECT

●M.D.Gaikwad.

I had heard a lot about him but I got an opporunity to meet him only in 1987. Shri Keshav Pande, the then Dy.Director General had come on tour to Bombay and he wanted to have a preliminary discussion about Vividh Bharati Service with Panditji.He told me that one single person involved right from beginning in the formation of Vividh Bharati Service is Pandit Narendra Sharma. And since we are thinking of reviewing and revising Vividh Bharati Programmes we must consult Panditji. Director General Shri Amrit Rao Shinde had specifically asked to take Panditji's advice.

I rang up Panditji to fix up an appointment. I heard a very soft, friendly, warm voice speaking in pleasant Hindi and inviting us anytime. I could not believe my ears immediately, I was thinking that a person associated with Film world for such a long time, keeping himself busy all along, how can he be so friendly to invite us anytime. I informed him the time we planned to see him and kept the receiver.When we reached him I saw a nice bungalow which is a rare site in Bombay these days. In the entire locality, infested with sky-scrappers all along, this was the single bungalow with veranda, garden and the climate of cosy home. Panditji in spotless white Dhoti-Kurta and Paan in his mouth was there to welcome us. He impressed me a lot, and let me frankly confess here that very rarely I got impressed by personalities I came across. My first impression not only lasted till the end but was strengthened day by day.

His personality was a rare combination of intellectual height and creative urge. He was poet at heart but at the same time a profound scholar. He was very well read person having deep interest in a number of subjects like philosophy, sociology, astrology, astronomy, history and literary developments in Hindi, English, Sanskrit, Urdu etc. When

we say he was a very well- read person, the statement does not convey correct meaning. I have seen a large number of well- read persons, who only store the information. In case of Panditji, his analytical capacity was more glaring than mere information. He had tremendous information with him but over and above that, he knew the inner meanings and correct inter-relation.

It was to be really a treat to be in his company. I considered myself fortunate that on a number of occasions, I had enjoyed that privilege. Once Director General, All India Radio Shri Amrit Rao Shinde expressed his desire when he was visiting Bombay on tour to go and see Panditji no sooner than he arrived at airport. We straight drove to Panditji's home and spent almost two hours with him He had a number of ideas on Radio Programmes. He had his views based on long experience, deep thinking and readings of almost every thing important on the subject. You simply open any topic and listen to him. He used to give not only available information on the subject ,but also the deep meaning and interpretation in the present day context. I shall always feel sorry that one recording was planned by All India Radio, Panditji has given his consent but it could not materialise for want of time. We had planned to survey entire Vedic Literature and its interpretations in the present day society.

I am tempted to remember one more meeting with Panditji along with Pandit Vinod Sharma. We must have spent hours with him but none of us could realise so. Vinodji used to open some topic or ask some probing question just to provoke Panditji to talk and we kept listening to his views, interpretations, deep meaning on that topic. I wanted to know something about Panditji's association with Pandit Jawaharlal Nehru. Vinodji simply opened the topic in his ways and we learnt a lot. And it were not only scholarly discourses, but lively discussions on any subject under the sun that too along with his warm hospitality.

In a very brief manner, I would like to record my own experience without any exaggerations that the hours spent with Panditji were the most precious in my life. He made me think on very basic issues. He was a treasure of knowledge, poet at heart, pleasant personality of a sage,

a rare combination of poet, scholar, sage and above all true representative of Indian Culture.

A GUIDING FORCE

●Manjeet Singh Kocher

Late Padit Narendra Sharma was a man whom it isn't easy to forget. But for me, he was a man of understanding, a guiding force, a man to command respect and above all a father. In his quiet way, he could discourse on any subject. A man of learning, his knowledge was wide . A scholar of many talents. It is rare to come across someone of his calibre. He never had a harsh word for anyone. He was always worried about others and never thought about himself. His qualities were numerous and I find that there is a shortage of words to praise him. For me, he was always there, whenver I needed him and I will never be able to forget him.

●

HOMAGE TO A GREAT SOUL

●Manna Dey

I remember my first meeting with dear Panditjee when I was asked by Shri Anil Biswas, a very distinguished Music Director of yesteryear, to sing a song penned by him, the kind of lyric I never had heard or sung before "Naach Re Mayura, Khol Kar Sahastra Nayan...". I simply fell in love with the song and even to this day I, am asked to sing this superb composition by lot of deserving listeners. Then onwards I have had the good fortune of singing very many of his unique compositions.

I was truly drawn to the quiet charm of Narendrajee. Everytime we met, I made it a point to discuss various topics and many other contemporary subjects . It was an education listening to him.

He always seemed to be so kind, so patient, so gentle, never saying a harsh word against anybody and yet voicing his views ever so sympathetically,even on matters he did not whole - heartedly agree with.

He was a thinker par excellence . Every song penned by him provided a lot of food for thought to the diserving listeners.

In these days of mediocrity, his not being in our midst leaves a big void in our hearts.

My profound respects to the departed Soul.

"SARASWATI PUTRA"

●Nanda Singh

The day I met "papa" I kenw beyond all doubt that I had met a "Saraswati Purta". The world knew him as a poet but he was no ordinary poet he was a genuine seeker of the Eternal, who expressed himself in poetry. At times one felt that Saraswati herself flowed from his pen and words to enlighten his readers and listeners. His writings conveyed his deep commitment to Truth and the Reality that lies hidden and yet inextricably interwoven in the fabric of life.

Papa had intellectual grasp coupled with a simplicty of approach on whatever topic he touched.Sometimes he gave a heavy and complex matter such a simple turn that it became easy to understand.He had a natural gift of speaking to each person at his or her own level of understanding and so those who come for his advice were enriched by the experience. However, at this point it is imperative to say that he never watered down the truth even for a moment.

If the occasion demanded it, he gave it straight and unabridged, and yet it was done in such a noble and unselfish manner that few could resist the thirst. He was one of the most frank and outspoken persons I have ever met. I could count on him to tell me the truth no matter what, and so he was the first one I would run to when I was in difficulty and doubt. His advice was always straight forward and uplifting, in fact some to the things he told me at such times have become my personal polar stars guiding me when my seas get rough.

There was a fineness about him that is rare to find. A refinement not just of manners but of thought, word and deed, which was so deep-rooted that it went beyond the cultivation and polish of a life time.

Papa was not an astrologer but knowledge of Astrology could easily have been the envy of astrologers all over the world. Every horoscope he saw even once was forever indelibly printed in his memory and even after that whenever a question arose he could instantly recall the horoscope of the person concerned, and point out the factors

which were benificial or adverse, and advise accordingly.To date, computers cannot be carried around wherever one goes but "Papa" did, his phenomenal memory was his super computer with its instant recall. Astrologically he could go to the heart of the matter with a clarity and spontaneity that had to be seen to be believed. In my experience "papa"was always proved correct in whatever he said to me and my family.

His knowledge of Ayurvedic medicines was profund. In fact, with this knowledge of Astology he had the added advantage in diagnosing people's troubles. There are many who will testify to their being cured by his medicine.

Not only did he prescribe medicines, he often gave verses from "Ram Charit Manas" and other sacred books.As I recall, my Masis and Mother were worried about my marriage not taking palce. "Papa" must have been consulted on the matter. One morning I was given a crisp yellow sheet of paper which had verses from "Ram Charit Manas" written on it in red ink, I was told to recite them daily after a bath. Idid not know "Papa" then, but I recited the verses regularly every monrning and after about a year and a half, I was married. I stoped reciting the verses then, but the piece of paper still lies in my puja with the other prayer books.

He had a very simple life. The doors of his house were never locked, Anyone could walk in at any time. There was always a warm welcome. "Papa" was always smiling and serene. Yet there must have been times when the family faced a difficulty or when the wherewithal of life were needed.But there was never a hint of tension or strain. Hundreds of people went to him with problems, ailments and doubts, and each came away with an answer or at least each one had been courageously brought to face the truth. Papa gave....gave.... not of material things but of his heart and soul. He gave from the wealth of knowledge and experience, and what material gift can compare with that?

At the time of his passing, I went to break the news to another learned soul whom "Papa" revered and with whom he was in close contact. I was told to go back and give a message to the sorrowing children. It was to say in his own words: "Maa-Baap Kabhi marte nahin hain, Woh

Kisi na kisi roop main, kisi na kisi tarah se milte rehetain hain."

what a revelation..Truth is eternal, and those who live with Truth as the very breath of their life, can never die, because Truth never dies. It lives eternally. Who can pay tribute to such a man, and who can grieve for him ? Truth is, and in Truth he is... with us ...forever.

NARENDRA SHARMA

●Naushad Ali

Narendra Sharmaji was known to me when he used to work in All India Radio. Beside being a great Hindi poet and a scholar, he was a secular man. He was also well versed with Galib and Mir, the great Urdu Poets. He had written beautiful songs for Hindi films, which will always be remembered. Void that he has left in Hindi Film and Hindi literature will always remain.I always had great regard and respect for him. God rest his soul in peace.

●

PANDIT NARENDRA SHARMA

●Nitin Mukesh

Words had a very special relationship with Pandit Narendra Sharma. To write some words in his praise would really be like holding a laureate par-excellence is merely saying the obvious.

Today while penning my memories of Panditji, I would like everyone to know the impact he had made on my life and on the life of my beloved papa.

I hardly need to emphasize the importance of the Ramayana in the life of any Indian. Thus when Papa was asked to render the selected verses of the Ramayana, he considered it to be the fulfilment of the objective of his life. It was Panditji who selected the verses to be rendered and inspired my Papa to reveal his artistry in all its grandeur. Today Papa's rendition of the Ramcharitmanas is a timeless classic.

A decade after Papa passed away, the Gramophone Company of India Ltd., decided to record the 'Sampurna Sunder Kand', the most significant chapter of the Ramcharitmanas. In the course of deliberations on the choice of the artiste, Panditji decided that I was the most natural and logical choice. He was the prime motivation force behind the Sunder Kand - my life's most important and satisfying work to date. It was as if Lord Shri Rama had chosen him as the medium to shower his blessings on my family.

I would like to sum up Panditji's life with these famous lines:

"The life of greatmen all reminds us, that we too can make our lives sublime and departing leave behind us our footprints in the sands of time."

●

SHRI NARENDRA SHARMAJI

. ●Pandit Ravi Shankar

I came to know of Shri Narendra Sharmaji when he was associated with my late brother, Shri Uday Shankar in the early 40's when he was making his classic film 'Kalpana'.

About the same period, I met him personally and knew him better in Bombay,where I came settle down and pursue my career as a sitarist and creative compositional work. I was struckwith Sharmaji's sweet, simple, warm and loving nature but at the same time his strong personality when it came to his being a poet and a literary genius. I met him of and on throughout all the following years but came into closer contact with him at the period of the ASIAD in 1981.

It was such a joy for me to give the tune and set it as a memorable song that he wrote: "Swagatam Shubha Swagatam, Anand Mangalam, Atipriyam Bharata Bharatam. It was an absolute hit as the opening song of the Asiad, and still being being performed in many official functions all over India.

His poems will be immortal being of highest quality in Hindi literature as well as his innumerable lyrical songs he wrote for the films. It is amaging that a literary giant like him could adapt so beautifully to writing film songs which could be appreciated equally by the highly educated to a common man.

This unique person will be missed by millions of his admirers for many years to come.

The unique person will be missed by millions of his admirers for many years to come.

●

HOMAGE

●Pramod C.

I have tried to write down some memorials of Narendra Chachaji, but so many things come to mind that I do not know where to start. He was the youngest person among my father's friends, so I was naturally most attracted to him and he always made effort to talk to me in a grown up way. So I learned a great deal from him for he was a very wise and thoughtful man. And also with a lively sense of humour who looked kindly upon the troubles of the world.And so I remember many things, events and conversations that surface at old moments but they slip away so that I have little to say after all. ●

PANDIT NARENDRA SHARMA

●Raj Singh Dungerpur

I had the privilege of listening for the time to Pandit Narendra Sharma,when I was at the Daly College a leading public School in Indore, in early 50's I along with my schoolmates had gone to listen to Kavi Sammelan where all the leading lumanaries of Hindi Poetry were present including renowned national poet Shri Maithili Sharan Gupt,and Pandit Narendra Shrama had recited his famous poem 'Aaj Ke Bichade Na janne Kab Milenge'. It was indeed a captivating experience. But little did I realise then that this very friendly dignified personality was one day going to have such a tremendous impact on my life such as no one before or after perhaps will ever have.

I came to Bombay in 1959 after completing my education and must regard it my misfortune that I did not meet pandit Narendra Sharma till early 1972. Meeting was casual, but the impact was massive. Inhalf a dozen more meetings I started calling him "Papa", and he was generous enough to accept it till the last day of his life.Pandit Narendra Sharma was a most patriotic individual that I have met, most highly educated individual I had the privilege to know. He was an embodiment of culture, he was the poet of the highest class. How does one recapture this multi-parallel and he was so interesting and interested in what was happening around him. He had knowledge, culture, patience, partiotism. He had all the facet of Hinduism, religion, Philosophy. Astrology, Astronomy, Ayurved a name what you can and Pandit Narendra Sharma was deep seated into it and yet he was so simple, sensitive that it could be misleading that you were in the presence of such a person. If he chose to exploit any of his above mentioned aknowledgable qualities (Thats what every one does in this city) he would have had a queue from Linking Road to his house on 19th Road everyday.

I come from an educated family. My father was a ruler of Dungarpur State for 25 years and then jumped into the democratic process of opposition for 10 years in Rajasthan,

and was the speaker of the Rajasthan legislative asembly. My one uncle went to Oxford University-Maharaj Veer Bhadra Singhji who was also the Prime Minister of the erstwhile Dungarpur State. My other Uncle Dr. Nagendra Singhji went to the Cambridge University and he was a distinguished I.C.S. Officer and president of the international Court of Justice, Hague at the time of his death, and yet without the slightest doubt or hestitation I proclaim Pandit Narendra Sharma, as a most educated person that I have come across any time any where.

Papa was a man of all seasons and an ocean of knowledge, He was born poet, but was equally at command over his prose whether it be English, Hindi or Urdu. He could write poetry which was patriotic, romantic and objective. At the same time I have seen him read and reply postcards for his milkman ! He wrote lyrics for film songs with unique adoptability and acceptability. Of course how can one forget his great contribution for H.M.V. of Audio Cassettes of the Epic Ramayan which was the bedrock of Pandit Narendra Sharma's philosophy of life. It made Mukesh Chandra Mathur the immoratal singer. The most popular television serial of "Mahabharat" was perhaps his last and most lasting contribution to culture of this ancient land of ours, as also fitting farewell to one of the great Indians of our time.

Pandit Narendra Sharma lived in Bombay. I do not think he wanted to stay here for even twenty four hours, to places where intellectuals resided not amongst people like you and me deep seated in opportunistic materialism. I like to imagine he should have spent his life either as the Chancellor of Hindu University of Banaras or his very own Allahabad because he yearned to live next to the flowing Ganges, but destiny chose otherwise. He had a family to which he was committed and he loved them all. And yet it may sound contradictory that he neither belonged to his family, nor did he belong to the film world, much les even to his contemporary poet friends or poetry.He truly and really belonged to India . Because if there was one crowning quality which stood above all other qualities that I can remember about him is his patriotism, it was perennial. He was Gandhian o the core and Gandhian not just "Khadi" based no, he weaved out Gandhian philosophy to our young men who were grouping in the dark. He lit the lamp of

INDIAN culture. Pandit Narendra Sharma was a commited Congress man who towards the end of his life was completely disillusioned by the congress of the day. He was supreme optimist when viewing India as a great country. He had been to jail during the independence movement. But he never visited to a single congress man for any favour. He spent hours and hours listening to B.B.C. because his mind's window wanted to be open. He was well-versed in international affairs. To me it will remain a mystery, as to why a man of his calibre and commitments was never recognised by the powers that be in Delhi. He was embodiment of courtesy, culture and patriotic commitments. Men will come and men will go and I think the likes of Pandit Narendra Sharma will never come again, or was he the most perfect man who lived modestly amongst us, all imperfect people? May God bless his noble soul. Whence come another...

REMEMBERING NARENDRA SHARMA

●Randhir Kapoor

I got your affectionately worded letter.

The Desire of the moth for the star,
Of the night for the 'Morrow',
The Devotion to something afar,
From the spheres of our sorrow'.

Shri Narendra Sharma is no more with us in the phenomenal world, but he shall be remembered always for his inspired poetic compositions. He wrote beautiful songs really. How can anyone forget that beautiful song: 'Satyam, Shivam, Sundaram'. The film world shall always remember him.

●

AN ENLIGHTENED SOUL

●Ritu Nanda

We are all born to die! Born to play the role our past Karmas have screen played for us! For a happy navigation through existence, all human beings are empowered to alter the impact of the good or the bad Karmas during their life time with the help of self realisation, a path which could be attained with the help of a Guru of profound thirst for knowledge and application of the same.

Sharmaji was in my perception one such enlightened soul who through the power of his mind, attained self realisation and spread it to mankind near and far away from him in his own way:

Through thousands of written words in poetry which was communicated through books,

Through modern communication medium of television into the sublime minds of millions of viewers by interestingly and intelligently writing the screenplay6 of powerful myhology called Mahabharat,

Through powerful compassionate philosophical lyrics which were communicated to masses either by All India Radio or by similar geniuses like Mr. Raj Kapoor on celluloid.

Through astrological predictions which still amaze me till date

Through ...

Death loses its sting because people like Sharmaji do not die!They live eternally through their work. They are immortal.

Great souls like Sharmaji are precious jewels in the tiara of our mother land India who will twinkle as long as the sun and the moon shine.

I was told he had a premonition and had written his last poem dedicated to his loving wife and caring son.When I heard the poem it brought strenght to my grieved soul which had also recently suffered similar sting from the death

trying to part my beloved father from me....

Through his written words Sharmaji perhaps was making his last contribution not only to his loved ones- but to any living being who sometime or the other would have to face the sting of death. I wish his family would continue the spirit engraved by the departed soul.

through sharing his last poem with humanity is surely one way.....

A TRIBUTE

●R.V. Ishwar

I am indeed happy and feel proud that even though I am a small man I had the privilege of very close association with industrious, celebrated Sharmaji. As a student and subsequently as a teacher of Hindi, I have had several occasions to apreciate the literary work of Panditji.

I have also had the proud occasion to receive him to preside over the convocation of our organisation 'RASTRABHASHA PRACHAR SABHA, MATUNGA, in the 1950's and remained spell bound by his 'DEEKSHAANT BHASHAN'which even today would be reverberating in the minds of the students who happened to be present on the occasion. I hold these memories with fostering affection.

●

UNENDING OCEAN OF KNOWLEDGE

●Sachin Shankar

During my days at Uday Shankar Culture Centre at Almora, all great men of Art moved around us like the great mountains, snowfalls and the majestic nature itself.

Poet Sumitranandan Pant was there also and when after many many years I went to him at Dadar, I was excited to meet another celebrated poet Pt. Narendra Sharma.

Uday Shankar taught us the art of dancing. He was our Guru and gave strength to face a world hostile to dancers. At that time, (year 1943\44) we were hesitant to introduce ourselves as dancers. Uday Shankar gave us self confidence and we appeared on the cultural scene a bit afraid, nervous and uncertain.

After meeting Pt.Narendra Sharma, I soon realised that here was an extraordianary man who could inspire anyone with his incomparable easy and yet deep approach to knowledge. I soon became his follower.

Another chapter of my life commenced. Uday Shanker showed us the way that miracle could happen if we apply 'Body & Mind' together for any profession. Unknowingly my training started with Pt.Narendra Sharma.

The first strikingly modern ballet I made was a theme called 'Fisherman & The Mermaid' based on the story by Pt. Narendra Sharma. It was a theme of how a simple Fisherman gets swayed away in the wrong path after acquiring wealth and power.

The ballet still remains one of my most succesful comositions. This was because Pt. Narendra Sharma guided me in the whole script and even in dance develompment. I realised for the first time that a dancer having a beautiful body will charm the audience quite for sometime. But a dancer with a mind trained in literature, philosophy and human life could be useful till the last day of his life. My

mind developed to see the beauty in human characters and he trained me completely in different directions whereby I applied my mind to see the truth, to be part of life, to say the inner depth of people's life and not just dance.

Pt. Narendra Sharma thereafter guided me for 3 ballets of distiction which were produced in 1953, 1945 and 1960. The charm of the ballets was enhanced further with the music composed by Hemant Kumar, Anil Biswas and Ravi Shankar who were also his admirers.

As a choreographer, it was poet Narendra Sharma who brought me to the frontline emphasising the fact that dancers need knowledge, wisdom, literature and the company of writers and poets.

At times I used to mention that Narendra Sharma was choreographer himself. Given a capable dancer as his assistant, he could easily produce work of great art for the stage. Many a times I had rushed to him for guidance during the making of ballets 'Sanjh-Savera' and 'Jay-Parajay',- all his themes. Many impossible situations were solved by him instantly.

The like of poet Narendra Sharma will never be seen again. He drew people towards him and he made difficult arguments, complicated matters look very simple with his profound understanding.

But has the country honoured a poet of his stature with publication of his unpublished lyrics and literature? He passed away and I always feel it was a tragedy that we could take so little from his unending ocean like knowledge and beauty of life.

NARENDRA - ASSOCIATION WITH A.I.C.C

●Sadiq Ali

I greatly cherish my brief but intimate association with Narendra Sharma. He was with me in the A.I.C.C. Secretariat at Allahabad in the late thirties. He was incharge of its Hindi department even though Hindi or Hindustani had yet to get its due place in the Congress scheme of things. It is good to recall the political environment for Hindi when Narendra assumed the responsibility. Most of the A.I.C.C.work was done in English despite Gandhiji's stress on Hindi or Hindustani. The working committee of the Congress carried on its deliberations mostly in English. There was, of course, the outstanding exception of Maulana Azad. The other exceptions were Khan Abdul Ghaffar Khan and Seth Jamnalal Bajaj whenever they chose to express themselves on any issue. Gandhiji, at times, spoke in Hindi but he was often prevailed upon to speak in English. It was important and necessary that each member of the working commitee understood correctly what Gandhiji meant. Further, all the proceedings of the working committee and the A.I.C.C.meetings were in English. There was however one important change. In the A.I.C.C.deliberations and the deliberations of the annual open session, there was a growing number of Hindi and Urdu speakers. It was in this set-up that we had Narendra Sharma in charge of the Hindi department.We were all happy with him. It fell on him to translate all Congress resolutions and the A.I.C.C. circulars in good effective Hindi. Congress resolutions in those stormy days carried great weight. They did not just contain Congress decisions on issues of the day. They were, in not a few cases, a clarion call to the nation to be ready for a grim trial ahead and a source of inspiration not only to congressmen but to millions outside the formal congress register. At all A.I.C.C. meetings it was important that the Hindi knowing members had the Hindi translation in their hands along with the original English version. It was Narendra Sharma's task to produce quick translations and he did it with ease and without fail.There was also some correspondence in Hindi which Sharmaji handled for the period he was in the A.I.C.C. secretariat. He would have been with us a few

years longer but with the coming of Industrial Civil Disobedience Movement and the 1942 final struggle for freedom the working of the A.I.C.C.office was thrown into some kind of a turmoil.

Narendra Sharma was a poet in the making when he was with us in the A.I.C.C. Secretariat. Association with the A.I.C.C.in those days meant active association with India's struggle for freedom and experience in prison life if not anything more extreme.Narendra was ready for this experience but he had a wider range of interests. He had pronounced literary tastes. He had contacts with literary figures in Allahabad. Sumitranandan Pant and he lived under the same roof. In Pant, he found a perennial fountain of inspiration. These two were kindred souls, the elderly Pant treating Narendra almost as his son. Narendra was a highly sentimental person. Dryness formed no part of his nature. He gave affection in abundance and also received it in abundance. In life it is not easy to have friends with whom you could be on terms of close intimacy. If Narendra had this gift it was because he never conceived his friendship in gain and loss terms. I saw how outside his poltical or semi-poltical activities, he could live a life suited to his artistic nature. He was altogether a very lovable and warm-hearted human being.

When freedom came, Narendra had to work for a living but the work had to leave him scope for the expression of his personality and the deep urges of his soul. Had he so wished he could have easily carved out a poltical career for himself. He knew intimately quite a few political leaders. He was a keen observer and an eager participant in India's struggle for freedom. Gandhiji's life and personality had made a profound impression on him. This is evident in the book he wrote and the verses he composed on his life. The whole bent of his nature, however, did not go well with the rough and tumble and the possible coarsenesses of political life. His temperament and the literary gifts he possessed, drove him into non-political fields of activity. The venue of work kept changing but there was one constant factor, the poetical and artistic side of his nature. This you find in his writings in both prose and poetry which are of a considerable quantity.As for quality. I am not competent to judge but his writings, I dare say, should show his serious mindedness and a search

for some aspects of Truth and Beauty. Those who have worked with him in the post-independence period all testify to his high level of integrity and seriousness of purpose.

I am,in this small contribution of mine, confining myself to the period of my association with him and the very agreeable impression he left on all of us. Thirties and forties of the twentieth century were a period of time in our country, when apart from India's struggle for freedom, we seriously debated socialism, communism, democracy, Gandhian thought and other poltical and social creeds.Life during this period, was for all serious-minded people not an empty or meaningless thing, a thought which does visit our minds and in the current phase of human evolution when ancient solidarities and certainties are being replaced by widespread doubt, scepticism and uncertainty in several vital fields of life. Life then had a meaning and a purpose and we seriously strove to realise it.

In India of our early days, there was also a new sense of pride in our rich cultural heritage. Narendra Sharma shared in this pride . This continued, it seems, throughout his life. It acquired new depths after independence. This showed itself in his writings and many of his activities, even in his day-to-day conduct. His friendship was a kind of treasure I would wish to cherish in life.

PANDITJI'S MEMORY IS A PART OF ME

●Sanjeev Kohli

Each time, I set aside sometime, uninterrupted, to pen my thoughts on our great Panditji. I realise how unequipped I am to do so. SANSMARAN must feature contributions from people who could claim to have rubbed shoulders (if that was at all possible) with Panditji and not by non-entities like myself. My only comment is that for me, personally, Panditji was a God figure-I cannot believe he was mortal and unbelievable, though it may seem, I dream of him sometimes, as if he was very much part of the world we strive in.

Let alone his art, his creativity, his words, I am too ignorant to comment on that. For me, it was Panditji, the ever smiling, omnipotent figure, I always encountered, too happy to give others happiness never have I met one like him and doubt I ever will. He was like a balm to our sores; an oasis in a dessert; a great reliever of pain.We would reach him full of fatigue and sometimes anguish and would leave refreshed and smiling. So much so, it had become a habit to drop by wherever we were struggling in the suburbs.After a while, I reduced doing so as I did not wish to encroach on his time with the family because once we went there,we never felt like leaving.

Every major step in my life, I had to have Panditji's approval, not from the astrological view point but merely for his blessings. My move to live in London was a decision I had to take in two days and somehow I reached Panditji for his advice, knowing fully well that he may not take kindly to my idea of living away from our own country. He was, however, whole heartedly supportive of this step because he understood the reasons well, except, he warned me that it would be atleast an eight/nine month struggle on my own without my wife, child and that is what happened. Anju and Akshay could join me only in May this year.

I consider myself fortunate to have the pleasure of his presence at many opportunities. I also consider myself

inadequate to share it into the rest of the world I am a very private person and Panditji's memory is a part of me.

A HOMAGE

●Satish Bhatnagar

I remember Panditji most as a story-teller. He had perfected the art of story-telling. His narration was powerful but gentle as warming to the heart and as nourishing to the spirit as any I have ever come across. He was remarkably creative and he invested his talent only in the right places.

It was an honour and priviledge to work with him and while preparing the scenario of B.R.Film's TV serial,'Mahabharat'I really got to know him well. During our discussions through his creativity and wealth of knowledge, he gave us insights of the rarest kind.

He took us into worlds, we did not even know existed.

He was a perpetual source of moral inspiration Whether he spoke in English or in Hindi, the sweep of Indian culture came sharply alive in all its dramatic intensity and soaring imagination. Such was his command over the language and varied subjects you discussed with him. It appears that he had so much to say, but not enough time to say it.

Whatever he wrote, he wrote 'from the inside', immersing himself in his subject as deeply as possible. His writing, whether it is prose or poetry, has been distinguished by its intensity in the interpretation of the subject matter at hand in human terms. He had a passionate interest and curiosity in everything of the past literature, Ayurvedic medicine and astrology were his main interests of life. He understood the strength of the spoken word and his contribution in shaping the programmes of Vividh Bharati in All India Radio will never be forgotten. Similarly, he understood the language of cinema just as well, as he did of the written and spoken word. He tried to build bridge between the cinema and literature.

Hailing from Uttar Pardesh and educated at the Allahabad University, he took to Bombay and Bombayities and they took to him in an astonishing way, yet he never changed from being the clever and cultivated mixture of a simple lad from a small town in U.P.Bombayites, however, will

always remember him as a father figure, a judge and a philosopher, who was a genius in no certain terms.

●

A TREASURE HOUSE OF KNOWLEDGE

●Shirin Sabawala

Several years ago, a friend with whom I was working on a project, took me to a person who was known as an authority on Indian thought and philosophy, and this is how Narendraji came into our lives.

We would visit him periodically to consult him on a text, on the meaning of a concept, on Ayurveda, on Astrology, on some personal difficulty and whether or not we were satisfied on that level, we always returned the richer for having met him. He was generous to a fault with his time and his affection.

When I was asked to write about Narendraji, my husband said, 'You'll mention his gentleness of course". My daughter added, 'The milk of human kindness flowed through him.' And I thought to myself, 'I miss him'.

But his knowledge went beyond the academic. It was made humane by his deep understanding and his wisdom, the wisdom which comes from inner experience.

He lived a full life in this world, but in the final analysis his whole being was given to the quintessential self. 'Quintessential' was a favourite word. Somewhere during our conversations, it would always appear, for it was the fulcrum of his thinking and his living.

●

A FATHER FIGURE

●Sunil Dutt.

It is very rare to have amongst our midst a personality like the late Pt. Narendra Sharma. A scholar and an authority on Hindi and Sanskrit Literature and Mythological classics like 'Geeta' 'Ramayan' and 'Mahabharat' Pandit Narendra Sharma was a father figure to all Hindi Scholars and theologians alike.Whenever I met him, it was pleasure to hear him speak and he always treated me with love and attention which I shall always cherish.

●

SAVANT

●T.Sadashivam
M. S. Subbulaxmi

The name Pandit Narendra Sharma is dear to us for nearly half a century. When a few years ago, someone suggested that Smt. Subbulakshmi should sing the Hindi renderings of the Tamil song of the great Maha Kavi Subramanyam Bharati, we spontaneously thought of Pandit Narendra Sharma to translate a few songs of poet Bharati into Hindi.

During the production of my Hindi 'Meera' in which Smt. Subbulakshmi was featured as Bhakta Meera, Shri Narendra Sharma's association was of immense help to us. While we admired him as a great poet and a 'Savant' in Hindi literature we admired him as he was just simple and lovable. His fragile image with a hearty and friendly smile present all the time on his face could never be forgotten.

●

SWEET MEMORIES

●V.Shantaram.

I hold very sweet memories of my happy association with Panditji, especially when I was making the motion picture 'MATWALA SHAIR' (Ramjoshi)to which he had very kindly made his significant contribution in the turn of several appropriate and meaningful lyrics which even today are remembered. I have known him to be an amiable, understanding person, ever keen to offer his assistance and co-operation to all with whom he was associated. He was an intellectual giant and his contribution to enrich the Hindi literature will ever be remembered by posterity.

●

MY TRIBUTE TO NANAJI

●Sindoor Shah

My salute and tribute to my most beloved Nanaji. Words and language cannot express my love and feelings for him. This line, which I have written is very common. But, if said from the centre of the heart, it means and counts a lot.

Whenever boredom knocks on my door, I sit back in my chair and remember and feel that tiny, small, little wrinkled hand on my head and words repeat,'इतने बड़े हो जाओ' these were the words of blessings given to me by my Nanaji, whenever we met.

He used to teach me the three chief lessons of life:
1.Have a big heart
2.Stand on your own feet.
3.Have your own name in the nation.

No doubt he was a scholar in languages, but the best language he ever knew was the 'Language of love'! We all (six grand children) never felt that this one is loved more and that one less. For him we all were same . So is our love for him. Once more I salute him and say good-bye because I have less words to say for love has no words to express itself and how we miss him!!!But still I will remember that tiny, small, little wrinkled hand on my head in time of need.

May the departed soul sleep in peace!

●



सप्तम् पुष्प

पंडित नरेंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त स्वयं के संबंध में परिचयात्मक विवरण :

पूर्ण नाम : नरेंद्र शर्मा
घरेलू नाम : नरेंद्र
पिता का नाम तथा व्यवसायादि : पं. पूरनलाल, गांव के पटवारी थे
माता का नामः श्रीमती गंगादेवी
कुल गोत्रादिः गौड़ ब्राह्मण, भरद्वाज गोत्र

जन्म तिथिः २८-२-१९१३, जहांगीरपुर, तहसील खुर्जा, (उ.प्र)

परिवार के अन्य सदस्य भाई-बहनें और उनके संबंधः पहली माता से दो बहनें और एक भाई। भाई की मृत्यु १९४५ में, एक सहोदरा छोटी बहन थी, जिसकी बाल्यकाल में ही मृत्यु हो गई थी।

विवाह, समय और स्थान : १९४७, १२ मई, बंबई

पत्नी का नाम - वंशादि : श्रीमती सुशीला शर्मा, गुजराती परिवार, अंतर जातीय विवाह।

अपना परिवारः मेरा भतीजा नगेंद्र गांव में रहता है। भतीजी गायत्री और जमाता डॉ. शिवशंकर शर्मा 'राकेश' जी,

मेरे बच्चे : तीन बेटियां और एक बेटा। बेटियां शादीशुदा हैं। वासवी बकुल मोदी (बच्चे मौलिक-शौनक), लावण्या दीपक शाह (बच्चे सिंदूर-सोपान), बांधवी दिलीप काथरानी (बच्चे कुंजम -दीपम) परितोष (बेटा) अभी शादी नहीं हुई है।

शिक्षा, कक्षा तथा शिक्षण संस्था विशेष परिचय सहित :
प्राथमिक शिक्षा गांव की पाठशाला से पास की। गांव में अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया। हाईस्कूल १९२९ में जे. ए. एस. हाईस्कूल खुर्जा। इंटरमीडिएट १९३१ में एन. आर. ई. सी. कालेज खुर्जा। १९३१ से १९३६ तक इलाहाबाद वि.वि. में शिक्षा और अंग्रेजी में एम. ए.

अध्यापक जिनका प्रभाव विशेष रहा हो-
दिशा विशेष निर्देश सहित:
जे. ए. एस. हाईस्कूल के हेडमास्टर साहब श्री एल. एन. माथुर से समाज सेवा, समाज सुधार, और भावनात्मक आदर्शवाद का प्रभाव ग्रहण किया। श्री महेश प्रसाद शुक्ल से इंटर में पंतजी और उनकी रचनाएं प्राप्त कीं।

काव्य की ओर रुझान हुआ। पं. अमरनाथ झा ने पहली पुस्तक 'शूल-फूल' की भूमिका लिखी।

रुचि और संस्कार : समाज सुधार, देश भक्ति, काव्य प्रेम, भावनात्मक आदर्शवाद, रहस्य चेतना।

जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं : १९२९ में राजनीतिक चेतना, १९२९-३० में काव्य रचना का आरंभ, १९३५ में प्रगतिशील आंदोलन, १९४१-४३ बंदी जीवन, १९४७-४८ रहस्य चेतना लेखन का आरंभ और प्रारंभिक रचना।

रचनाओं के नाम, प्रकाशन, सन् सहित :
शूल-फूल का प्रकाशन १९३४.
कर्ण-फूल १९३६.
प्रभात फेरी १९३८;
प्रवासी के गीत १९३९;
कड़वी मीठी बातें (कहानी संग्रह) १९४१;
कामिनी १९४३;
मिट्टी और फूल १९४३;
पलाशवन १९४३;
हंस माला १९४६;
रक्तचंदन १९४९;
अग्निशस्य १९५०;
कदली वन १९५३;
द्रौपदी १९६०;
प्यासा निर्झर १९६४;
उत्तर जय १९६५;
बहुत रात गये १९६७;
मोहनदास करमचंद गांधी (जीवनी) १९६७

सुवर्णा १९७१;
सुवीरा १९७३;
आरंभिक प्रकाशित रचना (स्फुट कवितादि-पत्र-पत्रिका के निर्देश सहित)
सरस्वती १९३२, चांद १९३२-३३
मित्र-मंडली : सामान्य (यदि कुछ उल्लेख हो) तथा साहित्यिक प्रयोग के, साहित्यिक व्यक्ति जेल-जीवन के साथी, कार्य-सहयोगी।

साहित्य-लेखन का अपना विशेष उद्देश्य- प्रेरणा :
प्रेरणा ग्रहण करना एवं प्रेरणा देना
वर्तमान साहित्य के प्रति दृष्टिकोण :
मध्यवर्गीय सीमाओं से आबद्ध साहित्य को व्यापक और मूल-मौलिक तक पहुंचना होगा।

स्वभाव, कोई विशेष घटना जो स्वभाव को परिवर्तित या प्रभावित करने में विशेष जान पड़ी हो : अपने स्वभाव के विषयमें कहना कठिन है।

नौकरी-आरंभ और परिवर्तन, समय-निर्देश सहित :
१९३४ 'अभ्युदय' (प्रयाग) में उपसंपादक;१९३८-४० अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,स्वराज्य भवन में हिंदी'अधिकारी; १९४९ काशी में; १९४३-४६ बांबे टाकीज, बंबई में गीत लेखन; १९४६-५३ स्वतंत्र लेखन; १९५६-७१ आकाशवाणी से सम्बद्ध
अन्य बहुधंधी जीवन में एकान्तिक साध।
''ज्योतिकलश'' **भारत-भारती परिषद्** द्वारा प्रकाशित अभिनंदन-ग्रंथ के सौजन्य से उद्धृत।

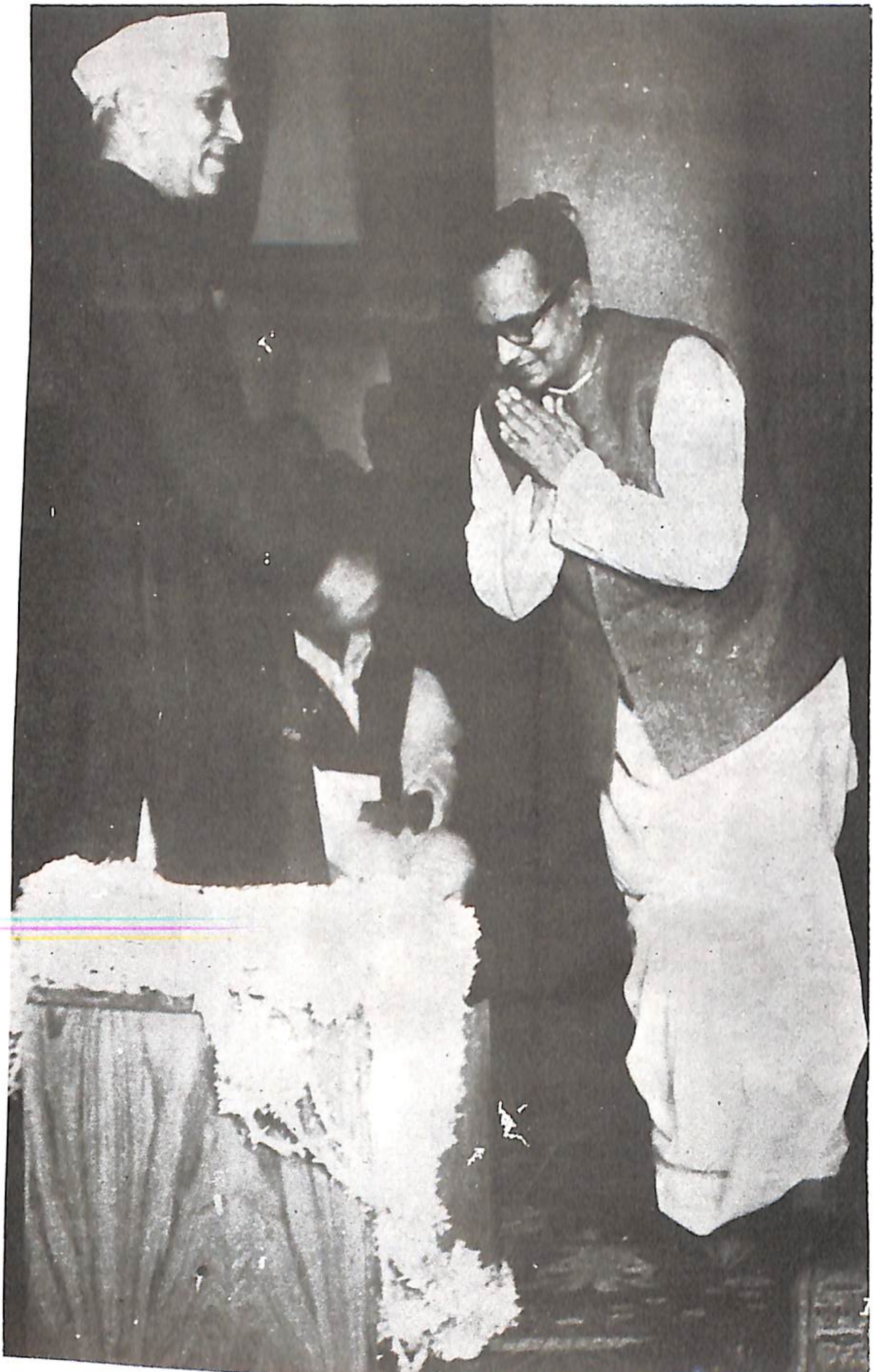
चित्रवीथी



छात्र नरेंद्र शर्मा - इलाहाबाद विश्वविद्यालय



पाणिग्रहण संस्कार



पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ



स्टूडियो में चिंतन की मुद्रा में



पं. नरेंद्र शर्मा, श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री अमृतलाल नागर



रूस में भारतीय शिष्ट मंडल (बांये से दूसरे क्रम पर)



खार स्थित आवास – इन्द्रबहादुर सिंह (संपादक), पंडित नरेंद्र शर्मा,
श्री श्रीनाथ द्विवेदी, परितोष शर्मा (पुत्र),
दूसरी पंक्ति - श्रीमती सुशीला शर्मा, लावण्या, बांधवी, वासवी (पुत्रियां)



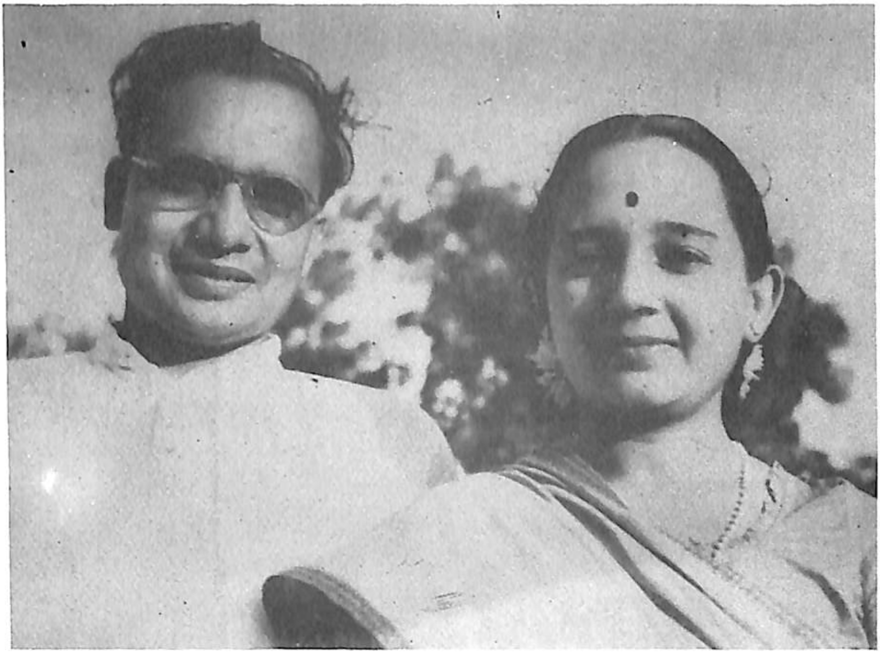
पं. नरेंद्र शर्मा (माइक पर), डॉ. हरिवंशराय बच्चन, रामरिखमनहर, पं. श्रीनाथ द्विवेदी



षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर -- स्वर-सम्राज्ञी लता मंगेशकर माल्यार्पण करते हुए ।



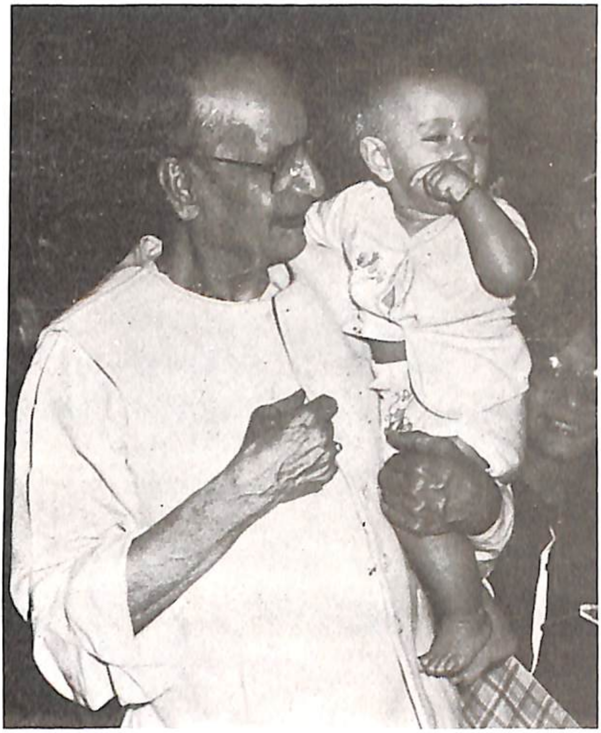
परिवार और पंडित जी



दांपत्य के क्षण



"सत्यम् शिवम् सुंदरम्" फिल्म का मुहूर्त करते हुए ।



वत्सल पंडित नरेंद्र शर्मा



महाप्रयाण

"छायावाद के जितने कवि थे, वे हमारे लिए एक प्रकार के आदर्श रहे और इस समय मैं बड़े आदर के साथ पं. सुमित्रानन्दन पंत का नाम लेना चाहूँगा, बल्कि हम दोनों ही नरेंद्रजी और मैं दोनों ही। ... हम दोनों ही पंतजी की कविता के बड़े प्रेमी थे। वे हमारे आदर्श थे। कवि के रूप में भी वे हमारे आदर्श थे और उनको आदर्श बनाकर उनसे कुछ सीख कर हम लोग कुछ आगे बढ़े। ... जब हम लोग आये, तो हमें ऐसा मालूम हुआ, शायद हिन्दी कविता को मनीषा की आवश्यकता थी, कि हम इस कविता में जीवन के संपर्क को लायें और मैं इस समय स्मरण करता हूँ कि नरेंद्र और अंचल, ये दो ऐसे कवि हमारे समकालीन हैं। ... हम लोगों ने कविता को एक नयी भूमि पर जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयत्न किया। यों तो नरेंद्रजी, मेरा ख्याल है कि इन चालीस वर्षों में, हमारी हिंदी कविता जितने सोपानों से होकर निकली है, उन सब पर बराबर पांव रखते हुए चले हैं। शायद प्रारम्भिक छायावादी, उसके बाद जीवन के संपर्क मांसलता लेते हुए ऐसी कविताएँ, प्रगतिशील कविताएँ, दार्शनिक कविताएँ, सब सोपानों में इनकी अपनी छाप है। ... मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि प्रेमानुभूति के कवि के रूप में नरेंद्रजी में जितनी सूक्ष्मताएँ हैं और जितना उद्‌बोधन है, मैं कोई एक्ज़ाज़रेशन (अतिशयोक्ति) नहीं कर रहा हूँ, वह आपको हिन्दी के किसी कवि में नहीं मिलेगी। ... उस समय को जब मैं याद करता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है, भाषाओं से हमारी कविता ने एक ऐसी भूमि छूई थी और एक ऐसा साहस दिखलाया था, जो साहस छायावादी कवियों में नहीं है। वह जीवन के निकट अनुभूतियों में ऊपर उठकर, ऊपर चला जाता था, यानी उसको छिपाने के लिए, छिपाने के लिए तो नहीं, कम से कम, शायद वह परम्परा नहीं थी। इस वास्ते उस भूमि को वे छूते ही नहीं थे, लेकिन जब नरेंद्र आये, तो उन्होंने जीवन की ऐसी अनुभूतियों को वाणी दी, जिनको छूने का साहस, जिनको कहने का साहस, लोगों में नहीं था। यह केवल अभिव्यक्ति नहीं थी, यह केवल प्रेषण नहीं था, यह उद्‌बोधन यानी जिन अनुभूतियों से कवि गुजरा था, उन्हें औरों में अनुभूत करा देना था। नरेंद्रजी की कविताएँ प्रकृति-संबंधी भी हैं। ... एक बात में मुझे नरेंद्रजी से ईर्ष्या थी, वह यह कि जब मैं केवल शायद गीत ही लिख सका, ये खंडकाव्य भी लिखते रहे और कथाकाव्य में भी इनकी रुचि प्रारम्भ से रही है।

मैं अपनी शुभकामनाएँ इनको देता हूँ, आशीर्वाद देता हूँ और उनसे स्वयं, ब्राह्मण ठहरे, आशीर्वाद भी चाहता हूँ कि भई मुझे भी ऐसी उम्र दो कि तुम्हारा वैभव और तुम्हारी उन्नति देखता रहूँ।"

(पंडित नरेंद्र शर्मा की "षष्ठिपूर्ति" के अवसर पर डॉ. हरिवंशराय बच्चन के भाषण से साभार उद्‌धृत)